श्रीमद्भगवद्गीता

Part IV

A.D. 1918

होवैहै । यातैं परमपुरुषार्थकी इच्छावान् पुरुषनैं ते अमानित्वादिक साधन अव-श्यकरिकै संपादन करणे । तथा सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंका विवेकज्ञान अवश्य करिकै संपादन करणा ॥ ३४ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशाऽध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व त्रयोदश अध्यायविषे (यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् । क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥) इस श्लोककरिकै श्रीभगवान्नैं क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंके संयोगतैं सर्व स्थावर जंगम भूतोंकी उत्पत्ति कथन करीथी । तहां ईश्वरकूं नहीं अंगीकार करणेहारे निरीश्वर सांख्यमतका खंडन करिकै ता क्षेत्र क्षेत्रज्ञके संयोगकूं ईश्वरके आधीनपणा अवश्यकरिकै कह्या चाहिये । तथा तिस त्रयोदश अध्यायविषे (कारणं गुणसंगोस्य सदसद्योनिजन्मसु ।) इस वचन-करिकै श्रीभगवान्नैं गुणोंके संगकूंही जन्मका कारण कह्याथा । तहां किस गुणविषे किसप्रकारकरिकै संग होवैहै । तथा ते गुण कौन हैं तथा ते गुण किस प्रकारकरिकै इस जीवकूं बंधायमान करैंहैं । यह अर्थभी अवश्यकरिकै कह्या चाहिये । तथा (भूत-प्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यांति ते परम् ।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं भूतप्रकृतिके मोक्षका कथन कऱ्याथा । तहां भूतप्रकृतिनामवाले सत्त्वादिक गुणोंतैं इस अधि-कारी पुरुषका किसप्रकारकरिकै मोक्ष होवैहै । तथा तिस मुक्तहुए पुरुषके कौन लक्षण हैं । यह अर्थभी अवश्यकरिकै कह्या चाहिये। इस सर्व अर्थकूं विस्तारतैं कहणेवास्तै श्रीभगवान्नैं यह चतुर्दश अध्याय प्रारंभ करीताहै । तहां श्रोतापुरु-षोंकी रुचि उत्पन्न करणेवास्तै श्रीभगवान् आगे वक्ष्यमाण अर्थकी दो श्लोकों-करिकै स्तुति करतेहुए कहैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ॥
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) परम् । भूयः । प्रवक्ष्यामि । ज्ञानानाम् । ज्ञानम् ।

उत्तमम् । यत् । ज्ञात्वा । मुनयः । सर्वे । पराम् । सिद्धिम् । इतः । गताः ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ज्ञानसाधनोंके मध्यमैं उत्तम तथा श्रेष्ठ ऐसे ज्ञानसाधनकूं मैं भगवान् पुनःभी तुम्हारे प्रति कथन करताहूं जिससाधनकूं अनुष्ठानकरिकै सर्व मुनि इसदेहबंधनतैं परम कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्तहोतेभयेहैं ॥ १ ॥

भा० टी०—तहां (ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानम्) अर्थ यह—जिस साधनकरिकै आत्मवस्तु जान्याजावैहै ताका नाम ज्ञान है । याप्रकारकी व्युत्पत्ति करिकै इहां ज्ञानशब्द परमात्मविषयक ज्ञानके साधनका वाचक है। कैसा है सो ज्ञान—पर है अर्थात् परमात्मरूप परवस्तुविषयक होणेतैं श्रेष्ठ है। पुनः कैसा है सो ज्ञान—ज्ञानोंके मध्यविषे उत्तम है अर्थात् (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन) इस श्रुतिनैं विधान करे जे यज्ञदानादिक ज्ञानके बहिरंगसाधन हैं तिन सर्व बहिरंगसाधनोंके मध्यविषे उत्तमफलका हेतु होणेतैं उत्तम है । कोई पूर्वउक्त अमानित्वादिक साधनोंके मध्यविषे सो ज्ञान उत्तम नहीं है। काहेतैं ते अमानित्वादिक साधनभी अंतरंगसाधन होणेतैं उत्तमफलके ही हेतु हैं । तहां (परम्) इस विशेषणकरिकै तौ तिस ज्ञानविषे उत्कृष्टवस्तुविषयकत्व कथन कन्या । और (उत्तमम्) इस विशेषणकरिकै तौ तिस ज्ञानविषे उत्कृष्टफलवत्त्व कथन कन्या। यातैं तिन दोनों पदोंविषे पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं । ऐसे उत्कृष्टवस्तुकूं विषयकरणेहारे तथा उत्कृष्टफलकी प्राप्ति करणेहारे आत्मज्ञानके साधनरूप ज्ञानकूं मैं श्रीभगवान् तैं अर्जुनके प्रति पुनः भी कथन करताहूं । अर्थात् इसतैं पूर्वअध्यायोंविषे जो ज्ञान अनेकवार हमनै तुम्हारे प्रति कथन करयाहै सोईही ज्ञान अबी पुनःभी पूर्वउक्त प्रकारतैं किंचित् विलक्षणप्रकारकरिकै मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं । जिस साधनरूप ज्ञानकूं श्रद्धाभक्तिपूर्वक अनुष्ठान करिकै सर्वही मननशील संन्यासी कैवल्यमोक्षरूप परमसिद्धिकूं इस देहसंबंधतैं प्राप्त होते भयेहैं ॥ १ ॥

तहां तिस साधनरूप ज्ञानके प्राप्तहुए इस पुरुषकूं सा मोक्षरूप परमसिद्धि अवश्यकरिकै प्राप्त होवैहै । याप्रकारके नियमकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ॥
सर्गेपि नोपजायंते प्रलये न व्यथंति च ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) इदम् । ज्ञानम् । उपाश्रित्य । मम । साधर्म्यम् । आगताः । सर्गे । अपि । न । उपजायंते । प्रलये । न । व्यथंति । च ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस साधनरूप ज्ञानकूं अनुष्ठान करिकै मैं परमेश्वरके अद्वितीयनिर्गुणस्वरूपकूं अत्यंत अभेदकरिकै प्राप्तहुए विद्वान् पुरुष सृष्टिकालविषे भी नहीं उत्पन्न होवैं हैं तथा प्रलयकालविषे नहीं लय होवैं हैं ॥ २ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! इस साधनरूप ज्ञानकूं श्रद्धाभक्तिपूर्वक अनुष्ठान करिकै मैं परमेश्वरके अद्वितीय निर्गुणरूपकूं अत्यंत अभेदरूपकरिकै प्राप्तहुए अर्थात हमही अद्वितीय निर्गुणब्रह्मरूप हैं । याप्रकारतैं आपणे आत्माकूं अद्वितीय निर्गुण ब्रह्मरूप जानतेहुए विद्वान् पुरुष सर्गविषेभी नहीं उत्पन्न होवैंहैं तथा प्रलयविषेभी नहीं लय होवैंहैं । अर्थात् हिरण्यगर्भादिकोंके उत्पन्न हुएभी ते तत्त्ववेत्ता पुरुष उत्पन्न होवैं नहीं । तथा ता हिरण्यगर्भके विनाशकालरूप प्रलयविषेभी ते तत्त्ववेत्ता पुरुष लयभावकूं प्राप्त होवैं नहीं ॥ २ ॥

इस प्रकार दो श्लोकोंकरिकै तिस ज्ञानकी प्रशंसा करिकै श्रोतापुरुषोंकूं श्रीभगवान् तिस ज्ञानके अभिमुख करते भये । अब परमेश्वरके अधीन वर्तणेहारे जे प्रकृति-पुरुष हैं तिन प्रकृतिपुरुष दोनोंकूंही सर्वभूतोंके उत्पत्तिका कारणपणा है । सांख्य-शास्त्रकी न्याई स्वतंत्र तिस प्रकृति पुरुष दोनोंविषे सर्वभूतोंका कारणपणा है नहीं । इस विविक्षित अर्थकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै कथन करैंहैं—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ॥
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) मम । योनिः । महद्ब्रह्म । तस्मिन् । गर्भम् । दधामि । अहम् । संभवः । सर्वभूतानाम् । ततः । भवति । भारत ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! त्रिगुणात्मकमाया मैं ईश्वरके गर्भाधानका स्थान है तिस मायाविषे मैं ईश्वर संकल्परूप गर्भकूं धारण करूंहूं तिसगर्भाधानतैंही सर्वभूतों-की उत्पत्ति होवैहै ॥ ३ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरका महद्ब्रह्म योनि है । इहां महद्ब्रह्मशब्द-करिकै अव्याकृतका ग्रहण करणा । जिस अव्याकृतकूं शास्त्रविषे अविद्या, अज्ञान,

प्रकृति, त्रिगुणात्मिका, माया इत्यादिक नामोंकरिकै कथन करैहैं । सो अव्याकृत आपणे आकाशादिक सर्वकार्योंकी अपेक्षाकरिकै अधिक होणेतैं महत् कह्या जावैहै। तथा आपणे सर्वकार्योंके वृद्धिका हेतु होणेतैं ब्रह्म कह्या जावै है । अथवा ब्रह्मका उपाधिरूप होणेतैं सो अव्याकृत ब्रह्म कह्या जावै है । अथवा महत्तत्त्वनामा प्रथम कार्यके वृद्धिका हेतु होणेतैं सो अव्याकृत महद्ब्रह्म कह्या जावै है । ऐसे महद्ब्रह्म नामवाली त्रिगुणात्मक माया मैं परमेश्वरकी योनि है अर्थात् गर्भाधान करणेका स्थानरूप है । ऐसी मायारूप योनिविषे मैं परमेश्वर गर्भकूं धारण करूं हूं । अर्थात सर्व भूतोंके जन्मका कारणरूप जो (एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय) इसप्रकारका ईक्षणरूप संकल्प है तिस संकल्परूप गर्भकूं तिस मायारूप योनिविषे धारण करूंहूं अर्थात् तिस संकल्पका विषय करूंहूं । जैसे इसलोकविषे कोईक पिता पुण्यपापकरिकै युक्तहुए तथा व्रीहियवादिक आहाररूपकरिकै आपणेविषे लीन हुये ऐसे पुत्रकूं स्थूलशरीरके साथि संबंधकरणेवासतै आपणी स्त्रीकी योनिविषे वीर्यके सिंचचनपूर्वक गर्भकूं धारण करै है तिस गर्भाधानतैं सो पुत्र स्थूलशरीरके साथि संबंधवाला होवै है । तिस शरीरके संबंधवासतै मध्यविषे कलिल बुद्बुद आदिक अनेक अवस्था होवैं हैं । तैसे प्रलयकालविषे मैं परमेश्वरविषे लीन हुए जे अविद्या काम कर्मवाले क्षेत्रज्ञनामा जीव हैं तिन जीवोंकूं सृष्टिकालविषे कार्यकारणसंघातरूप भोग्य क्षेत्रके साथि संबंध करणेवासतैही मैं परमेश्वर चिदाभासरूप वीर्यके सिंचनपूर्वक तिस मायाकी वृत्तिरूप गर्भकूं धारण करूंहूं । तिस शरीरके संबंधवासतैही मध्यविषे आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी इत्यादिकोंकी उत्पत्तिरूप अवस्था होवैं हैं । तिस मायारूप योनिविषे मैं परमेश्वरकृत गर्भाधानतैंही हिरण्यगर्भादिक सर्व भूतोंकी उत्पत्ति होवै है । मैं परमेश्वरकृत गर्भाधानतैं विना तिन सर्वभूतोंकी उत्पत्ति होवै नहीं ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! मायारूप योनिविषे मैं परमेश्वरकृत गर्भाधानतैं सर्वभूतोंकी उत्पत्ति कैसे संभवैगी ? जिसकारणतैं देवतादिक देहविशेषोंके दूसरे कारणभी संभव होइसकै हैं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं-

सर्वयोनिषु कौंतेय मूर्त्तयः संभवन्ति याः ॥
तासां ब्रह्ममहद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) सर्वयोनिषु । कौंतेय । मूर्त्तयः । संभवंति । याः । तासाम् । ब्रह्ममहत् । योनिः । अहम् । बीजप्रदः । पिता ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! देवादिक सर्वयोनियोंविषे जे शरीर उत्पन्न होवैं हैं तिनंशरीरोंका सा मायाँही माताँरूप है मैं परमेश्वर तौ गर्भाधानका कर्त्ता पितारूप हूं ॥ ४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! देव, पितर, मनुष्य, पशु, मृग इत्यादिक सर्वयोनियों-विषे जे जे मूर्तियां उत्पन्न होवैं हैं अर्थात् जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज इन भेद-करिकै विलक्षण तथा नानाप्रकारके आकारवाले जे जे शरीर उत्पन्न होवैं हैं, तिन शरीररूप सर्व मूर्तियोंका तिसतिस मूर्तिके कारणभावकूं प्राप्तहुई सा अव्याकृतनामा मायाही मातारूप है । और मैं परमेश्वर तौ तिस मायारूप योनिविषे गर्भाधानकरणेहारा तिन सर्वशरीरोंका पितारूप हूं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया–तिन देवादिक शरीरोंके लोकप्रसिद्ध जे जे कारण प्रतीत होवैं हैं ते सर्व कारण तिस अव्याकृतनामा मायारूप ब्रह्मकेही अवस्थाविशेषरूप हैं । यातैं (संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।) यह भगवान्का वचन युक्तही है ॥ ४ ॥

तहां पूर्व ईश्वरकूं नहीं अंगीकार करणेहारे निरीश्वरवादी सांख्यशास्त्रका खंडन करिकै क्षेत्रक्षेत्रज्ञके संयोगकूं ईश्वरके अधीनपणा कथन करया । अब किस गुणविषे किसप्रकारकरिकै संग होवैहै । तथा ते गुण कौन हैं । तथा ते गुण किसप्रकारकरिकै इस पुरुषकूं बंधायमान करैहैं–इस सर्व अर्थकूं श्रीभगवान् (सत्त्वरजस्तमः) इस श्लोकतैं आदिलैके (नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारम्) इस श्लोकतैं पूर्व चतुर्दशश्लोककरिकै कथन करैहैं–

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥
निबध्नंति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) सत्त्वम् । रजः । तमः । इति । गुणाः । प्रकृतिसंभवाः । निबध्नंति । महाबाहो । देहे । देहिनम् । अव्ययम् ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे महान् बाहुवाला अर्जुन ! सत्त्व रज तम यह मायातैं उत्पन्न-हुए तीनँगुण इसदेहविषे अव्यय जीवात्माकूं बंधायमान करैहैं ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सत्त्व रज तम इस नामवाले जे तीन गुण हैं ते सत्त्वादिक तीनों गुण चैतन्यपुरुषके प्रति नित्यही परतंत्र हैं कदाचित्भी ते गुण स्वतंत्र होवैं नहीं। काहेतैं इस श्लोकविषे जे जे पदार्थ अचेतनरूप हैं ते सर्व अचेतनपदार्थ चैतन्य पुरुषके अर्थही होवैं हैं। जैसे गृहादिक अचेतनपदार्थ चेतन गृहीपुरुषके अर्थही होवैं हैं। तैसे ते सत्त्वादिक तीन गुणभी अचेतन होणेतैं चेतन पुरुषके अर्थही हैं। जैसे नैयायिक रूपादिक गुणोंकूं पृथिवीआदिक द्रव्यके आश्रित मानैं हैं तैसे यह सत्त्वादिक तीन गुण किसी द्रव्यके आश्रित हैं नहीं। तथा जैसे नैयायिक पृथिवीआदिक गुणीद्रव्यतैं रूपादिक गुणोंकूं भिन्न मानैंहैं तैसे इहां सिद्धांतविषे तिन सत्त्वादिक गुणोंका मायारूप प्रकृतितैं भिन्नपणा विवक्षित है नहीं। जिसकारणतैं सिद्धांतविषे सा मायारूप प्रकृति सत्त्वादिक तीन गुणरूपही है। शंका—हे भगवन् ! ते सत्त्वादिक तीन गुण जो कदाचित् प्रकृतिरूपही होवैं तौ (प्रकृतिसंभवाः) इस वचनकरिकै तिन गुणोंकी प्रकृतितैं उत्पत्ति किसवासतै कथन करी है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं। (प्रकृतिसंभवाः।) हे अर्जुन ! सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंकी जा साम्यअवस्था है ताका नाम प्रकृति है। जिस प्रकृतिकूं शास्त्रविषे भगवत्की माया कहैंहैं—ऐसी मायारूप प्रकृतितैं ते सत्त्वादिक तीन गुण परस्पर अंगअंगीभावकरिकै विषमताकरिकै परिणामकूं प्राप्त होवैंहैं। याकारणतैं ते सत्त्वादिक गुण (प्रकृतिसंभवाः) इस नामकरिकै कहेजावैं हैं। ते सत्त्वादिक तीन गुण इस देहविषे अर्थात् तिस प्रकृतिके कार्यरूप शरीर इंद्रियसंघातविषे अव्ययरूप देहीकूं अर्थात् वास्तवतैं जन्ममरणादिक सर्व विकारोंतैं रहित होणेतैं अव्ययरूप तथा अविद्याकरिकै देहके साथि तादात्म्यभावकूं प्राप्तहुए जीवकूं बंधायमान करैं हैं। अर्थात् वास्तवतैं निर्विकाररूपभी तिस जीवात्माकूं ते सत्त्वादिक गुण आपणे विकारोंकरिकै युक्तहुएकी न्याईं दिखावैं हैं। यहही तिन सत्त्वादिक गुणोंकृत तिस जीवात्माविषे बंध है। या प्रकारका (निबध्नंति) इस शब्दका अर्थ अगले श्लोकोंविषेभी जानिलेणा। तहां दृष्टांत—जैसे जलकरिकै भरेहुए पात्र आकाशविषे स्थितसूर्यकूं प्रतिबिंबाध्यासकरिकै आपणेविषे स्थित कंपादिक विकारोंकरिकै युक्तहुएकी न्याईं दिखावैं हैं तैसे ते सत्त्वादिक तीन गुणभी वास्तवतैं निर्विकार आत्माकूंभी आपणेविषे स्थित विकारोंकरिकै युक्तहुएकी न्याईं दिखावैं हैं। आत्माविषे जैसे वास्तवतैं बंधन नहीं संभवैहै तैसे (शरीरस्थोपि कौंतेय न करोति न लिप्यते।) इस वचनविषे पूर्व विस्तारतैं कथन करिआयेहैं ॥ ५ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंविषे इस जीवात्माका बंधकपणा कथन कऱ्या । अब कौन गुण किसके संगकरिकै इस जीवात्माकूं बंधायमान करैहै इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं–

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ॥
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) तत्र । सत्त्वम् । निर्मलत्वात् । प्रकाशकम् । अनामयम् । सुखसंगेन । बध्नाति । ज्ञानसंगेन । च । अनघ ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे सर्वव्यसनोंतैं रहित अर्जुन ! तिनै तीनगुणोंके मध्यविषे स्वच्छ होणेतैं प्रकाशक तथा दुःखतैंरहित ऐसा सत्त्वगुण इस जीवात्माकूं सुखसंगकरिकै तथा ज्ञानसंगकरिकै बंधायमान करैहै ॥ ६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सत्व, रज, तम यह पूर्व कथन करे जे तीन गुण हैं तिन तीन गुणोंके मध्यविषे प्रथम जो सत्त्वगुण है सो सत्त्वगुण कैसा है–प्रकाशक है। अर्थात् चैतन्यका तमोगुणकृत जो आवरण है ता आवरणका नाश करणेहारा है । ता प्रकाशकताविषे हेतु कहैहैं। (निर्मलत्वात् इति) अर्थात् आपणे स्वच्छस्वभावताकरिकै चेतनके प्रतिबिंबके ग्रहण करणेयोग्य होणेतैं सो सत्त्वगुण प्रकाशक है । किंवा सो सत्त्वगुण केवल चैतन्यकाही अभिव्यंजक नहीं है किंतु अनामयभी है अर्थात् दुःखरूप आमयका विरोधी जो सुख है तिस सुखकाभी सो सत्त्वगुण अभिव्यंजक है । इसप्रकार चैतन्यका तथा सुखका अभिव्यंजक जो सत्त्वगुण है, सो सत्त्वगुण इस जीवात्माकूं सुखसंगकरिकै तथा ज्ञानसंगकरिकै बंधायमान करैहै। इहां सुखशब्दकरिकै तथा ज्ञानशब्दकरिकै अंतःकरणका परिणामरूप सुखका तथा ज्ञानका ग्रहण करणा । कोई आत्मस्वरूप सुखका तथा ज्ञानका ता सुखज्ञानशब्दकरिकै ग्रहण करणा नहीं । काहेतें (इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।) इस पूर्वउक्त श्लोकविषे सुखकूं तथा चेतनारूप ज्ञानकूंभी इच्छाद्वेषादिकोंकी न्याईं क्षेत्रकाही धर्मरूप करिकै कथन कऱ्याहै। तहां अंतःकरणका धर्मरूप जो सुख है तथा ज्ञान है, ता सुख ज्ञान दोनोंका जो आत्माविषे अध्यास है जो अध्यास मैं सुखी हूं मैं जानता हूं इसप्रकारकी प्रतीतिकरिकै सिद्ध है ताका नाम सुखसंग है। तथा ज्ञानसंग है । ऐसे सुखसंगकरिकै तथा ज्ञानसंगकरिकै सो सत्त्वगुण इस

जीवात्माकूं बंधायमान करै है । तहां विषयके धर्म प्रकाशकरूप विषयीके होवैं नहीं । जैसे घटादिके विषयोंके धर्म प्रकाशक सूर्यके होवैं नहीं । यातैं यह सर्व बंध अविद्यामात्रही है यह वार्त्ता पूर्व अनेकवार कथन करिआये हैं ॥ ६ ॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ॥
तन्निबध्नाति कौंतेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) रजः । रागात्मकम् । विद्धि । तृष्णासंगसमुद्भवम् । तत् । निबध्नाति । कौंतेय । कर्मसंगेन । देहिनम् ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय तृष्णासंग दोनोंकी उत्पत्ति है जिसतैं ऐसे रजोगुणकूं तूं रागरूप जान सो रजोगुण इस देहाभिमानीजीवकूं कर्मसंगकरिकै बंधायमान करै है ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तहां यह पुरुष शब्दादिक विषयोंविषे रंजनकूं प्राप्त होवै जिसकरिकै ताका नाम राग है । सो रागही है आत्मा क्या स्वरूप जिसका ताका नाम रागात्मक है । ऐसा रागात्मक रजोगुणकूं तूं जान । यद्यपि सो राग तिस रजोगुणका धर्म है, तथापि धर्म धर्मी दोनोंका तादात्म्यही होवै है । यातैं ता रजोगुणकूं रागरूप कह्याहै । इसीकारणतैंही सो रजोगुण तृष्णासंगसमुद्भव है । तहां अप्राप्तवस्तुके प्राप्तिकी जा अभिलाषा है ताका नाम तृष्णा है । और प्राप्तवस्तुके विनाशके प्राप्त हुएभी जो तिस वस्तुके रक्षण करणेकी अभिलाषा है ताका नाम आसंग है । तिस तृष्णा आसंग दोनोंकी उत्पत्ति है जिसतैं ताका नाम तृष्णासंगसमुद्भव है । ऐसा रजोगुण वास्तवतैं अकर्त्तारूप हुएभी कर्तृत्व अभिमानवाले जीवात्माकूं कर्मसंगकरिकै बंधायमान करै है । तहां इस लोकके फलका हेतुरूप तथा परलोकके फलका हेतुरूप जे लौकिक वैदिक कर्म हैं तिन कर्मोंविषे मैं इस कर्मकूं करूंहूं मैं इस कर्मकूं भोगौंगा इसप्रकारका जो अभिनिवेश विशेष है ताका नाम कर्मसंग है । ऐसे कर्मसंगकरिकै सो रजोगुण इस जीवात्माकूं बंधायमान करै है । जिसकारणतैं सो रजोगुण केवल प्रवृत्तिकाही हेतु है ॥ ७ ॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ॥
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) तमः । तु । अज्ञानजम् । विद्धि । मोहनम् । सर्वदेहिनाम् । प्रमादालस्यनिद्राभिः । तत् । निबध्नाति । भारत ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! पुनः तमोगुणकूं तूं अज्ञानजन्य जान जो तमोगुण सर्व जीवोंकूं भ्रांतिका जनक है सो तमोगुण प्रमादआलस्यनिद्राकरिकै इस जीवकूं बंधायमान करै है ॥ ८ ॥

भा॰ टी॰–तहां (तमस्तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द पूर्वउक्त सत्त्व रज दोनोंकी अपेक्षाकरिकै इस तमोगुणविषे विलक्षणताके बोधन करणेवासतै है। हे अर्जुन ! तमोगुणकूं तूं आवरणशक्तिरूप अज्ञानतैं उत्पन्नहुआ जान। इसकारणतैंही सो तमोगुण सर्व देहाभिमानी जीवोंका मोहन है अर्थात् अविवेकरूपताकरिकै भ्रांतिका जनक है। ऐसा तमोगुण इस देहाभिमानी जीवकूं प्रमादकरिकै तथा आलस्यकरिकै तथा निद्राकरिकै बंधायमान करै है। तहां वस्तुके विवेककरणेका जो असामर्थ्य है ताका नाम प्रमाद है। सो प्रमाद तौ सत्त्वगुणके प्रकाशरूप कार्यका विरोधी होवै है। और प्रवृत्ति करणेका जो असामर्थ्य है ताका नाम आलस्य है। सो आलस्य तौ रजोगुणके प्रवृत्तिरूप कार्यका विरोधी होवै है। और तमोगुणकूं आलंबनकरणेहारी जा लयरूप वृत्तिविशेष है ताका नाम निद्रा है। सा निद्रा तौ सत्त्वगुणके कार्यका तथा रजोगुणके कार्यका दोनोंकाही विरोधी होवै ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! पूर्वउक्त कार्योंके मध्यविषे किस कार्यविषे किस गुणकी उत्कर्षता है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ॥
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) सत्त्वम् । सुखे । संजयति । रजः । कर्मणि । भारत । ज्ञानम् । आवृत्य । तु । तमः । प्रमादे । संजयति । उत ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! सत्त्वगुण इस पुरुषकूं सुखविषे युक्तकरै है तथा रजोगुण कर्मविषे युक्त करै है और तमोगुण तो ज्ञानकूं आच्छादन करिकै प्रमादविषे भी युक्तकरै है ॥ ९ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! सो पूर्वउक्त सत्त्वगुण उत्कर्षताकूं प्राप्त हुआ इस देहाभिमानी जीवकूं सुखविषे युक्त करै है अर्थात् दुःखके कारणका अभिभव करिकै इस पुरुषकूं सुखविषे जोडै है। इसप्रकार सो रजोगुणभी उत्कर्षताकूं प्राप्त-

हुआ सुखके कारणोंका अभिभवकरिकै इस जीवात्माकूं लौकिकवैदिक कर्मोंविषे युक्त करै है। और तमोगुण तौ प्रयाणके बलकरिकै उत्पन्नहुएभी सत्त्वगुणके कार्य-रूप ज्ञानकूं आवृत करिकै इस पुरुषकूं प्रमादविषे युक्त करै है। तहां जिस वस्तुका जानणा अवश्यकरिकै प्राप्त होवै ता वस्तुकाभी जो नहीं जानणा है ताका नाम प्रमाद है। ऐसे प्रमादविषे सो तमोगुण इस पुरुषकूं जोडै है। इहां (संजयत्युत) इस वचनविषे स्थित जो उत ग्रह शब्द है सो उतशब्द अपि इस शब्दके अर्थका वाचक है ता करिकै आलस्य निद्रा इन दोनोंकाभी ग्रहण करणा। अर्थात् सो तमो-गुण इस जीवात्माकूं आलस्यविषे तथा निद्राविषेभी जोडै है। तहां जो कार्य अवश्यकरिकै करणेयोग्य है ता कार्यकाभी जो नहीं करणा है ताका नाम आलस्य है ? और लयनामा तामसी वृत्तिविशेषका नाम निद्रा है॥ ९॥

हे भगवन्! इस पूर्वश्लोकविषे कथन कऱ्या जो सत्त्वादिक तीन गुणोंका कार्य है तिस आपणे आपणे कार्यकूं ते सत्त्वादिक तीन गुण किस कालविषे करैं हैं। ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत॥
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा॥ १०॥

(पदच्छेदः) रजः। तमः। च। अभिभूय। सत्त्वम्। भवति। भारत। रजः। सत्त्वम्। तमः। च। एव। तमः। सत्त्वम्। रजः। तथा॥१०॥

(पदार्थः) हे भारत! रजोगुणकूं तथा तमोगुणकूं अभिभवकरिकै जबी सत्त्वगुण वृद्धिकूं प्राप्त होवै तथा रजोगुणकूं तथा सत्त्वगुणकूं अभिभवकरिकै जबी तमोगुण वृद्धिकूं प्राप्त होवै है तथा तमोगुणकूं तथा सत्त्वगुणकूं अभिभव-करिकै जबी रजोगुण वृद्धिकूं प्राप्त होवै है तबी ते सत्त्वादिकगुण आपणे आपणे कार्यकूं करैं हैं॥ १०॥

भा० टी०—हे अर्जुन! जिसकालविषे रज तम इन दोनोंही गुणोंकूं एकही कालविषे अभिभव करिकै अर्थात् तिरस्कारकरिकै सो सत्त्वगुण वृद्धिकूं प्राप्त होवैहै तिसकालविषे सो सत्त्वगुण पूर्वउक्त आपणे कार्यकूं असाधारणतारूप करिकै उत्पन्न करै है। इस प्रकार सो रजोगुणभी जिसकालविषे सत्त्वगुणकूं तथा तमोगुणकूं दोनोंकूं एकही कालविषे अभिभवकरिकै वृद्धिकूं प्राप्त होवैहै तिस कालविषेही सो

रजोगुण पूर्वउक्त आपणे कार्यकूं असाधारणतारूप करिकै उत्पन्न करैहै। इस प्रकार तमोगुणभी जिसकालविषे सत्त्वगुणकूं तथा रजोगुणकूं दोनोंकूं एकही कालविषे अभिभवकरिकै वृद्धिकूं प्राप्त होवैहै, तिस कालविषेही सो तमोगुण पूर्वउक्त आपणे कार्यकूं असाधारणतारूप करिकै उत्पन्न करैहै ॥ १० ॥

हे भगवन् ! तिन सत्त्वादिक तीन गुणोंकी वृद्धि किस लिंगकरिकै जानी जावैहै ता वृद्धिके ज्ञान हुएही यह पुरुष ताके निवृत्त करणेविषे समर्थ होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् वृद्धिकूं प्राप्त हुए तिन सत्त्वादिक तीन गुणोंके लिंगोंकूं तीन श्लोकोंकरिकै कथन करैहैं–

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ॥
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) सर्वद्वारेषु । देहे । अस्मिन् । प्रकाशः । उपजायते । ज्ञानम् । यदा । तदा । विद्यात् । विवृद्धम् । सत्त्वम् । इति । उत ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस देहविषे श्रोत्रादिक सर्वइंद्रियोंविषे जिसकालमें ज्ञानरूप प्रकाश उत्पन्न होवैहै तिसकालविषे सत्त्वगुण वृद्धिकूं प्राप्त हुआहै इसप्रकार जानणा ॥ ११ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! इस जीवात्माका सुखदुःखके भोगका स्थानरूप जो यह देह है इस देहविषे स्थित जे शब्दादिक विषयोंके उपलब्धिका साधनरूप श्रोत्रादिक इंद्रियरूप सर्वद्वार हैं तिन इंद्रियरूप सर्वद्वारोंविषे जिसकालमैं ज्ञानरूप प्रकाश उत्पन्न होवैहै अर्थात् जैसे दीपक आपणे विषयरूप घटादिक पदार्थोंके अंधकाररूप आवरणका विरोधी होवैहै। तैसे आपणे शब्दादिक विषयोंके आवरणका विरोधी ऐसा जो तिन शब्दादिक विषयाकार बुद्धिका वृत्तिरूप परिणामविशेष है ताका नाम प्रकाश है। ऐसा ज्ञानरूप प्रकाश जिसकालविषे उत्पन्न होवैहै तिसकालविषे तिस ज्ञानप्रकाशरूप लिंगकरिकै यह पुरुष अबी प्रकाशरूप सत्त्वगुण वृद्धिकूं प्राप्तहुआहै इसप्रकार जानैं। इहां (विवृद्धं सत्त्वमित्युत) इस वचनके अंतविषे स्थित जो उत यह शब्द है सो उतशब्द अपि इस शब्दके अर्थका वाचक है ताकरिकै यह अर्थ बोधन कऱ्या–जैसे ज्ञानरूप प्रकाशकरिकै सत्त्वगुणकी वृद्धि जानी जावैहै तैसे सुखादिक लिंगोंकरिकैभी यह पुरुष ता सत्त्वगुणकी

वृद्धिकूं जानै । और किसी टीकाविषे तौ उत इस शब्दका यह अर्थ कऱ्याहै- सत्त्वगुणकी वृद्धिकी न्याईं यह पुरुष तिस ज्ञानरूप प्रकाशकरिकै रज तम इन दोनों गुणोंके क्षीणताकूंभी जानै ॥ ११ ॥

लोभः प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः स्पृहा ॥
रजस्येतानि जायंते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) लोभः । प्रवृत्तिः । आरंभः । कर्मणाम् । अशमः । स्पृहा । रजसि । एतानि । जायंते । विवृद्धे । भरतर्षभ ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे भरतर्षभ रजोगुणके वर्द्धमानहुए लोभ प्रवृत्ति कर्मोंका आरंभ अशम स्पृहा यह सर्व उत्पन्न होवैं हैं ॥ १२ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! रागात्मक रजोगुणके वर्द्धमान हुए इस पुरुषविषे लोभ, प्रवृत्ति, कर्मोंका आरंभ, अशम, स्पृहा, इतने रागात्मक लिंग उत्पन्न होवैं हैं। अर्थात् इन लोभादिक लिंगोंकरिकै यह पुरुष रजोगुणके वृद्धिकूं जानैं । तहां महान् धनादिक पदार्थोंके प्राप्ति हुएभी दिन दिनविषे वृद्धिकूं प्राप्त हुई जा तिन धनादिक प्राप्तिकी अभिलाषा है ताका नाम लोभ है । अर्थात् आपणे विषयकी प्राप्ति करिकैभी नहीं निवृत्त हुई जा इच्छाविशेष है ताका नाम लोभ है । और निरंतरही प्रयत्नवाला होणा याका नाम प्रवृत्ति है । और बहुत धनके खर्च करणेतैं सिद्ध होणेहारे तथा शरीरकूं आयासकी प्राप्ति करणेहारे ऐसे जे काम्य निषिद्ध लौकिक महागृहादिविषयक व्यापार हैं तिनोंका नाम कर्म है । ऐसे कर्मोंका जो उद्यम है ताका नाम कर्मोंका आरंभ है । और इस कार्यकूं करिकै पुनः मैं इस दूसरे कार्यकूं करौंगा इस दूसरे कार्यकूं करिकै पुनः मैं इस तीसरे कार्यकूं करौंगा याप्रकारके संकल्पोंके प्रवाहकी जो नहीं उपरामता होणी है ताका नाम अशम है । और परधनादिकोंके देखणेमात्रकरिकै जो जिसी किसी उपाय करिकै तिन परधनादिकोंके ग्रहण करणेकी इच्छा है ताका नाम स्पृहा है । इसप्रकार लोभतैं आदिलैके स्पृहापर्यंत कथन करे जे लिंग हैं तिन लिंगोंकरिकै यह पुरुष वृद्धिकूं प्राप्त हुए रजोगुणकूं जानैं ॥ १२ ॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ॥
तमस्येतानि जायंते विवृद्धे कुरुनंदन ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) अप्रकाशः । अप्रवृत्तिः । च । प्रमादः । मोहः । एव । च । तमसि । एतानि । जायंते । विवृद्धे । कुरुनंदन ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तमोगुणके वर्द्धमानहुए ही अप्रकाश तथा अप्रवृत्ति तथा प्रमाद तथा मोह इतनेलिंग उत्पन्न होवैं हैं ॥ १३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जिसकालविषे तमोगुणकी वृद्धि होवै है तिसकालविषे अप्रकाश, अप्रवृत्ति, प्रमाद, मोह इतने लिंग उत्पन्न होवैं हैं अर्थात् यह पुरुष इतने अव्यभिचारी लिंगोंकरिकैही तमोगुणके वृद्धिकूं जानैं। तहां गुरुशास्त्रादिक बोधके कारणोंके विद्यमान हुएभी जो सर्वप्रकारतैं ता बोधकी अयोग्यता है ताका नाम अप्रकाश है। और उत्पन्न कऱ्या है आपणे अर्थका बोधन जिसनैं ऐसा जो प्रवृत्तिका कारणरूप (अग्निहोत्रं जुहुयात्) इत्यादिक शास्त्र है ता शास्त्रके विद्यमान हुएभी जो सर्वप्रकारतैं तिन अग्निहोत्रादिक कर्मोंविषे प्रवृत्तिकी अयोग्यता है ताका नाम अप्रवृत्ति है। और तिसकालविषे कर्त्तव्यतारूप करिकै प्राप्तहुए अर्थका भी जो तिसकालविषे स्मरण नहीं होणा ताका नाम प्रमाद है। और निद्राका तथा विपर्ययका नाम मोह है ॥ १३ ॥

अब मरणकालविषे वृद्धिकूं प्राप्तहुए तिन सत्त्वादिक तीन गुणोंके फलविशेषकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै कथन करैंहैं–

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ॥
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) यदा । सत्त्वे । प्रवृद्धे । तु । प्रलयम् । याति । देहभृत् । तदा । उत्तमविदाम् । लोकान् । अमलान् । प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः यह देहाभिमानी जीव जबी सत्त्वगुणके वर्द्धमानहुए मृत्युकूं प्राप्तहोवै है तबी उपासक पुरुषोंके मलरहित लोकोंकूं प्राप्त होवैहै ॥ १४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन! यह देहाभिमानी जीव जबी सत्त्वगुणके वृद्धि हुए मृत्युकूं प्राप्तहोवैहै तबी यह जीव उत्तमवित पुरुषोंके लोकोंकूं प्राप्त होवैहै । तहां हिरण्यगर्भादिक देवतावोंका नाम उत्तम है तिन उत्तमोंकूं जे पुरुष जानैंहैं अर्थात् तिन हिरण्यगर्भादिक देवतावोंकी जे पुरुष उपासना करैंहैं तिन पुरुषोंका नाम उत्तमवित् है। तिन उत्तमवित् पुरुषोंके जे लोक हैं अर्थात् दिव्यसुखोंके भोगके

जे स्थानविशेष हैं जे लोक अमल हैं अर्थात् रजतमरूप मलतैं रहित हैं ऐसे लोकोंकूं सो पुरुष प्राप्त होवैहै ॥ १४ ॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ॥
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) रजसि । प्रलयम् । गत्वा । कर्मसंगिषु । जायते । तथा । प्रलीनः । तमसि । मूढयोनिषु । जायते ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह देहाभिमानी जीव रजोगुणकी वृद्धिहुए मृत्युकूं प्राप्त होइकै कर्मके अधिकारी मनुष्योंविषे उत्पन्न होवैहै तथा तमोगुणकी वृद्धिहुए मरणकूं प्राप्तहुआ यह जीव पश्वादिक योनियोंविषे उत्पन्न होवैहै ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यह देहाभिमानी जीव जबी रजोगुणकी वृद्धिहुए मृत्युकूं प्राप्त होवैहै तबी कर्मसंगियोंविषे उत्पन्न होवै है अर्थात् श्रुतिस्मृतिकरिकै विधान करे जे अग्निहोत्रादिक कर्म हैं तथा श्रुतिस्मृतिकरिकै निषिद्ध करे जे हिंसादिक कर्म हैं तिन कर्मोंविषे तथा तिन कर्मोंके फलोंविषे अधिकारी जे मनुष्य हैं तिन्होंका नाम कर्मसंगी है ऐसे कर्मसंगी मनुष्योंविषे जो जीव जन्मकूं प्राप्त होवैहै । इसप्रकार तमोगुणकी वृद्धिहुए यह जीव जबी मृत्युकूं प्राप्त होवैहै तबी यह जीव कार्य अकार्यके विचारतैं रहित पश्वादिक मूढयोनियोंविषे जन्मकूं प्राप्त होवैहै ॥ १५ ॥

अब सत्त्वादिक तीन गुणोंविषे आपणे अनुसार कर्मद्वारा विचित्रफलकी हेतुताकूं श्रीभगवान् संक्षेपकरिकै कथन करैहैं—

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ॥
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) कर्मणः । सुकृतस्य । आहुः । सात्त्विकम् । निर्मलम् । फलम् । रजसः । तु । फलम् । दुःखम् । अज्ञानम् । तमसः । फलम् ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! महर्षिजन सात्त्विक धर्मका सात्त्विक निर्मल फल कथन करैहैं पुनः राजसधर्मका दुःखरूप फल कहै हैं तथा तामसधर्मका अज्ञानरूप फल कहैं ॥ १६ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! महर्षिजन उत्तम सात्त्विकधर्मका सात्त्विक तथा निर्मल फल कहैं हैं अर्थात् सत्त्वगुणकरिकै प्राप्तहुआ तथा रजतमरूप मलकरिकै नहीं मिल्या हुआ ऐसा जो सुखरूप फल है, सो सुखरूप फल ता सात्त्विक धर्मका कहैं हैं। और पापमिश्रित पुण्यरूप जो राजसधर्महै तिस राजसधर्मका तौ ते महर्षि राजस दुःखरूप फल कहैं हैं अर्थात् रजोगुणतैं उत्पन्नहुआ जो बहुतदुःखकरिकै मिश्रित अल्प सुख है सो तिस राजसधर्मका फल कह्याजावैहै। काहेतैं जो जो कार्य होवैहै सो सो कार्य आपणे कारणके सदृश ही होवैहै। यातैं पापमिश्रित पुण्यरूप राजसकर्मका बहुतदुःखकरिकै मिश्रित अल्पसुखरूप फल युक्तही है। और ते महर्षिजन तामसधर्मका तौ अज्ञानरूप फलही कहैंहैं अर्थात् तमोगुणकरिकै जन्य होणेतैं तामसरूप ऐसा जो अविवेकप्रयुक्त दुःख है सो दुःख तिस तामसधर्मकाही फल कह्याजावैहै। तहां सात्त्विकादिक कर्मोंका लक्षण तौ (नियतं संगरहितम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै अष्टादश अध्यायविषे श्रीभगवान् आपही कथन करैंगे। इहां इस श्लोकविषे श्रीभगवान्नैं रज तम इन दोनों शब्दोंका जो रजोगुणके कार्यरूप कर्मविषे तथा तमोगुणके कार्यरूप कर्मविषे प्रयोग कऱ्या है सो कार्य कारण दोनोंके अभेदकूं अंगीकार करिकै कऱ्या है ॥ १६ ॥

अब श्रीभगवान् इसप्रकारके फलकी विचित्रताविषे पूर्वउक्त हेतुकूंही कथन करैंहैं–

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ॥
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) सत्त्वात्। संजायते। ज्ञानम्। रजसः। लोभः। एव। च। प्रमादमोहौ। तमसः। भवतः। अज्ञानम्। एव। च ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सत्त्वगुणतैं ज्ञान उत्पन्न होवैहै तथा रजोगुणतैं लोभ ही उत्पन्न होवैहै तथा तमोगुणतैं प्रमादमोह दोनों उत्पन्नहोवैं हैं तथा अज्ञान भी होवै है ॥ १७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! श्रोत्रादिक इंद्रिय हैं द्वार जिसके ऐसा जो शब्दादिविषयक ज्ञान है सो प्रकाशरूप ज्ञान तौ केवल सत्त्वगुणतैंही उत्पन्न होवैहै इसकारणतैं प्रकाशरूप ज्ञानके अनुसारी सात्त्विककर्मका प्रकाशकी बाहुल्यतावाला

सुखरूप फलही होवैहै । और कोटिविषयोंकी प्राप्तिकरिकैभी निवृत्त करणेकूं अशक्य जा अभिलाषाविशेष है ताका नाम लोभ है। ऐसा लोभ रजोगुणतैंही उत्पन्न होवैहै । तहां निरंतर वृद्धिकूं प्राप्त हुआ तथा पूरणकरणेकूं अशक्य ऐसे लोभकूं दुःखका हेतुपणा प्रसिद्धही है यातैं तिस लोभपूर्वक कऱ्या जो राजसकर्म है तिस राजसकर्मकाभी दुःखही फल होवैहै । और तमोगुणतैं प्रमाद मोह यह दोनों उत्पन्न होवैं हैं। तथा अज्ञानभी उत्पन्न होवैहै । इहां अज्ञानशब्दकरिकै अप्रकाशका ग्रहण करणा । और प्रमादमोह इन दोनों शब्दोंका अर्थ तौ (अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च) इस पूर्वउक्त श्लोकविषे कथन करिआये हैं ॥ १७ ॥

अब सत्त्वादिक तीन गुणोंके वृत्तविषे स्थित पुरुषोंका (यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु) इस पूर्वउक्त श्लोकविषे कथन कऱ्या जो फल है तिसीही फलकूं ऊर्ध्वभावकरिकै तथा अधोभावकरिकै कथन करैं हैं-

ऊर्ध्वं गच्छंति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठंति राजसाः ॥
जघन्यगुणवृत्तस्था अधो गच्छंति तामसाः ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) ऊर्ध्वम् । गच्छंति । सत्त्वस्थाः । मध्ये । तिष्ठंति । राजसाः । जघन्यगुणवृत्तस्थाः । अधः । गच्छंति । तामसाः ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सत्त्ववृत्तविषे स्थितपुरुष ऊपरिलेलोकोंकूं जावैंहैं और रजोवृत्तविषे स्थितपुरुष मनुष्यलोकविषे स्थित होवैंहैं और निकृष्ट तमोगुणके वृत्तविषे स्थित तामसपुरुष अधः गमन करैंहैं ॥ १८ ॥

भा० टी०-तहां तीसरे तमोगुणके अंतविषे वृत्त यह शब्द श्रीभगवान्नें कथन कऱ्या है। यातैं सत्त्व रज इन आदिके दो गुणोंके अंतविषेभी सो वृत्त-शब्द श्रीभगवान्कूं विवक्षित है यातैं यह अर्थ सिद्ध होवैहै। सत्त्वगुणका जो शास्त्रजन्य ज्ञानरूप तथा शुभकर्मरूप वृत्त है तिस सत्त्वगुणके वृत्तविषे स्थित हुए अर्थात् श्रद्धापूर्वक तिस वृत्तकूं धारण करतेहुए यह पुरुष ब्रह्मलोकपर्यंत ऊपरिले देवलोकोंकूं प्राप्त होवैंहैं अर्थात् तिस ज्ञानकर्मकी न्यून अधिकताकारिकै ते पुरुष न्यून अधिकतावाले तिन देवतावोंविषेही उत्पन्न होवैंहैं। मनुष्यशरीरकूं तथा पश्वादिशरीरकूं ते सात्त्विक पुरुष प्राप्त होवैं नहीं। और जे पुरुष रजोगुणके लोभादि पूर्वक राजस कर्मरूप वृत्तविषे स्थित हैं अर्थात् जे पुरुष तिस राजस कर्मरूप

वृत्तकूं अत्यंत प्रीतिपूर्वक करैंहैं ते राजस पुरुष तौ पुण्यपापमिश्रित इस मनुष्यलोकविषेही स्थित होवैंहैं। ते राजस पुरुष देवशरीरकूं तथा पशुआदिक शरीरकूं प्राप्त होवैं नहीं किंतु इन मनुष्योंविषेही ते राजस पुरुष उत्पन्न होवैंहैं। और सत्त्व रज इन दोनों गुणोंकी अपेक्षा करिकै पश्चात् भावी होणेतैं तिन दोनोंतैं निकृष्ट ऐसा जो तमोगुण है तिस तमोगुणके निद्रा आलस्यादिरूप वृत्तविषे प्रीतिवाले जे तामस पुरुष हैं, ते तामस पुरुष तौ अधोगमन करैं हैं। अर्थात् पशुआदिक योनियोंविषेही उत्पन्न होवैंहैं। ते तामस पुरुष मनुष्यशरीरकूं तथा देवताशरीरकूं प्राप्त होवैं नहीं। तहां सात्त्विक पुरुष तथा राजस पुरुषभी कदाचित् तिस तमोगुणके निद्रा आलस्यादिक वृत्तविषे स्थित होवैं हैं यातैं तिन्होंकूंभी पश्वादिक शरीरोंकी प्राप्ति होणी चाहिये। ऐसी शंकाके निवृत्त करणे वास्तै श्रीभगवान् तिन तमोगुणके वृत्तविषे स्थित पुरुषोंका विशेषण कथन करैंहैं (तामसाः इति) तहां जिन पुरुषोंविषे सर्वकालमें तमोगुणही प्रधान है तिन पुरुषोंका नाम तामस है। ऐसे तामस पुरुषही पशुआदिक योनियोंविषे जन्मैं हैं। और सात्त्विक पुरुष तथा राजस पुरुष कदाचित् तिस तमोगुणके निद्रा आलस्यादिक वृत्तविषे स्थितभी होवैंहैं तौभी तिन्होंविषे सो तमोगुण प्रधान होवै नहीं किंतु अत्यंत गौण होवैहै। यातैं ते सात्त्विक पुरुष तथा राजस पुरुष पशुआदिक योनियोंविषे उत्पन्न होवैं नहीं। इहां किसी मूलपुस्तकविषे (जघन्यगुणवृत्तिस्थाः) इसप्रकारका भी पाठ होवैहै। इस पाठविषेभी सो पूर्वउक्त अर्थही जानणा ॥ १८ ॥

तहां इस चतुर्दश अध्यायविषे श्रीभगवान्नैं तीन अर्थोंके कथन करणेकी प्रतिज्ञा करीथी। तहां एक तौ क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंके संयोगकूं ईश्वरके अधीनपणा १। और दूसरा ते गुण कौन हैं तथा ते गुण किसप्रकार इस जीवात्माकूं बंधायमान करैंहैं २। और तीसरा तिन गुणोंतैं इस पुरुषका किसप्रकारकरिकै मोक्ष होवैहै तथा तिस गुणातीत मुक्तपुरुषका कौन लक्षण है ३। इन तीनों अर्थोंविषे आदिके दो अर्थ तौ पूर्व विस्तारतैं कथन करे। अब तीसरे अर्थका कथन करणा परिशेषतैं रह्या ताके विषेभी सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंकूं मिथ्याज्ञानरूप होणेतैं इस पुरुषका सम्यक्ज्ञानतैं तिन गुणोंतैं मोक्ष होवैहै इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ॥
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोधिगच्छति ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) न । अन्यम् । गुणेभ्यः । कर्त्तारम् । यदा । द्रष्टा । अनुपश्यति । गुणेभ्यः । च । परम् । वेत्ति । मद्भावम् । सः । अधिगच्छति ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकालविषे यह द्रष्टापुरुष सत्त्वादिक गुणोंतें अन्य कर्त्ताकूं नहीं देखताहै तथा तिनगुणोंतें आत्माकूं पर जानताहै जिसकालविषे सो द्रष्टापुरुष ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवैहै ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! कार्य, कारण, विषय इन तीन आकारोंकरिकै परिणामकूं प्राप्तहुए जे सत्त्वादिक तीन गुण हैं तिन गुणोंतें अन्य किसी कर्त्ताकूं जिसकालविषे यह द्रष्टापुरुष विचारविषे कुशल हुआ नहीं देखै है अर्थात् विचारतें पूर्व तिन गुणोंतें अन्य आत्माकूं कर्त्तारूप देखताहुआभी जो पुरुष विचारतें पश्चात् तिन सत्त्वादिक गुणोंतें अन्य कर्त्ताकूं नहीं देखैहै किंतु ते सत्त्वादिक गुणही अंतःकरण, वहिःकरण, शरीर, विषय इत्यादिक भावकूं प्राप्त हुए सर्व लौकिक वैदिक कर्मोंके कर्त्ता होवैहैं । इसप्रकार जो पुरुष तिन सत्त्वादिक गुणोंकूंही कर्त्ता देखैहै तथा तिस तिस अवस्थाविशेषरूप करिकै परिणामकूं प्राप्तहुए जे सत्त्वादिक गुण हैं तिन गुणोंतें जो पुरुष आत्माकूं पर जानैहै अर्थात् जैसे आकाशविषे स्थित सूर्य भूमिविषे स्थित जलके साथि तथा ता जलके कंपादिक विकारोंके साथि संबंधवाला होवै नहीं तैसे जो आत्मादेव सत्त्वादिक तीन गुणोंके साथि तथा तिन गुणोंके कार्योंके साथि संबंधवाला है नहीं तथा तिन कार्यसहित गुणोंका प्रकाशक है तथा जन्ममरणादिक सर्व विकारोंतें रहित है तथा सर्वप्रपंचका साक्षी है तथा सर्वत्र सम है, ऐसे एक अद्वितीयरूप क्षेत्रज्ञ आत्माकूं जो द्रष्टापुरुष गुरुशास्त्रके उपदेशतें जानैहै तिस कालविषे सो द्रष्टा पुरुष मैं परमेश्वरके भावकूं प्राप्त होवैहै । अर्थात् सो पुरुष मैंही ब्रह्मरूप हूं याप्रकारतें अभेदरूपकरिकै मैं निर्गुणब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै । तहां श्रुति—(ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति ।) अर्थ यह मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारतें ब्रह्मकूं आपणा आत्मारूप जानताहुआ यह पुरुष ब्रह्मरूपही होवैहै ॥ १९ ॥

हे भगवन् इसप्रकार सत्त्वादिक तीन गुणोंकूंही कर्त्तापणा देखणेहारा तथा तिन

गुणोंतैं आत्माकूं पर देखणेहारा पुरुष तिस निर्गुणब्रह्मभावकूं किस प्रकारकरिकै प्राप्त होवै है? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिसप्रकारकूं कथन करैहैं ।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ॥
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) गुणान् । एतान् । अतीत्य । त्रीन् । देही । देहसमुद्भवान् । जन्ममृत्युजरादुःखैः । विमुक्तः । अमृतम् । अश्नुते ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! देहके उत्पत्तिका बीजरूप इन सत्त्वादिक तीन गुणोंकूं परित्यागकरिकै जन्ममृत्युजरादुःख इनोंकरिकै विमुक्तहुआ यह विद्वान् पुरुष मोक्षकूं प्राप्तहोवैहै ॥ २० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! देहकी उत्पत्तिके बीजरूप ऐसे जे मायारूप सत्त्व, रज, तम यह तीन गुण हैं इन तीन गुणोंकूं अतिक्रमणकरिकै अर्थात् जीवितकालविषेही तत्त्वज्ञानकरिकै तिन गुणोंका बाधकरिकै जन्मकरिकै तथा मृत्युकरिकै तथा जराकरिकै तथा आध्यात्मिकादिक दुःखोंकरिकै विमुक्त हुआ अर्थात् जीवितकालविषेही तिन मायामय जन्ममृत्यु आदिकोंके संबंधतैं रहित हुआ यह विद्वान् पुरुष अमृतकूं प्राप्त होवैहै । अर्थात् सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिपूर्वक ब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षकूं प्राप्त होवै है ॥ २० ॥

तहां इन सत्त्वादिक तीन गुणोंका अतिक्रमणकरिकै यह विद्वान् पुरुष जीवितकालविषेही मोक्षरूप अमृतकूं प्राप्त होवै है, इस पूर्वउक्त अर्थकूं श्रवणकरिकै अर्जुन तिस गुणातीत पुरुषके लक्षण जानणेकी तथा आचार जानणेकी तथा गुणातीतपणेके उपाय जानणेकी इच्छा करता हुआ श्रीभगवान्‌के प्रति प्रश्न करैहै—

कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ॥
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्त्तते ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) कैः । लिंगैः । त्रीन् । गुणान् । एतान् । अतीतः । भवति । प्रभो । किमाचारः । कथम् । च । एतान् । त्रीन् । गुणान् । अतिवर्त्तते ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे प्रभो ! इन सत्त्वादिक तीन गुणोंकूं अतिक्रमण करणेहारा पुरुष किन लिंगोंकरिकै विशिष्ट होवैहै तथा किसआचारवाला होवै है तथा इन तीन गुणोंकूं किसप्रकारकरिकै अतिक्रमण करै है ॥ २१ ॥

भा० टी०—हे प्रभो ! सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंकूं अतिक्रमण करणेहारा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष है सो गुणातीत तत्त्ववेत्ता पुरुष किन लिंगोंकरिकै विशिष्ट होवैहै अर्थात् जिन लक्षणरूप लिंगोंकरिकै सो तत्त्ववेत्ता पुरुष जान्या जावैहै ते लक्षण-रूप लिंग आप हमारे प्रति कथन करो । इति प्रथमप्रश्नः ॥ तथा गुणातीत तत्त्ववेत्ता पुरुष कौन आचार होवैहै अर्थात् सो तत्त्ववेत्ता पुरुष यथेष्ट चेष्टावाला होवैहै अथवा नियमपूर्वक चेष्टावाला होवैहै । सो तत्त्ववेत्ता पुरुषका आचारभी आप हमारे प्रति कथन करो । इति द्वितीयप्रश्नः ॥ तथा सो तत्त्ववेत्ता पुरुष किस प्रकार करिकै इन तीन गुणोंकूं अतिक्रमण करै है अर्थात् तिस गुणातीत-पणेका उपाय कौन है सो उपायभी आप हमारे प्रति कथन करो । इति तृतीय-प्रश्नः ॥ इहां (हे प्रभो) इस संबोधनके कहणेकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्‌के प्रति यह अर्थ सूचन कऱ्या—दुःखादिकोंको निवृत्तकरणेविषे जो समर्थ होवै ताका नाम प्रभु है। जैसे राजादिक समर्थ पुरुष आपणे भृत्योंके दुःखकूं निवृत्त करैं हैं तैसे समर्थ होणेतैं आप भगवान्‌नैंही मैं भृत्यका दुःख निवृत्त करणे योग्य है ॥ २१ ॥

तहां यद्यपि इस गीताशास्त्रके द्वितीय अध्यायविषे (स्थितप्रज्ञस्य का भाषा) इत्यादिक वचनोंकरिकै यह सर्व अर्थ पूर्वही अर्जुननैं पूछाथा । तथा (प्रजहाति यदा कामान्) इत्यादिक वचनोंकरिकै मैं भगवान्‌नैं तिसका उत्तरभाग पूर्वही कथन कऱ्या था तथापि यह अर्जुन तिस पूर्वउक्त अर्थकूं पुनः प्रकारांतरकरिकै जानणे-की इच्छा करताहुआ अबी पूछैहै । इसप्रकारके ता अर्जुनके अभिप्रायकूं निश्चय करिकै श्रीभगवान् तिस पूर्वउक्त प्रकारतैं विलक्षण प्रकारकरिकै तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके लक्षणादिकोंकूं पांचश्लोकोंकरिकै कथन करै हैं । तहां सो गुणातीत पुरुष किन लक्षणरूप लिंगोंकरिकै विशिष्ट होवैहै । इस प्रथम प्रश्नके उत्तरकूं एक श्लोक-करिकै कथन करैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पांडव ॥
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि निवृत्तानि कांक्षति ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) प्रकाशम् । च । प्रवृत्तिम् । च । मोहम् । एव । च । पांडव । न । द्वेष्टि । संप्रवृत्तानि । न । निवृत्तानि । कांक्षति ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! प्रवृत्तहुए प्रकाशकूं तथा प्रवृत्तिकूं तथा मोहकूं जो पुरुष कदाचितभी नहीं द्वेषकरैहै तथा निवृत्तहुए तिन्होंकूं नहीं इच्छा करैहै सो पुरुष गुणातीत कह्या जावै है ॥ २२ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! सत्त्वगुणका कार्यरूप जो प्रकाश है तथा रजोगुणका कार्यरूप जा प्रवृत्ति है तथा तमोगुणका कार्यरूप जो मोह है । इहां प्रकाश, प्रवृत्ति, मोह यह तीनों कार्य सत्त्वादिक तीन गुणोंके दूसरेभी सर्वकार्योंके उपलक्षण हैं । ते सत्त्वादिक तीन गुणोंके प्रकाशादिक सर्व कार्य आपणी आपणी कारणसामग्रीके वशतैं उत्पन्न हुए यद्यपि दुःखरूपही होवैं हैं तथापि जो विद्वान् पुरुष दुःखबुद्धिकरिकै तिन कार्योंविषे द्वेषकूं नहीं करै है अर्थात यह दुःखरूप गुणोंके कार्य काहेकूं उत्पन्न हुए हैं याप्रकारतैं जो विद्वान् पुरुष तिन्होंविषे द्वेषकूं करता नहीं । और ते सत्त्वादिक गुणोंके प्रकाशादिक कार्य आपणे आपणे विनाशकी सामग्रीके वशतैं निवृत्तहुए यद्यपि सुखरूपही होवैंहैं, तथापि जो विद्वान् पुरुष सुखबुद्धिकरिकै तिन्होंकी इच्छा नहीं करै है अर्थात सुखरूप यह गुणोंके कार्योंकी निवृत्ति हमारेकूं सर्वदा प्राप्तहोवै याप्रकारकी जो पुरुष इच्छा करता नहीं । काहेतैं सो विद्वान् पुरुष तिस सत्त्वादिक गुणोंकूं तथा तिन सत्त्वादिकगुणोंके कार्योंकूं स्वप्नकी न्याईं मिथ्यारूपही जानैं हैं । और मिथ्यारूप करिकै जान्याहुआ पदार्थ इस पुरुषके रागका वा द्वेषका विषय होवै नहीं । जैसे मिथ्यारूपकरिकै जान्याहुआ शुक्तिरजत इस पुरुषके रागका विषय नहीं होवैहै । और मिथ्यारूप करिकै जान्याहुआ रज्जुसर्प इस पुरुषके द्वेषका विषय नहीं होवैहै । इसप्रकार सत्त्वादिक तीन गुणोंके प्रकाशादिक कार्योंकी प्रवृत्तिविषे जो पुरुष द्वेषतैं रहित है । तथा तिन कार्योंकी निवृत्तिविषे जो पुरुष रागतैं रहित है सो विद्वान् पुरुष गुणातीत कह्या जावै है । इसप्रकार इस श्लोकका चतुर्थ श्लोकविषे स्थित (गुणातीतः स उच्यते ।) इस वचनके साथि अन्वय करणा । तहां श्रीभगवाननैं यह जो गुणातीत पुरुषका लक्षण कथन कऱ्या है सो यह गुणातीत पुरुषका लक्षण तिस गुणातीत पुरुषकूंही प्रत्यक्ष है दूसरे किसीकूं प्रत्यक्ष है नहीं । काहेतैं एक पुरुषके अंतःकरणविषे रह्या जो द्वेष है तथा ता द्वेषका अभाव है तथा राग है

तथा ता रागका अभाव है तिन द्वेषादिकोंकूं दूसरा पुरुष जानिसकता नहीं। यातैं यह गुणातीत पुरुषका लक्षण स्वार्थलक्षणही है पदार्थलक्षण है नहीं। तहां जो लक्षण केवल आपणेकूंही ज्ञात होवै है सो लक्षण स्वार्थलक्षण कह्या जावै है। और जो लक्षण दूसरेकूंभी ज्ञात होवै है सो लक्षण परार्थलक्षण कह्या जावै है। इसी स्वार्थलक्षणकूं शास्त्रविषे स्वसंवेद्य कहैं हैं। और इसी परार्थलक्षणकूं शास्त्रविषे परसंवेद्य कहैं हैं ॥ २२ ॥

अब सो गुणातीतपुरुष किस आचारवाला होवै इस द्वितीयप्रश्नके उत्तरकूं श्रीभगवान् तीन श्लोकोंकरिकै वर्णन करैं हैं—

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ॥
गुणावर्त्तंत इत्येव योऽवतिष्ठति नेंगते ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) उदासीनवत् । आसीनः । गुणैः । यः । न । विचाल्यते । गुणाः । वर्त्तंते । इति । एवं । यः । अवतिष्ठति । न । इंगते ॥२३॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष उदासीनपुरुषकी न्याईं स्थित है तथा सत्त्वादिकगुणोंनैं नहीं चलायमान करीता तथा ते गुण ही परस्पर वर्त्ततेहैं इसप्रकारका निश्चयकरिकै जो पुरुष स्थितहोवै है तथा नहीं किंचित्मात्रभी व्यापार करै है सो पुरुष गुणातीत कह्याजावै है ॥ २३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! परस्पर विवाद करणेहारे जे दो पुरुष हैं तिन दोनोंके मध्यविषे किसीकेभी पक्षकूं जो पुरुष अंगीकार करता नहीं ता पुरुषका नाम उदासीन है। सो उदासीन पुरुष जैसे किसी पुरुषविषे रागकूंभी करता नहीं तथा किसी पुरुषविषे द्वेषकूंभी करता नहीं किंतु सो उदासीन पुरुष रागद्वेषतैं रहित हुआ स्थित होवैहै। तिस उदासीन पुरुषकी न्याईं जो पुरुष रागद्वेषतैं रहित होइकै आपणे सत् आनंदस्वरूपविषेही स्थित होवै है। तथा सुखदुःखादिरूप आकारकरिकै परिणामकूं प्राप्तहुए ते सत्त्वादिक तीन गुण हैं ऐसे तीन गुणोंनैंभी जो पुरुष आपणे स्वरूपकी स्थितितैं चलायमान करीता नहीं किंतु देह, इंद्रिय, विषय इत्यादिरूप आकारकरिकै परिणामकूं प्राप्तहुए ते सत्त्वादिक गुणही आपसमैं साधकबाधक भावकरिकै तथा ग्राह्यग्राहक भावकरिकै तथा उपकार्य उपकारक भावकरिकै वर्त्तते हैं। इन सर्वगुणोंका प्रकाशक जो मैं आत्मा हूं तिस मैं आत्माका किसीभी

प्रकाश्यवस्तुके धर्मसाथि संबंध है नहीं। जैसे घटादिक सर्वपदार्थोंकूं प्रकाश करणेहारे सूर्यका किसीभी प्रकाश्यरूप घटादिक पदार्थोंके धर्मोंके साथि संबंध है नहीं। और यह सर्वप्रपंच दृश्यरूप है तथा जडरूप है तथा स्वप्नकी न्याईं मिथ्याही है और मैं आत्मा तौ द्रष्टा हूं तथा स्वयंज्योतिस्वरूप हूं तथा परमार्थ सत्य हूं तथा सर्व विकारोंतैं रहित हूं तथा द्वैतभावतैं रहित हूं। इस प्रकारका निश्चय करिकै जो पुरुष आपणे स्वरूपविषेही स्थित होवैहै किसीभी कार्यकी सिद्धिवासतै व्यापारवाला होता नहीं ऐसा तत्त्ववेत्ता पुरुष गुणातीत कह्याजावैहै। इसप्रकार इस श्लोकका तीसरे श्लोकविषे स्थित (गुणातीतः स उच्यते) इस वचनके साथि अन्वय करणा। इहां (योवतिष्ठति) इस वचनके स्थानविषे (योनुतिष्ठति) इसप्रकारकाभी किसी पुस्तकविषे पाठ होवैहै सो इस प्रकारके पाठविषेभी सो पूर्वउक्त अर्थही जानणा ॥ २३ ॥

किंच–

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः ॥
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) समदुःखसुखः । स्वस्थः । समलोष्टश्मकांचनः । तुल्यप्रियाप्रियः । धीरः । तुल्यनिदात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! समहै दुःख सुख दोनों जिसकूं तथा स्वरूपविषे है स्थिति जिसकी तथा सम हैं लोष्ट अश्म कांचन जिसकूं तथा तुल्यहैं प्रिय अप्रिय दोनों जिसकूं तथा तुल्यहैं आपणी निंदा स्तुति दोनों जिसकूं ऐसा धीरपुरुष गुणातीत कह्याजावै है ॥ २४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषका दुःखविषे तौ द्वेष नहीं है तथा सुखविषे राग नहीं है। और ते दुःख सुख दोनोंही अनात्मारूप अंतःकरणके ही धर्म हैं। तथा स्वप्नकी न्याईं मिथ्यारूप हैं। यातैं रागद्वेषतैं रहितपणेकरिकै तथा अनात्मधर्मपणेकरिकै तथा मिथ्यापणेकरिकै सम हैं ते दुःख सुख दोनों जिस पुरुषकूं ताका नाम समदुःखसुख है। शंका–हे भगवन् ! तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं ते दुःख सुख दोनों किस हेतु सम हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ताकेविषे हेतु कहैं हैं (स्वस्थः इति) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो

तत्त्ववेत्ता पुरुष स्वस्थ है अर्थात् द्वैतदर्शनतैं रहित होणेतैं जो तत्त्ववेत्ता पुरुष आपणे आनंदस्वरूप आत्माविषेही स्थित है, इस कारणतैंही तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं ते दुःख सुख दोनों सम हैं। आत्माविषे स्थितितैं रहित बहिर्मुख पुरुषकूं तिन दुःख सुख दोनोंविषे विषमता होवै है। हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष आनंदस्वरूप आत्माविषेही स्थित है तिस कारणतैं ही सो तत्त्ववेत्ता पुरुष समलोष्टाश्मकांचन है। तहां सम हैं क्या ग्रहणत्यागभावतैं रहित हैं लोष्ट अश्म कांचन यह तीनों जिसकूं ताका नाम समलोष्टाश्मकांचन है। तहां मृत्तिकाके पिंडका नाम लोष्ट है और पाषाणका नाम अश्म है और सुवर्णका नाम कांचन है अर्थात् जो तत्त्ववेत्ता पुरुष लोष्टादिक तुच्छवस्तुवोंविषे तौ त्यागबुद्धितैं रहित है तथा सुवर्णादिक महान् पदार्थोंविषे ग्रहणबुद्धितैं रहित है। हे अर्जुन ! जिस कारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष समलोष्टाश्मकांचन है, इसकारणतैंही सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तुल्यप्रियाप्रिय है। तहां तुल्य हैं सुखका साधनरूप प्रिय तथा दुःखका साधनरूप अप्रिय दोनों जिस पुरुषकूं ताका नाम तुल्यप्रियाप्रिय है अर्थात् जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं सो प्रियपदार्थ तौ यह प्रियपदार्थ हमारे हितका साधन है या प्रकारकी हितसाधनता बुद्धिका विषय नहीं है। और सो अप्रियपदार्थ तौ यह अप्रियपदार्थ हमारे अहितका साधन है याप्रकारकी अहितसाधनता बुद्धिका विषय नहीं है किंतु ते प्रियअप्रिय दोनों तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी उपेक्षा बुद्धिकेही विषय होवैं हैं। तथा जो पुरुष धीर है अर्थात् बुद्धिमान् है अथवा धृतिमान् है। हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष धीर है इसकारणतैंही सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तुल्यनिंदात्मसंस्तुति है। तहां आपणे दोषोंके कथनका नाम निंदा है और आपणे गुणोंके कथनका नाम स्तुति है। तुल्य हैं आपणे निंदा तथा स्तुति दोनों जिस पुरुषकूं ताका नाम तुल्यनिंदात्मसंस्तुति है ऐसा तत्त्ववेत्ता पुरुष गुणातीत कह्या जावै है। इस प्रकारतैं इस श्लोकका द्वितीयश्लोकविषे स्थित (गुणातीतः स उच्यते) इस वचनके साथि अन्वय करणा ॥ २४ ॥

किंच-

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ॥
सर्वारंभपरित्यागी गुणतीतः स उच्यते ॥२५॥

(पदच्छेदः) मानापमानयोः । तुल्यः । तुल्यः । मित्रारिपक्षयोः । सर्वारंभपरित्यागी । गुणातीतः । सः । उच्यते ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष मानअपमानदोनोंविषे तुल्यहै तथा मित्रपक्ष-शत्रुपक्ष दोनोंविषे तुल्यहै तथा सर्व आरंभ परित्याग करे हैं जिसनैं सो पुरुष गुणातीत कह्याजावै है ॥ २५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो तत्त्ववेत्ता पुरुष मान अपमान दोनोंविषे तुल्य है तहां सत्कारका नाम मान है जिस सत्कारकूं लोकविषे आदर कहैं हैं । और तिर-स्कारका नाम अपमान है जिस तिरस्कारकूं लोकविषे अनादर कहैंहैं । तिस मान अपमान दोनोंविषे जो पुरुष तुल्य है अर्थात् मानकी प्राप्तिविषे जिस पुरुषकूं हर्ष नहीं होवै है तथा अपमानकी प्राप्तिविषे जिस पुरुषकूं विषाद नहीं होवै है । तहां पूर्वश्लोकविषे (तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ।) इस वचनकरिकै कथन करी जा निंदा स्तुति है तथा इस श्लोकविषे कथन करया जो मान अपमान है तिन दोनोंविषे इतना भेद है । निंदा स्तुति यह दोनों तौ शब्दरूपही होवैं हैं । काहेतैं दोषोंके कथनका नाम निंदा है और गुणोंके कथनका नाम स्तुति है सो कथन शब्दरूपही है । और मान अपमान तौ शब्दतैं विनाभी शरीर मनका व्यापारविशेषरूप होवैं हैं । इतना तिन दोनोंविषे भेद है इति । और किसी मूलपुस्तकविषे तौ (मानावमानयोस्तुल्यः) इसप्रकारकाभी पाठ होवै है इसप्रका-रके पाठविषे सो पूर्वउक्त अर्थही जानणा । तथा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष मित्रपक्ष शत्रु-पक्ष दोनोंविषे तुल्य है अर्थात् सो तत्त्ववेत्ता पुरुष जैसे मित्रपक्षके द्वेषका अविषय होवै है तैसे शत्रुपक्षकेभी द्वेषका अविषय होवै है । अथवा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष मित्र-पक्षविषे तौ अनुग्रह नहीं करैहै । और शत्रुपक्षविषे निग्रह नहीं करैहै । तथा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्वारंभपरित्यागी है । इहां शरीर मन वाणीकरिकै जिन्होंका आरंभ करयाजावै है तिन्होंका नाम आरंभ है ऐसे लौकिक वैदिक कर्म हैं तिन कर्मरूप सर्व आरंभोंका परित्याग करया है जिसनैं ताका नाम सर्वारंभपरित्यागी है । अर्थात् इस देहकी यात्रामात्रविषे उपयोगी जे भिक्षाअटनादिक कर्म हैं तिन कर्मोंतैं भिन्न दूसरे सर्व कर्मोंका परित्याग करया है जिसनैं ताका नाम सर्वारंभपरित्यागी है । इसप्रकार (उदासीनवदासीनः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै कथन करेहुए जे आचार हैं ऐसे आचारोंकरिकै युक्त जो है सो ही तत्त्ववेत्ता पुरुष गुणातीत कह्याजावै

है । तात्पर्य यह-(उदासीनवदासीनः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै कथन करे जे उपेक्षकत्वादिक धर्म हैं ते उपेक्षकत्वादिक धर्म आत्मज्ञानकी उत्पत्तितैं पूर्व तौ प्रयत्नसाध्य होवैं हैं अर्थात् आत्मज्ञानकी इच्छावान् अधिकारी पुरुषनैं तिस आत्मज्ञानके साधनरूपकरिकै ते उपेक्षकत्वादिक सर्व धर्म अनुष्ठान करणे। और तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तितैं अनंतर तिस गुणातीत जीवन्मुक पुरुषके तौ ते उपेक्षकत्वादिक सर्व धर्म विनाही प्रयत्नतैं सिद्ध लक्षणकरिकै स्थित होवैं हैं॥ २५॥

अब यह अधिकारी पुरुष किस उपायकरिकै तिन गुणोंकूं अतिक्रमण करैहै इस तृतीयप्रश्नके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ॥
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) माम् । च । यः । अव्यभिचारेण । भक्तियोगेन । सेवते । सः । गुणान् । समतीत्य । एतान् । ब्रह्मभूयाय । कल्पते ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो पुरुष मैं परमेश्वरकूं अनन्य भक्तियोगकरिकै चिंतन करैहै सो मेरा भक्त इनपूर्वउक्त सत्त्वादिक गुणोंकूं अतिक्रमणकरिकै ब्रह्म-होणेवासतै समर्थ होवैहै ॥ २६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! सर्वभूतोंका अंतर्यामी तथा आपणी मायाशक्ति-करिकै क्षेत्रज्ञभावकूं प्राप्तहुआ ऐसा जो मैं परमानंदघन भगवान् वासुदेव हूं तिस मैं परमेश्वरकूं ही जो अधिकारी पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोगकरिकै सेवन करैहै । तहां विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित जो तैलधाराकी न्याईं मैं परमात्मादेवविषयक सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह है ताका नाम अव्यभिचारी भक्तियोग । जो भक्तियोग पूर्व द्वादश अध्यायविषे विस्तारतैं निरूपण कऱ्याहै । ऐसे परमप्रेमरूप अनन्यभक्तियोगकरिकै जो पुरुष मैं नारायणकूं सर्वदा चिंतन करैहै सो मैं परमेश्वरका अनन्यभक्त इन पूर्वउक्त सत्त्वादिक तीन गुणोंकूं अति-क्रमण करिकै अर्थात् अद्वैतदर्शनकरिकै तिन सत्त्वादिक तीन गुणोंकूं बाधकरिकै निर्गुणब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षवासतै समर्थ होवैहै । यातैं सर्वकालविषे मैं परमेश्वरका चिंतनही तिस गुणातीतपणेका उपाय है ॥ २६ ॥

तहां मैं परमात्मादेवके चिंतन करणेहारा पुरुष मोक्षकूंही प्राप्त होवैहै इस पूर्वउक्त अर्थविषे श्रीभगवान् आपणी महानतारूप हेतुकूं कथन करैहैं–

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ॥
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य च ॥ २७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) ब्रह्मणः । हि । प्रतिष्ठा । अहम् । अमृतस्य । अव्ययस्य । च । शाश्वतस्य । च । धर्मस्य । सुखस्य । ऐकांतिकस्य । च ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं अमृतरूप तथा अव्ययरूप तथा शाश्वतरूप तथा धर्मरूप तथा अव्यभिचारी सुखरूप ऐसे सोपाधिककारणब्रह्मका मैं निरुपाधिक वासुदेव वास्तवस्वरूप हूं तिसकारणतैं मैं परमेश्वरकी भक्तितैं मोक्षकी प्राप्ति युक्तही है ॥ २७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तत्त्वमसि इस वाक्यविषे स्थित जो तत् पद है तिस तत् पदका वाच्यअर्थरूप तथा सर्वजगत्के उत्पत्तिस्थितिलयका कारणरूप ऐसा जो मायाविशिष्ट सोपाधिक ब्रह्म ऐसे सोपाधिक ब्रह्मका मैं निर्विकल्पक वासुदेवही प्रतिष्ठा हूं। अर्थात् पारमार्थिकरूप तथा निर्विकल्पकरूप तथा सत्चित् आनंदरूप ऐसा जो सर्व उपाधियोंतैं रहित तत्पदका लक्ष्य अर्थरूप है सो लक्ष्य अर्थरूप मैंही हूं। तहां (प्रतिष्ठत्यत्रेति प्रतिष्ठा) इसप्रकारकी व्युत्पत्तिकरिकै कल्पितरूपतैं रहित अकल्पितरूपही प्रतिष्ठाशब्दका अर्थ सिद्ध होवैहै। हे अर्जुन ! जिसकारणतैं मैं निरुपाधिक शुद्धब्रह्मही तिस सोपाधिक ब्रह्मका वास्तवस्वरूप हूं, तिसकारणतैं अधिकारी पुरुष मैं निरुपाधिक शुद्धब्रह्मका निरंतर चिंतन करैहै। सो अधिकारी पुरुष मैं निर्गुणब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षवासतै समर्थ होवैहै यह पूर्वउक्त अर्थ युक्तही है इति। शंका–हे भगवन् ! किसप्रकारके ब्रह्मकी आप प्रतिष्ठा हो ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिस ब्रह्मके विशेषणोंकूं कथन करैहैं–(अमृतस्य इति) हे अर्जुन ! जिस ब्रह्मका मैं परमेश्वर प्रतिष्ठारूप हूं सो ब्रह्म कैसा है–अमृत है अर्थात् विनाशतैं रहित है । तहां श्रुति–(एतदमृतमभयमे-

तद्ब्रह्म ।) अर्थ यह—यह ब्रह्मही अमृतरूप है तथा अभयरूप है इति । पुनः कैसा है सो ब्रह्म—अव्यय है अर्थात् विपरिणामतैं रहित है । पुनः कैसा है सो ब्रह्म—शाश्वत है अर्थात् अपक्षयतैं रहित है । इहां विनाश, विपरिणाम, अपक्षय इन तीन विकारोंका निषेध जन्म, अस्ति, वृद्धि इन तीन विकारोंके निषेधकाभी उपलक्षण है अर्थात् सो ब्रह्म षट्भावविकारोंतैं रहित है । पुनः कैसा है सो ब्रह्म—धर्मरूप है अर्थात ज्ञाननिष्ठारूप धर्मकरिकै प्राप्त होणेयोग्य है । पुनः कैसा है सो ब्रह्म—सुखरूप है अर्थात् परमानंदरूप है । अब तिस सुखविषे विषय इंद्रियके संयोगकारिकै जन्यत्वकूं निवृत्त करणेवासतै ता सुखका विशेषण कथन करैंहैं (ऐकांतिकस्य इति) कैसा है सो सुख ऐकांतिक है अर्थात् जो सुख विषयजन्य सुखकी न्याईं व्यभिचारी नहींहै किंतु सर्वदेशविषे तथा सर्वकालविषे जो सुख विद्यमान है इसीही व्यापक सुखकूं (यो वै भूमा तत्सुखम्) यह श्रुतिभी कथन करैहै ऐसे अमृतादिक सर्वविशेषणोंकारिकै विशिष्ट ब्रह्मका मैं परमेश्वर जिसकारणतैं वास्तवस्वरूप हूं तिसकारणतैंही मैं परमेश्वरका अनन्यभक्त इस संसारबंधतैं मुक्त होवैहै इति । तहां इसप्रकारका श्रीकृष्णभगवान्का स्वरूप ब्रह्मानैंभी श्रीकृष्णभगवान्के प्रति कथन कऱ्याहै । तहां श्लोक—(एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनंत आद्यः । नित्योऽक्षरोजस्रसुखो निरंजनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥) अर्थ यह—हे श्रीकृष्णभगवन् ! आप कैसे हो-एक हो अर्थात् सर्वत्र एकरूप हो तथा सर्वप्राणियोंका आत्मारूप हो । तथा पुरुष हो अर्थात् सर्वशरीररूप पुरियोंविषे अस्ति भाति प्रिय रूपकारिकै स्थित हो । तथा पुराण हो अर्थात् इसतैं पूर्वभी विद्यमान हो । तथा सत्य हो अर्थात् तीन कालोंविषे बाधतैं रहित हो । तथा स्वयंज्योति हो अर्थात् आपणे प्रकाशवासतै इतरप्रकाशकी अपेक्षातैं रहित हो । तथा अनंत हो अर्थात् देश काल वस्तु परिच्छेदतैं रहित हो । तथा आद्य हो अर्थात् सर्वका आदिकारण हो । तथा नित्य हो अर्थात् उत्पत्तिविनाशतैं रहित हो । तथा अक्षर हो तथा व्यापक सुखस्वरूप हो । तथा निरंजन हो अर्थात् अज्ञानरूप अंजनतैं रहित हो । तथा सर्वत्र परिपूर्ण हो । तथा द्वैतभावतैं रहित हो । तथा सर्वउपाधियोंतैं रहित हो । तथा अमृतरूप हो अर्थात् मोक्षस्वरूप हो इति । इस श्लोकविषे श्रीब्रह्मानैं श्रीकृष्णभगवान्कूं सर्वउपाधियोंतैं रहित आत्मारूप तथा ब्रह्मरूप

कह्या है । और इसी प्रकारका श्रीकृष्ण भगवान्‌का स्वरूप श्रीशुकदेवनैंभी स्तुतिप्रसंगतैं विनाही कथन कऱ्या है । तहां श्लोक–(सर्वेषामेव वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः । तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥) अर्थ यह– जितनी कार्यरूप वस्तु हैं तिन सर्व कार्यरूप वस्तुवोंका जो भावार्थ है क्या सत्तारूप परमार्थस्वरूप है सो भावार्थ कार्यरूपकरिकै जायमान सोपाधिक ब्रह्मविषेही स्थित है । काहेतैं सिद्धांतविषे कारणकी सत्तातैं पृथक् कार्यकी सत्ता अंगीकार है नहीं । जैसे कुंडलकंकणादिक भूषणरूप कार्योंकी सुवर्णरूप कारणकी सत्तातैं पृथक् सत्ता है नहीं । तथा जैसे घटशरावादिक कार्योंकी मृत्तिकारूप कारणकी सत्तातैं पृथक् सत्ता है नहीं । तैसे इस प्रपंचरूप कार्यकीभी तिस सोपाधिक ब्रह्मरूप कारणकी सत्तातैं पृथक् सत्ता है नहीं । यह वार्त्ता (तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः ।) इस सूत्रके व्याख्यानविषे श्रीभाष्यकारोंनैं विस्तारतैं कथन करीहै। और तिस कारणरूप सोपाधिकब्रह्मकाभी सो सत्तारूप भावार्थ श्रीकृष्णभगवान् है । काहेतैं सो सोपाधिक कारणब्रह्म निरुपाधिक ब्रह्मविषेही कल्पित है। और जो जो कल्पित वस्तु होवै है सो सो अधिष्ठानतैं पृथक् होवै नहीं । जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्प रज्जुरूप अधिष्ठानतैं पृथक् नहीं है। और श्रीकृष्णभगवान् ही सर्व कल्पनावोंका अधिष्ठानरूप होणेतैं परमार्थसत्य निरुपाधिक ब्रह्मरूप है । यातैं यह निरुपाधिक ब्रह्मरूप श्रीकृष्णभगवान्‌ही तिस कारणरूप सोपाधिक ब्रह्मका परमार्थसत्तारूप भावार्थ है । ऐसे अधिष्ठानब्रह्मरूप श्रीकृष्णभगवान्‌तैं अन्य कोईभी वस्तु पारमार्थिक है नहीं किंतु सो परब्रह्मरूप श्रीकृष्णभगवान् ही एक पारमार्थिक है इति । इसीही अर्थकूं श्रीभगवान्‌नैं इहां (ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाहम्) इस वचनकरिकै कथन कऱ्याहै इति । अथवा (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम् ।) इस श्लोकका यह दूसरा अर्थ करणा । शंका–हे भगवन् ! जो पुरुष जिस देवताका ध्यान करैहै सो पुरुष तिसीही देवताभावकूं प्राप्त होवै है । यातैं तुम्हारा भक्त तुम्हारे भावकूं तौ प्राप्त होवैगा परंतु सो तुम्हारा भक्त ब्रह्मभावकूं कैसे प्राप्त होवैगा? किंतु ब्रह्मभावकूं नहीं प्राप्त होवैगा । जिसकारणतैं आप तिस ब्रह्मतैं जुदाही हो । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् आपकूं ब्रह्मरूपता कथन करैं हैं (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहमिति)हे अर्जुन ! सर्वउपाधियोंतैं रहित परमात्मादेवरूप शुद्धब्रह्मका परिअवसानरूप प्रतिष्ठा मैंही हूं अर्थात् मेरेतैं सो परब्रह्म भिन्न नहीं है किंतु मैंही

परब्रह्मरूप हूं । तथा अव्ययरूप अमृतकीभी मैंही प्रतिष्ठा हूं । तहां सर्व अनर्थकी निवृत्तिपूर्वक परमानंदकी प्राप्तिरूप जो मोक्ष है ताका नाम अमृत है सो मोक्षरूप अमृत किसी प्रकारकरिकैभी नाश होता नहीं । यातैं सो मोक्षरूप अमृत अव्यय कह्याजावैहै । ऐसे विनाशतैं रहित मोक्षरूप अमृतकाभी मैं परमात्मादेवविषेही परिअवसान है अर्थात् मैं परमात्मादेवकी अभेदरूपकरिकै प्राप्तिही मोक्ष है। तथा शाश्वतधर्मकाभी मैं ही प्रतिष्ठा हूं । तहां नित्यमोक्ष है फल जिसका ऐसा जो ज्ञाननिष्ठारूप धर्म है ताका नाम शाश्वतधर्म है । ऐसा मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करणेहारा ज्ञाननिष्ठारूप धर्मभी मैं परमेश्वरविषेही परिअवसानवाला है अर्थात् तिस ज्ञाननिष्ठारूप धर्मकरिकै मैं परमात्मादेवतैं भिन्न दूसरा कोई वस्तु प्राप्त होता नहीं किंतु मैं परमात्मादेवही तिस ज्ञाननिष्ठारूप धर्मकरिकै प्राप्त होता हूं । तथा ऐकांतिक सुखकीभी मैंही परिअवसानरूप प्रतिष्ठा हूं । अर्थात् परमानंदस्वरूप होणेतैं मैं परमात्मादेवही सर्व मुमुक्षुजनोंकूं अभेदरूपकरिकै प्राप्त होणेयोग्य हूं । मैं परमात्मादेवतैं भिन्न दूसरा किंचित्मात्रभी सुख प्राप्त होणेयोग्य नहीं है । तहां श्रुति—(यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति ।) अर्थ यह—देश, काल, वस्तु, परिच्छेदतैं रहित सर्वत्र व्यापक परमात्मादेवही सुखरूप है परिच्छिन्नपदार्थोंविषे किंचित्मात्रभी सुख नहीं है इति । हे अर्जुन ! जिसकारणतैं मैं परमात्मादेव इसप्रकारका हूं तिसकारणतैं मैं परमात्मादेवका अनन्यभक्त ब्रह्मभावकूंही प्राप्त होवैहै यह पूर्वउक्त अर्थ युक्तही है । और किसीटीकाविषे तौ (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्) इस श्लोकका यह अर्थ कर्‍याहै—इस गीताके चतुर्थ अध्यायविषे (एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।) इस वचनविषे स्थित ब्रह्मशब्दकरिकै वेदकाही ग्रहण कर्‍या है । यातैं इहां भी ब्रह्मशब्दकरिकै वेदकाही ग्रहण करणा । ऐसे ब्रह्मनामा वेदका मैं परमात्माही प्रतिष्ठा हूं अर्थात् सर्व वेदोंका तात्पर्यकरिकै परिअवसानका स्थान मैं परब्रह्मही हूं। तहां श्रुति—(सर्वे वेदा यत्पदमामनंति ।) अर्थ यह—कर्म, उपासना, ज्ञान यह तीनकांडरूप ऋगादिक सर्ववेद साक्षात् वा परंपराकरिकै जिस परब्रह्मरूप पदकूंही कथन करैं हैं इति । कैसा है सो वेद—अमृत है अर्थात् कर्म ब्रह्म इन दोनोंके प्रतिपादनद्वारा मोक्षरूप अमृतका साधन है। पुनः कैसा है सो वेद—अव्यय है अर्थात् उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं सो वेद अपौरुषेय है अपौरुषेय होणेतैं ही सो वेद अप्रामाण्यशंकारूप कलंकतैं

रहित स्वतः प्रमाणरूप है। और शाश्वतधर्मकाभी मैं ही प्रतिष्ठा हूं अर्थात् जैसे काम्यधर्म स्वर्गादिक फलकी प्राप्तिकरिकै नाश होइजावैं हैं तैसे भगवतविषे अर्पण कन्याहुआ यह नित्यधर्म नाश होवै नहीं। तथा विविदिषादिकोंकी उत्पत्तिद्वारा मोक्षरूप शाश्वतफलका हेतु होवैहै। यातैं भगवत्‌विषे अर्पण कऱ्याहुआ सो नित्य-धर्म शाश्वतधर्म कह्याजावै है। ऐसे शाश्वतधर्मकरिकै प्राप्त होणेयोग्य परमफलरूपभी मैं परमात्मादेवही हूं। और विषयसंबंधजन्य सुखतैं रहित ऐसा जो स्वरूपभूत मोक्षसुख है ताका नाम ऐकांतिक सुख है। ऐसे ऐकांतिक सुखकाही मैं परमात्मादेवही प्रतिष्ठा हूं अर्थात् पराकाष्ठारूप हूं। हे अर्जुन ! जिसकारणतैं मैं परमात्मादेव इसप्रकारका हूं तिसकारणतैं ऐसे मैं परमात्मादेवकूं चिंतनकरणेहारा अधिकारी जन ब्रह्मभावकूंही प्राप्त होवैहै यह पूर्वउक्त अर्थ युक्तही है॥ २७॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

अथ पञ्चदशाऽध्यायप्रारंभः।

तहां पूर्व चतुर्दश अध्यायविषे संसारबंधनके हेतुभूत सत्त्वादिक तीन गुणोंको कथन करिकै इस अधिकारी पुरुषकूं मैं परमेश्वरके अनन्य भक्तियोगकरिकै तिन सत्त्वादिक तीन गुणोंके अतिक्रमणपूर्वक ब्रह्मभावरूप मोक्ष प्राप्त होवैहै। यह अर्थ श्रीभगवान्नैं (मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते। स गुणान्समतीत्यै-तान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥) इस वचनकरिकै कथन कऱ्या। तहांतैं मनुष्यके भक्तियोगकरिकै इस अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मभावकी प्राप्ति कैसे होवैगी ? किंतु नहीं होवैगी। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् आपणेविषे ब्रह्मरूपताके बोधन करणेवासतै (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च। शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य च॥) यह सूत्ररूप श्लोक कथन करताभया। इसी सूत्रभूत श्लोकके अर्थकूं विस्तारतैं वर्णन करणेहारा यह वृत्तिरूप पंचदश अध्याय श्रीभगवान्नैं प्रारंभ करीताहै। जिस कारणतैं श्रीकृष्णभगवान्के वास्तव-स्वरूपकूं जानिकै तिसके निरतिशय प्रेमरूप भजनकरिकै गुणातीत हुए यह अधि-करी लोग किसीभी प्रकारकरिकै ब्रह्मभावरूप मोक्षकूं प्राप्त होवैहैं इति। तहां

(ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्) इत्यादिक भगवान्‌के वचनकूं श्रवणकारिकै मैं अर्जुनके तुल्य मनुष्यरूप यह कृष्ण ब्रह्मकाभी मैं प्रतिष्ठा हूं इस प्रकारका वचन कैसे कहवाहै इस प्रकारके विस्मय करिकै युक्त हुए तथा पूछणेयोग्य अर्थकी अस्फूर्तिरूप अप्रतिभाकरिकै तथा लज्जाकरिकै किंचितमात्रभी पूछणेकूं असमर्थ हुए ऐसे अर्जुनकूं जानिकरिकै कृपाकरिकै ता अर्जुनके प्रति आपणे स्वरूपके कहणेकी इच्छा करतेहुए श्रीभगवान् कहैं हैं। तहां संसारतैं विरक्त पुरुषकूं ही परमेश्वरके वास्तवस्वरूपके ज्ञानविषे अधिकार है। वैराग्यतैं रहित पुरुषकूं ता ज्ञानविषे अधिकार है नहीं। यातैं प्रथम वैराग्य संपादन करचा चाहिये। तहां पूर्व अध्यायविषे कथन करचा जो परमेश्वरके अधीन वर्त्तणेहारे प्रकृतिपुरुषके संयोगका कार्यरूप संसार है तिस संसारकूं वृक्षरूप कल्पनाकरिकै वर्णन करैं हैं। तिस संसारतैं वैराग्यकी प्राप्तिवास्तै जिस कारणतैं सो वैराग्य भी तिस पूर्वउक्त गुणातीतपणेका उपायरूप ही है-

श्रीभगवानुवाच ।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ॥
छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) ऊर्ध्वमूलम् । अधःशाखम् । अश्वत्थम् । प्राहुः । अव्ययम् । छंदांसि । यस्य । पर्णानि । यः । तम् । वेद । सः । वेदवित् ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतियां इस संसारवृक्षकूं ऊर्ध्वमूलवाला तथा अधःशाखावाला तथा अश्वत्थ तथा अव्यय कहैं हैं जिस संसारवृक्षके कर्मकांडरूप वेद पर्ण हैं तिस संसाररूप वृक्षकूं जो पुरुष जानता है सो पुरुषही वेदवेत्ता है ॥ १ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! यह संसाररूप वृक्ष कैसा है ऊर्ध्वमूल है। तहां स्वप्रकाशपरमानंदरूप होणेतैं तथा नित्य होणेतैं सर्वतैं उत्कृष्ट कारणरूप जो ब्रह्म है ताका नाम ऊर्ध्व है सो ऊर्ध्व है मूल क्या कारण जिसका ताका नाम ऊर्ध्वमूल है। अथवा सर्व संसारके बाध हुएभी बाधतैं रहित तथा सर्व संसारभ्रमका अधिष्ठान ऐसा जो ब्रह्म है ताका नाम ऊर्ध्व है सो ऊर्ध्व है आपणी मायाशक्तिकारिकै मूल

क्या कारण जिसका ताका नाम ऊर्ध्वमूल है। पुनः कैसा है यह संसाररूप वृक्ष-अधःशाख है। इहां (अधः) इस शब्दकरिकै पश्चात् उत्पन्नहुए कार्यरूप उपाधिवाले हिरण्यगर्भादिकोंका ग्रहण करणा। और जैसे लोकप्रसिद्ध वृक्षकी शाखा पूर्वपश्चिमादिक दिशावोंविषे प्रसृत होवैं हैं तैसे ते हिरण्यगर्भादिकभी नानादिशावोंविषे प्रसृत हुएहैं। यातैं ते हिरण्यगर्भादिक हैं प्रसिद्ध शाखावोंकी न्याईं शाखा जिसकी ताका नाम अधःशाख है। पुनः कैसा है यह संसाररूप वृक्ष-अश्वत्थ है। तहां जो वस्तु यह वस्तु अगले दिनविषे रहैगा या प्रकारके विश्वासके योग्य नहीं होवै ताका नाम अश्वत्थ है इस प्रकारके विश्वासके अयोग्य होणेतैं यह संसारवृक्ष अश्वत्थ है। पुनः कैसा है यह संसाररूप वृक्ष—अव्यय है अर्थात् अनादि अनंतरूप जो यह देहादिकोंका प्रवाह है तिसका यह संसाररूप वृक्ष आश्रय है। तथा आत्मज्ञानतैं विना अन्य किसी उपायकरिकै इस संसारवृक्षका उच्छेद होता नहीं। यातैं यह संसारवृक्ष अव्यय है। इस प्रकारतैं श्रुतिस्मृतियां इस मायामय संसारवृक्षकूं ऊर्ध्वमूलवाला तथा अधःशाखावाला तथा अश्वत्थरूप तथा अव्ययरूप कथन करैंहैं। तहां श्रुति—(ऊर्ध्वमूलोऽर्वाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।) अर्थ यह—सर्वतैं उत्कृष्ट जो ब्रह्म है ताका नाम ऊर्ध्व है सो ऊर्ध्व है मूल क्या कारण जिसका ताका नाम ऊर्ध्वमूल है। और अर्वाक् नाम निकृष्टका है ऐसे निकृष्ट कार्यरूप उपाधिवाले हिरण्यगर्भादिक हैं। अथवा महत्तत्त्व अहंकार पंचतन्मात्रा इत्यादिक हैं ते हिरण्यगर्भादिक अथवा महत्तत्त्व अहंकारादिक प्रसिद्ध शाखाकी न्याईं शाखा हैं जिसकी ताका नाम अर्वाक्शाख है। ऐसा ऊर्ध्वमूल तथा अर्वाक्शाख यह संसाररूप अश्वत्थवृक्ष सनातन है इति। इत्यादिक श्रुतियां कठवल्ली उपनिषद्विषे पठन करी हैं। तहां इस श्रुतिविषें स्थित जो अर्वाक्शाखः यह पद है सो पद मूलश्लोकविषे स्थित अधःशाखम् इस पदके समान अर्थवाला है। और श्रुतिविषे स्थित जो सनातनः यह पद है सो पद मूलश्लोकविषे स्थित अव्ययम् इस पदके समान अर्थवाला है। इसीप्रकारके इस संसाररूप वृक्षकूं स्मृतिवचनभी कथन करैंहैं। तहां स्मृति—(अव्यक्तमूलप्रभवस्तस्यैवानुग्रहोत्थितः। बुद्धिस्कंधमयश्चैव इंद्रियान्तरकोटरः॥ १॥ महाभूतविशाखश्च विषयैः पत्रवांस्तथा। धर्माधर्मसुपुष्पश्च सुखदुःखफलोदयः॥ २॥ आजीव्यः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः। एतद्ब्रह्मवनं चैव ब्रह्मा चरति

साक्षिवत् ॥ ३ ॥ एतच्छित्त्वा च भित्त्वा च ज्ञानेन परमासिना । ततश्चात्मगतिं प्राप्य तस्मान्नावर्त्तते पुनः ॥ ४ ॥) अर्थ यह—अव्याकृत है नाम जिसका ऐसा जो मायाविशिष्ट ब्रह्म है ताका नाम अव्यक्त है सो अव्यक्तही मूल कहिये कारणरूप है। ऐसे अव्यक्तरूप मूलतैं है प्रभव क्या उत्पत्ति जिसकी ताका नाम अव्यक्तमूलप्रभव है। ऐसा यह संसाररूप वृक्ष है। तथा तिस अव्यक्तरूप मूलके अनुग्रहतैंही यह संसारवृक्ष उत्थित हुआहै अर्थात् तिस अव्यक्तरूप मूलके दृढपणेकरिकै ही यह संसाररूप वृक्ष महान् वृद्धिकूं प्राप्त हुआहै । और जैसे लोकप्रसिद्ध वृक्षकी शाखा स्कंधतैं उत्पन्न होवैंहैं तैसे बुद्धितैं ही इस संसारके नानाप्रकारके परिणाम उत्पन्न होवैं हैं। इस प्रकारके समानधर्मपणेकरिकै यह बुद्धिही स्कंधरूप है। ऐसे बुद्धिरूप स्कंधवाला होणेतैं यह संसारवृक्ष बुद्धिस्कंधमय कह्या जावैहै। और जैसे प्रसिद्ध वृक्षके भीतर छिद्ररूप कोटर होवैंहैं तैसे इस संसारवृक्षविषे श्रोत्रादिक इंद्रियोंके छिद्र ही कोटररूप हैं इति ॥१॥ और जैसे यह प्रसिद्धवृक्ष अनेकसाखावोंवाला होवैहै तैसे यह संसाररूप वृक्षभी आकाशादिक पंचमहाभूतरूप विविधप्रकारकी शाखावोंवाला है। अथवा विशाखा यह शब्द स्तंभका वाचक है यातैं महाभूत हैं विशाखा क्या स्तंभ जिसके ताका नाम महाभूतविशाख है। और जैसे लोकप्रसिद्ध वृक्ष पत्रोंवाला होवै है तैसे यह संसाररूप वृक्षभी शब्दस्पर्शादिक विषयरूप पत्रोंवाला है। और जैसे लोकप्रसिद्ध वृक्षविषे पुष्प होवैंहैं तथा तिन पुष्पोंतैं फल उत्पन्न होवैंहैं तैसे यह संसार वृक्षभी धर्म अधर्मरूप पुष्पोंवाला है। तथा तिन धर्म अधर्मरूप पुष्पोंतैं उत्पन्न हुए सुखदुःखरूप फलोंवाला है इति ॥ २ ॥ और जैसे लोकप्रसिद्ध वृक्ष पक्षी आदिकोंका उपजीव्य होवैहै, तैसे यह संसाररूप वृक्षभी सर्वभूतप्राणियोंका उपजीव्य है जिसतैं उपजीवन होवै ताका नाम उपजीव्य है। और इस संसारवृक्षकूं परमात्मादेव ब्रह्मनैं आश्रित कऱ्याहै, यातैं इस संसारवृक्षकूं ब्रह्मवृक्ष कहैं हैं और यह संसारवृक्ष आत्मज्ञानतैं विना दूसरे किसीभी उपायकरिकै छेदन कऱ्या जाता नहीं। यातैं यह संसारवृक्ष सनातन कह्या जावैहै। और यह संसारवृक्ष जीवात्मारूप ब्रह्मका भोग्य है, यातैं इस संसारवृक्षकूं ब्रह्मवन कहैंहैं । ऐसे संसाररूप वृक्षविषे शुद्धब्रह्म तौ साक्षीकी न्याईं विराजमान है अर्थात् इस संसारके गुणदोषोंकरिकै सो ब्रह्म लिपायमान होवै नहीं इति ॥ ३ ॥ ऐसे संसारवृक्षकूं

अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारके दृढ आत्मज्ञानरूप खड्गकरिकै छेदन करिकै तथा भेदन करिकै अर्थात् मूलसहित नाश करिकै यह अधिकारी पुरुष आत्मारूप गतिकूं प्राप्त होइकै तिस आत्मारूप मोक्षतैं पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होता नहीं इति ॥ ४ ॥ इत्यादिक अनेक स्मृतियां इस संसारकूं वृक्षरूप करिकै वर्णन करैंहैं। यद्यपि लोकविषे ऐसा कोई वृक्ष प्रसिद्ध है नहीं जिसका मूल तौ ऊपरि होवै और शाखा नीचे होवैंहैं। तथा श्रीगंगाजीके तरंगोंकरिकै हन्यमान हुआ जो गंगाका ऊँचा तीर है तिस तीरतैं वायुनैं नीचै पतन कऱ्या जो महान् अश्वत्थका वृक्ष है तिस वृक्षका मूल तौ ऊपरि होवैहै और शाखा नीचै होवैंहैं। तिसी अश्वत्थ वृक्षकूं उपमानकरिकै श्रीभगवान्नैं इस संसाररूप वृक्षकूं ऊर्ध्वमूलवाला तथा अधःशाखावाला कह्या है। यातैं इस भगवान्के वचनविषे किंचित्मात्रभी विरोधकी प्राप्ति होवै नहीं इति। पुनः कैसा है यह मायामय संसाररूप अश्वत्थ-वृक्ष—वेदरूप छंद जिसके पर्ण हैं अर्थात् तत्त्ववस्तुका आवरक होणेतैं अथवा संसाररूप वृक्षका रक्षक होणेतैं यह कर्मकांडरूप ऋग्, यजुष्, साम, अथर्वण यह च्यारिवेद प्रसिद्धपर्णोंकी न्याईं जिस संसाररूप वृक्षके पर्णरूप हैं। तात्पर्य यह—जैसे प्रसिद्ध पर्ण वृक्षके परिरक्षणवासतैही होवैंहैं तैसे यह कर्मकांडरूप वेदभी इस संसाररूप वृक्षके परिरक्षणवासतैही हैं। काहेतैं ते कर्मकांडरूप वेद धर्म अधर्म तथा तिन्होंका कारण तथा तिन्होंका फल इन च्यारोंकूं ही प्रकाश करैंहैं। ता करिकै ते कर्मकांडरूप वेद इस संसाररूप वृक्षका परिरक्षण करैं हैं। यातैं तिन कर्मकांडरूप वेदोंविषे संसाररूप वृक्षकी पर्णरूपता युक्तही है इति। हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष इस प्रकारके मूलसहित मायामय अश्वत्थरूप संसारवृक्षकूं जानताहै सोईही अधिकारी पुरुष वेदवित् है अर्थात् कर्मकांडरूप वेदका जो कर्मरूप अर्थ है तथा ज्ञानकांडरूप वेदका जो ब्रह्मरूप अर्थ है तिस कर्मरूप अर्थकूं तथा ब्रह्मरूप अर्थकूं सोईही अधिकारी पुरुष जानता है इति। तहां इस संसारवृक्षका मूल तौ ब्रह्म है और हिरण्यगर्भादिक जीव इस संसारवृक्षकी शाखारूप हैं। ऐसा यह संसारवृक्ष आपणे स्वरूपकरिकै तौ विनाशवान् ही है और प्रवाहरूप करिकै तौ यह संसारवृक्ष अनंत है। ऐसा यह संसारवृक्ष वेदउक्त कर्मरूप जलकरिकै तौ सिंचन कऱ्या जावैहै और ब्रह्मज्ञान-रूप खड्गकरिकै छेदन कऱ्याजावैहै। इतना ही सर्व वेदोंका अर्थ है। इस

प्रकारके वेदके अर्थकूं जो अधिकारी पुरुष जानता है सो अधिकारी पुरुष ही सर्व अर्थाकूं जानता है । इस कारणतैं तिस मूलसहित संसारवृक्षके ज्ञानकी श्रीभगवान् स्तुति करैंहैं (यस्तं वेद स वेदवित् इति) ॥ १ ॥

अब श्रीभगवान् तिस पूर्वउक्त संसारवृक्षके अवयवोंकी दूसरीभी कल्पना कथन करैंहैं–

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ॥ अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) अधः । च । ऊर्ध्वम् । प्रसृताः । तस्य । शाखाः । गुणप्रवृद्धाः । विषयप्रवालाः । अधः । च । मूलानि । अनुसंततानि । कर्मानुबंधीनि । मनुष्यलोके ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिस संसारवृक्षकी शाखा नीचै तथा ऊपरि पसरीहुईहैं जे शाखा सत्त्वादिगुणोंकरिकै बंधीहुई हैं तथा शब्दादिकविषयरूप पल्लवोंवाली हैं तथा तिस संसारवृक्षके वासनारूप मूल नीचै तथा ऊपरि अनुस्यूत हैं जे मूल अधिकारी मनुष्यदेहविषे पुण्यपापरूप कर्मके जनक हैं ॥ २ ॥

भा० टी०–तहां पूर्वश्लोकविषे कार्यरूप उपाधिवाले हिरण्यगर्भादिक जीव इस संसारवृक्षकी शाखारूपकरिकै कथन करेथे । अब तिन शाखावोंविषेभी जा विशेषता स्थित है तिस विशेषताकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं (अधश्चोर्ध्वम्इति) हे अर्जुन ! तिन शाखारूप जीवोंविषेभी जे निषिद्ध आचरणवाले दुष्कृती जीव हैं ते दुष्कृतीजीव तौ इस संसारवृक्षकी नीचै पसरीहुई शाखा हैं अर्थात् ते पापी जीव पश्वादिक नीचयोनियोंविषे विस्तारकूं प्राप्तहुई शाखा हैं । और शास्त्रविहित आचरणवाले जे सुकृती जीव हैं ते धर्मात्मा जीव तौ इस संसारवृक्षकी ऊपरि पसरी हुई शाखा हैं अर्थात् ते धर्मात्मा पुरुष देवयोनियोंविषे विस्तारकूं प्राप्त हुई शाखा हैं । इसप्रकार मनुष्यलोकतैं आदिलैके पशु, पक्षी, वृक्ष, नारकीय शरीरपर्यंत नीचै स्थानोंविषे तथा तिसी मनुष्यलोकतैं लैके ब्रह्मलोकपर्यंत ऊपरिले स्थानोंविषे तिस संसाररूप वृक्षकी जीवरूप शाखा विस्तारकूं प्राप्तहुई हैं । कैसी हैं ते शाखा– गुणोंकरिकै प्रवृद्ध हुईहैं अर्थात् जैसे प्रसिद्ध वृक्षकी शाखा जलके सिंचनकरिकै

स्थूलभावकूं प्राप्त होवैंहैं। तैसे देह इंद्रिय विषय इत्यादिक आकारोंकरिकै परिणामकूं प्राप्त हुए जे सत्त्व, रज, तम यह तीन गुण हैं तिन तीन गुणरूप जलकरिकै ते जीवरूप शाखा स्थूलभावकूं प्राप्तहुई हैं। पुनः कैसी हैं ते शाखा—विषयरूप पल्लवोंवाली हैं अर्थात् जैसे लोकप्रसिद्ध वृक्षकी शाखावोंके अग्रभागके साथि कोमलअंकुररूप पल्लवोंका संबंध होवैहै तैसे पूर्वउक्त जीवरूप शाखावोंके अग्रभागस्थानीय जे इंद्रियजन्य वृत्तियां हैं तिन वृत्तियोंके साथि तिन शब्दादिक विषयोंका संबंध है। या कारणतैं ते शब्दादिक विषय तिन शाखावोंके कोमलपल्लवरूप हैं। पुनः कैसा है यह संसाररूप वृक्ष—जिस संसारवृक्षके अवांतर मूल नीचै तथा ऊपरि अनुस्यूत होइकै रहैंहैं तहां तिसतिस पदार्थके भोगकरिकै जन्य जे रागद्वेषादिक वासना हैं जे वासना इस पुरुषकी धर्म अधर्मविषे प्रवृत्ति करावैं हैं ते रागद्वेषादिक वासना ही इस संसारवृक्षके अवांतरमूल हैं। और पूर्व श्लोकविषे इस संसारवृक्षका जो मायाविशिष्ट ब्रह्मरूप मूल कथन कऱ्याथा सो मुख्यमूल कथन कऱ्याथा। और अबी वासनारूप अवांतरमूल कथन करैंहैं। यातैं इहां पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति। कैसे हैं ते वासनारूप अवांतरमूल—कर्मानुबंधी हैं। तहां धर्मअधर्मरूप कर्म हैं पश्चात् भावी जिन्होंके तिन्होंका नाम कर्मानुबंधी है अर्थात् ते रागद्वेषादिक वासनारूप अवांतरमूल प्रथम आप उत्पन्न होइकै पश्चात् ता धर्मअधर्मरूप कर्मकूं उत्पन्न करैंहैं। तहां ते वासनारूप मूल किस स्थानविषे तिस धर्मअधर्मरूप कर्मकूं उत्पन्न करैंहैं? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता स्थानका कथन करैंहैं (मनुष्यलोके इति) तहां मनुष्य होवै सोईही लोक होवै ताका नाम मनुष्यलोक है अर्थात् अधिकारी ब्राह्मणादिक देहोंका नाम मनुष्यलोक है। ऐसे अधिकारी ब्राह्मणादिक शरीरोंविषे ही ते वासनारूप मूल बाहुल्यताकारिकै तिस धर्मअधर्मरूप कर्मकूं उत्पन्न करैंहैं। जिस कारणतैं शास्त्रविषे मनुष्यकूं ही कर्मका अधिकार कथन कऱ्या है ॥ २ ॥

अब श्रीभगवान् इस पूर्वउक्त संसारविषे अनिर्वचनीयता कथन कारिकै ताके छेदनके उपायकूं कथन करैंहैं—

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नांतो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ॥ अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) न । रूपम् । अस्य । इह । तथा । उपलभ्यते । न । अंतः । न । च । आदिः । न । च । संप्रतिष्ठा । अश्वत्थम् । एनम् । सुविरूढमूलम् । असंगशस्त्रेण । दृढेन । छित्त्वा ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस संसारविषे स्थित प्राणियोंनैं इस संसारवृक्षका तिस प्रकारका रूप नहीं जानीता है तथा अन्तभी नहीं जानीता है तथा आदिभी नहीं जानीता है तथा मध्यभी नहीं जानीता है ऐसे दृढमूलवाले इस अश्वत्थरूप संसारवृक्षकूं अत्यंतदृढ वैराग्यरूपश स्त्रकरिकै छेदनकरिकै ब्रह्म जानणेयोग्य है ॥ ३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! पूर्व वर्णन कऱ्या जो यह संसाररूप वृक्ष है सो कैसा है-इस संसारविषे स्थित प्राणियोंनैं इस संसारवृक्षका जिस प्रकारका ऊर्ध्वमूल अधःशाख इत्यादिकरूप पूर्व वर्णन कऱ्या है तिस प्रकारका रूप नहीं जानीता है । काहेतैं जैसे स्वप्नके पदार्थ तथा मृगतृष्णाका जल तथा मायारचित पदार्थ तथा गंधर्वनगर यह सर्व मिथ्या होणेतैं दृष्टनष्टस्वरूपवाले ही हैं । तैसे यह संसारवृक्षभी मिथ्या होणेतैं दृष्टनष्टस्वरूपवाला ही है । तहां जो पदार्थ देखतेदेखते नष्ट होइजावै है ताका नाम दृष्टनष्ट है । ऐसे दृष्टनष्टस्वभाववाले इस संसारवृक्षका सो पूर्वउक्त ऊर्ध्वमूल अधःशाख इत्यादिकरूप इन जीवोंकूं देखणेविषे आवता नहीं । इसी कारणतैं ही इस संसारवृक्षका अवसानरूप अंतभी नहीं प्रतीत होवैहै अर्थात् इतने कालके व्यतीतहुएतैं पश्चात् यह संसारवृक्ष समाप्तिकूं प्राप्त होवैगा । इस प्रकारतैं इस संसारवृक्षका अंतभी जान्या जाता नहीं । जिसकारणतैं यह संसारवृक्ष परिअवसानरूप अंततैं रहित है । तथा इस संसारवृक्षका आदिभी नहीं प्रतीत होवैहै अर्थात् इस कालतैं लैके यह संसारवृक्ष प्रवृत्त हुआ है या प्रकारतैं इस संसारवृक्षका आदिभी जान्या जाता नहीं । जिसकारणतैं यह संसारवृक्ष अनादि है । तथा इस संसारवृक्षकी स्थितिरूप प्रतिष्ठाभी प्रतीत होती नहीं अर्थात् मध्यभी प्रतीत होता नहीं । काहेतैं आदि अंत दोनोंकी अपेक्षाकरिकै ही मध्य कह्या जावै है ता आदि अंतके असिद्ध हुए सो मध्यभी सिद्ध होवै नहीं । इस प्रकारका यह संसार जिस कारणतैं दुश्छेद्य है तथा सर्व अनर्थोंके करणेहारा है तिस कारणतैं अनादि अज्ञानकरिकै अत्यंत दृढ बांध्या है मूल जिसका ऐसे इस पूर्वउक्त अश्वत्थरूप संसारवृक्षकूं दृढ असंगशस्त्रकरिकै यह अधिकारी पुरुष छेदन करै । इहां विषयसुखकी स्पृहाका नाम संग है ता संगका विरोधी जो वैराग्य है ताका नाम असंग है

अर्थात् पुत्रएषणा, वित्तएषणा, लोकएषणा इन तीन एषणावोंका त्यागरूप जो वैराग्य है ताका नाम असंग है। और जैसे लोकप्रसिद्ध कुठारादिक शस्त्र लोकप्रसिद्ध वृक्षके विरोधी होवैहै तैसे यह वैराग्यभी इस रागद्वेषादिरूप संसारवृक्षका विरोधी है। यातैं यह वैराग्यभी शस्त्ररूप है। कैसा है यह वैराग्यरूप असंगशस्त्र—दृढ है अर्थात् मैं ब्रह्मरूप हूं इसप्रकारके ब्रह्मज्ञानकी उत्कट इच्छाकरिकै दृढकऱ्या है। और जैसे लोकप्रसिद्ध शस्त्र पाषाणविशेषके घर्षणतैं तीक्ष्ण होवैहै तैसे जो वैराग्यरूप असंगशस्त्र पुनः पुनः विवेक अभ्यासकरिकै तीक्ष्ण हुआ है, ऐसे दृढ असंगशस्त्रकरिकै यह अधिकारी पुरुष तिन पूर्वउक्त संसारवृक्ष मूलसहित उच्छेदन करै। अर्थात् वैराग्य, शम, दम इत्यादिक साधनसंपत्तिकरिकै सर्वकर्मोंके संन्यासकूं करै। यह ही तिस संसारवृक्षका छेदन है ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! ऐसे संसाररूप अश्वत्थवृक्षकूं असंगशस्त्रसैं छेदन करिकै इस अधिकारी पुरुषकूं तिसतैं अनंतरभी कुछ कर्त्तव्य है अथवा इतनैमात्रकरिकै ही कृतकृत्यता है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिसतैं अनन्तर कर्त्तव्यताकूं कथन करैं हैं—

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तंति भूयः ॥ तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) ततः। पदम् । तत् । परिमार्गितव्यम् । यस्मिन्। गताः। न। निवर्त्तंति। भूयः। तम्। एव। च। आद्यम्। पुरुषम्। प्रपद्ये। यतः। प्रवृत्तिः। प्रसृता। पुराणी ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसतैं अनंतर सो ब्रह्मरूप पदही जानणेयोग्य है जिसपदविषे स्थितहुए विद्वान्पुरुष पुनः नहीं जन्मकूं प्राप्त होवैं हैं तथा जिसपुरुषतैं इस संसारवृक्षकी प्रवृत्ति अनादि पसरीहुई है तिस आद्य पुरुषके ही मैं शरणकूं प्राप्त हुआहूं ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष तिस वैराग्यरूप असंगशस्त्रकरिकै पूर्वउक्त संसाररूप वृक्षकूं मूलसहित उच्छेदनकरिकै तिसतैं अनंतर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठगुरुके समीप जाइकै तिस संसाररूप अश्वत्थवृक्षतैं ऊर्ध्वस्थित जो शुद्धब्रह्म-

रूप वैष्णवपद है जो पद (तद्विष्णोः परमं पदम्) इत्यादिक श्रुतियोंनैं प्रतिपादन कर्‍या है सो शुद्धब्रह्मरूप पद ही इस अधिकारी पुरुषनैं श्रवणमननरूप वेदांतवाक्योंके विचारकरिकै जाणणेकूं योग्य है । तहां श्रुति–(सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः ।) अर्थ यह–सो परब्रह्मही इस अधिकारी पुरुषकूं अन्वेषण करणेकूं योग्य है तथा सो ब्रह्मही इस अधिकारी पुरुषकूं जाणणेकी इच्छाकरणे योग्य है इति । तहां मार्गकरिकै जो वस्तुका खोजणा है ताका नाम अन्वेषण है। शंका–हे भगवन् ! सर्व कर्मोंके संन्यासपूर्वक श्रवणादिक साधनोंकरिकै इस अधिकारी पुरुषनैं जो पद जाणणे योग्य है सो पद कौन है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (यस्मिन्गता न निवर्तंति भूयः इति ।) हे अर्जुन ! जिस पदविषे अहं ब्रह्मास्मि याप्रकारके ज्ञानकरिकै प्राप्त हुए तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः संसारकी प्रातिवासतै नहीं आवैं हैं अर्थात् पुनः जन्मकूं नहीं प्राप्त होवैं हैं सो अद्वितीय ब्रह्मरूप पद ही इस अधिकारी पुरुषनैं श्रवणादिक साधनोंकरिकै जाणणे योग्य है। शंका–हे भगवन् ! सो निर्गुण ब्रह्मरूप पद किस उपायकरिकै जान्या जावै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता पदके जाणणेका उपाय कथन करैं हैं (तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये इति।) हे अर्जुन ! पूर्व जो अद्वितीय निर्गुण ब्रह्मपदशब्दकरिकै कथन कर्‍या है तिसीही परब्रह्मरूप आद्यपुरुषके मैं अधिकारी जन शरणकूं प्राप्त हुआहूं इस प्रकारतैं जो तिस एक परब्रह्मकी शरणता है ता शरणताकरिकै ही सो परब्रह्मरूप पद जान्या जावै है । तहां सर्व जगतके आदिविषे जो विद्यमान होवै ताका नाम आद्य है और यह सर्व जगत् जिसनैं आपणे अस्ति भाति प्रियरूपकरिकै पूर्ण कर्‍या है ताका नाम पुरुष है। अथवा इन शरीररूप सर्वपुरियोंविषे जो अधिष्ठानरूपकरिकै शयन करै है ताका नाम पुरुष है। ऐसे आद्यपुरुषरूप परब्रह्मका जो निरंतर चिंतनरूप अनन्यभक्ति है सा अनन्यभक्ति ही तिस परब्रह्मरूप पदके साक्षात्कारका उपाय है इति । शंका–हे भगवन् ! सो कौन पुरुष है जिसके शरणकूं प्राप्त हुआ यह अधिकारी पुरुष तिस वैष्णवपदकूं जानता है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी इति ।) हे अर्जुन ! जिस आद्यपुरुषतैं मायाके योगकरिकै इस मायामय संसारवृक्षकी यह अनादि प्रवृत्ति चली हुई है जैसे ऐंद्रजालिक पुरुषतैं मायामय हस्ति आदिकोंकी प्रवृत्ति होवै है । तैसे जिस

आद्यपुरुषतैं इस मायामय संसारवृक्षकी प्रवृत्ति हुई है। ऐसे आद्यपुरुषके शरणकी प्राप्तिही तिस पदके जाननेका उपाय है ॥ ४ ॥

अब तिस वैष्णवपदके ज्ञानपूर्वक तिस वैष्णवपदकूं प्राप्त होणेहारे अधिकारी पुरुषोंके तिस पदकी प्राप्तिवास्तै दूसरे साधनोंकूं भी श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्त-कामाः ॥ द्वंद्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छंत्यमूढाः पद-मव्ययं तत् ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) निर्मानमोहाः । जितसंगदोषाः । अध्यात्मनित्याः । विनिवृत्तकामाः । द्वंद्वैः । विमुक्ताः । सुखदुःखसंज्ञैः । गच्छंति । अमूढाः । पदम् । अव्ययम् । तत् ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मानमोह दोनों निवृत्तहुए हैं जिन्होंतैं तथा जीत्या है संगदोष जिन्होंनैं तथा परमात्मस्वरूपके विचारविषे तत्पर तथा निवृत्तहुए हैं काम जिन्होंके तथा सुखदुःखनामवाले शीतउष्णादिकद्वंद्वोंनैं परित्यागकरेहुए ऐसे विद्वान् पुरुष तिस अव्यय पदकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ ५ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! गर्व है नाम जिसका ऐसा जो अहंकार है ता अहंकार-का नाम मान है। और अविवेकका नाम मोह है। अथवा विपर्ययका नाम मोह है। तिस मान मोह दोनोंतैं जे पुरुष निकसे हुए हैं तिन पुरुषोंका नाम निर्मान-मोह है। अथवा ते मान मोह दोनों निवृत्त हुए हैं जिन्होंतैं तिनोंका नाम निर्मान-मोह है। अर्थात् अहंकार अविवेक दोनोंतैं रहित पुरुषोंका नाम निर्मानमोह है। तथा जे पुरुष जितसंगदोष हैं अर्थात् प्रियअप्रिय पदार्थोंकी समीपताके प्राप्त हुएभी जे पुरुष रागद्वेषतैं रहित हैं। अथवा जीत्याहुआ है संग तथा दोष जिनोंनैं तिनोंका नाम जितसंगदोष है। इहां संगशब्दकरिकै तौ मैं कर्त्ता हूं याप्रकारके कर्तृत्व अभिमानका ग्रहण करणा। और दोषशब्दकरिकै रागद्वेषादिक दोषोंका ग्रहण करणा। तथा जे पुरुष अध्यात्मनित्य हैं अर्थात् जे पुरुष परमात्मादेवके वास्तवस्वरूपके विचारविषे निरंतर तत्पर हैं। तथा जे पुरुष विनिवृत्तकाम हैं तहां विशेषकरिकै निवृत्त हुए हैं विषयभोगरूप काम जिन्होंके तिनोंका नाम

विनिवृत्तकाम है अर्थात् जिन पुरुषोंनैं विवेकवैराग्यद्वारा सर्व कर्म त्याग करेहैं तिनोंका नाम विनिवृत्तकाम है। और सुखदुःखका हेतु होणेतैं सुखदुःखनामवाले ऐसे जे शीतउष्ण क्षुधापिपासा इत्यादिक द्वंद्व हैं ऐसे द्वंद्वोंनैं जे पुरुष परित्याग करेहैं। और किसी मूलपुस्तकविषे तौ (सुखदुःखसंगैः) इस प्रकारका जो पाठ होवै है ताका यह अर्थ करणा—सुख दुःख दोनोंके साथि है संग क्या संबंध जिनोंका ऐसे जे शीतउष्णादिक द्वंद्व हैं तिन द्वंद्वोंनैं जे पुरुष परित्याग करे हैं, इसप्रकारके अमूढपुरुष अर्थात् वेदांतप्रमाणतैं उत्पन्न हुए सम्यक् आत्मज्ञानकरिकै निवृत्त कऱ्या है आत्माका अज्ञान जिन्होंनैं ऐसे तत्त्ववेत्ता पुरुष ही तिस पूर्वउक्त अविनाशी परब्रह्मपदकूं प्राप्त होवैंहैं ॥ ५ ॥

तहां इन पूर्वउक्त साधनोंकरिकै प्राप्त होणेयोग्य जो अद्वितीय निर्गुण ब्रह्मरूप वैष्णवपद है तिसीही गंतव्यपदकूं अब श्रीभगवान् विशेषणोंकरिकै कथन करैंहैं—

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ॥
यद्गत्वा न निवर्त्तंते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) न । तत् । भासयते । सूर्यः । न । शशांकः । न । पावकः । यत् । गत्वा । न । निवर्त्तंते । तत् । धाम । परमम् । मम ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस पदकूं प्राप्तहोइकै तत्त्ववेत्ता पुरुष नहीं आवृत्तिकूं प्राप्तहोवैंहैं तिस पदकूं सूर्यभी नहीं प्रकाशकरिसकैहै तथा चंद्रमाभी नहीं प्रकाश करिसकैहै तथा अग्निभी नहीं प्रकाशकरिसकैहै जिसकारणतैं मैं विष्णुका स्वरूपभूत सो पद सर्वतैंउत्कृष्ट स्वयंप्रकाशस्वरूप है ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्वउक्त साधनोंकरिकै जिस निर्गुण अद्वितीय ब्रह्मरूप वैष्णवपदकूं प्राप्त होइकै तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः आवृत्तिकूं नहीं प्राप्त होवैहै अर्थात् पुनः जन्मकूं नहीं प्राप्त होवैहै तिस परब्रह्मरूप पदकूं सर्वजगत्के प्रकाशकरणेकी शक्तिवाला सूर्यभी प्रकाश करिसकता नहीं। शंका—हे भगवन् ! सूर्यके अस्त हुएभी चंद्रमाकृत प्रकाश देखणेविषे आवैहै। यातैं सो चंद्रमा ही तिस पदकूं प्रकाश करैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (न शशांक इति) हे अर्जुन ! सो चंद्रमाभी तिस पदकूं प्रकाश करिसकता नहीं। शंका—हे भग-

वन् ! सूर्य चंद्रमा दोनोंके अस्त हुएभी अग्निकृत प्रकाश देखणेमें आवैहै। यातैं सो अग्निही तिस पदकूं प्रकाश करैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (न पावकः इति) हे अर्जुन ! सो अग्निभी तिस पदकूं प्रकाश करिसकता नहीं। शंका–हे भगवन् ! सूर्य, चंद्रमा, अग्नि यह तीनों तिस पदकूं प्रकाश नहीं करिसकते इस प्रकारकी प्रतिज्ञामात्रतैं तिस अर्थकी सिद्धि होइसकती नहीं। जो कदाचित् प्रतिज्ञामात्रतैं ही अर्थकी सिद्धि होती होवै तौ वंध्यापुत्रोऽस्ति इस प्रतिज्ञामात्रकरिकै वंध्यापुत्रकीभी सिद्धि होणी चाहिये और होती नहीं। यातैं तिस प्रतिज्ञा करेहुए अर्थकी सिद्धिविषे कोई हेतु कह्या चाहिये सो हेतु कौन है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताकेविषे तिस परब्रह्मकी स्वयंप्रकाशतारूप हेतुकूं कथन करैंहैं (तद्धाम परमं मम इति) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं मैं व्यापक विष्णुका स्वरूपभूत सो पद धामरूप है अर्थात् स्वप्रकाशरूप है। तथा सूर्य, चंद्रमा, अग्नि इत्यादिक सर्व जड ज्योतियोंकूं प्रकाश करणेहारा है। तथा परम है अर्थात् सर्वतैं उत्कृष्ट है। तिस कारणतैं ते सूर्यचंद्रादिक तिस पदकूं प्रकाश करिसकते नहीं। लोकविषेभी जो वस्तु तिस ज्योतिकरिकै भास्यमान होवैहै सो भास्यवस्तु तिस स्वभासक ज्योतिकूं प्रकाश करिसकता नहीं। जैसे सूर्यरूप ज्योतिकरिकै भास्यमान घटादिक पदार्थ स्वभासकसूर्यरूप ज्योतिकूं प्रकाश करिसकते नहीं तैसे यह सूर्यचंद्रमादिक जड ज्योतिभी स्वभासक चैतन्य परब्रह्मरूप ज्योतिकूं प्रकाश करिसकते नहीं। इतने कहणे करिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन करया। सूर्य चंद्रमादिक परब्रह्मके प्रकाशक नहीं हैं तिस परब्रह्मकरिकै भास्यमान होणेतैं जो वस्तु जिस ज्योतिकरिकै भास्यमान होवैहै सो भास्यवस्तु तिस स्वभासक ज्योतिकूं प्रकाश करता नहीं है। जैसे घटादिक पदार्थ सूर्यकूं प्रकाश करते नहीं इति। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति–(न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोयमग्निः। तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥) अर्थ यह–तिस परब्रह्मरूप पदकूं सूर्यभी नहीं प्रकाश करिसकता, तथा चंद्रमा तारागणभी नहीं प्रकाश करिसकते, तथा यह विद्युत्भी नहीं प्रकाश करिसकती तौ यह अल्पप्रकाशवाला अग्नि तिस परब्रह्मकूं कैसे प्रकाश करिसकैगा किंतु नहीं प्रकाश करिसकैगा। और तिस परब्रह्मके प्रकाशमान हुएतैं पश्चात्‌ही यह सर्व जगत् प्रका-

शमान होवैहै । तथा तिस परब्रह्मकी प्रकाशरूप दीप्तिकारिकै यह सर्व जगत् प्रतीत होवैहै इति । तहां तिस परब्रह्मरूप पदकूं स्वप्रकाशरूपता कहणे कारिकै श्रीभगवान्नैं इस शंकाकी निवृत्ति करी । सो परब्रह्मरूप वैष्णवपद वेद्य है अथवा नहीं अर्थात् किसीके ज्ञानका विषय है अथवा नहीं जो कहो सो पद वेद्य है तौ जो वस्तु वेद्य होवैहै सो वस्तु आपणेतैं भिन्न वेदितृ पुरुषकी अपेक्षा अवश्य करैहै । जैसे घटादिक वेद्यवस्तु आपणेतैं भिन्न वेदितृ पुरुषकी अपेक्षा अवश्य करैहै तैसे सो वेद्यपदभी आपणे भिन्न किसी वेदितृ पुरुषकी अपेक्षा अवश्य करैगा । यातैं तुम्हारे मतविषे द्वैतभावकी प्राप्ति होवैगी । और सो पद अवेद्य है यह दूसरा पक्ष जो अंगीकार करौ तौ तिस पदविषे अपुरुषार्थरूपता प्राप्त होवैगी । जिसकारणतैं अवेद्यपदविषे पुरुषार्थरूपता संभवती नहीं इति । इस शंकाकी निवृत्ति करी । काहेतैं सो पद ब्रह्मरूप पद अवेद्य हुआभी आप परोक्षरूप ही है । तहां श्रुति— (यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म) अर्थ यह—जो ब्रह्म साक्षात् अपरोक्षरूप है इति । यातैं द्वैतभावकी प्राप्ति तथा पुरुषार्थरूपताकी हानि होवै नहीं । तहां तिस परब्रह्मरूप पदविषे अवेद्यरूपता तौ श्रीभगवान्नैं (न तद्भासयते सूर्यो) इस श्लोकविषे सूर्यादिकोंकारिकै अभास्यमानत्वरूप हेतुकारिकै कथन करी है । और सर्वकी प्रकाशकताकारिकै स्वयं अपरोक्षपणा तौ (यदादित्यगतं तेजः ।) इस वक्ष्यमाण श्लोकविषे श्रीभगवान् कथन करैगा । इस प्रकार दोनों श्लोकोंकारिकै श्रीभगवान्नैं (न तत्र सूर्यो भाति) इस पूर्वउक्त श्रुतिके दोनों विभागोंका अर्थ कथन करचा इति । और किसी टीकाविषे तौ (न तद्भासयते सूर्यो) इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्याहै । तिस परब्रह्मपदकूं सूर्यबी नहीं प्रकाश करैहै । काहेतैं सो पद रूपादिक गुणोंतैं रहित होणेतैं चक्षु इंद्रियका विषय है नहीं । जो रूपवान् वस्तु चक्षुइंद्रियका होवैहै सो रूपवान् वस्तुही तिस चक्षुऊपरि अनुग्रह करणेहारे सूर्यनैं प्रकाश करीता है । जैसे रूपवान् घटादिक पदार्थ चक्षुइंद्रियका विषय होणेतैं सूर्यनैं प्रकाश करीते हैं । और यह परब्रह्मरूप पद तौ रूपवान् हुआ चक्षुइंद्रियका विषय है नहीं । यातैं इस पदकूं सो सूर्य प्रकाश करिसकता नहीं । तहां (न तत्र चक्षुर्गच्छति न चक्षुषा गृह्यते ।) इत्यादिक श्रुतियां तिस परब्रह्मविषे चक्षुइंद्रियकी अविषयताकूं कथन करैं हैं । इतने कहणेकारिकै श्रीभगवान्नैं तिस पदविषे सर्व बाह्यइंद्रियोंकी निवृत्ति कथन करी । अब तिस पदविषे मनकी व्यावृत्ति कथन

करैं हैं (न शशांकः इति ।) हे अर्जुन ! तिस पदकूं चंद्रमाभी नहीं प्रकाश करि-सकै है । काहेतैं जो वस्तु मनकरिकै ग्रहण करी जावै है तिस वस्तुकूं ही सो मनऊपरी अनुग्रह करणेहारा चंद्रमा प्रकाश करै है । और यह परब्रह्म-रूप पद तौ तिस मनकरिकै ग्रहण होता नहीं । यातैं इस परब्रह्मकूं सो चंद्र-माभी प्रकाश करिसकता नहीं । तहां (यन्मनसा न मनुते) इत्यादिक श्रुतियां तिस ब्रह्मरूप पदविषे मनकी विषयताका निषेध करैं हैं । और तिस परब्रह्मरूप पदकूं अग्निभी प्रकाश करिसकता नहीं । काहेतैं जो वस्तु वाक्इंद्रियका विषय होवैहै तिस वस्तुकूंही सो वाक्इंद्रियऊपरि अनुग्रह करणेहारा अग्नि प्रकाश करै है ता वाक्इंद्रियके अविषय वस्तुकूं सो अग्नि प्रकाश करिसकता नहीं । और (यद्वाचानभ्युदितम् । न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा ।) इत्यादिक श्रुतियोंनैं तिस परब्रह्मविषे वाक्इंद्रियकी विषयताका निषेध कऱ्या है । यातैं तिस परब्रह्मकूं सो अग्नि प्रकाश करिसकता नहीं । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं सो परब्रह्मरूप पद चक्षु' मन, वाक् इन तीनोंका अविषय है तिस कारणतैं सो परब्रह्मरूप पद स्थूलसूक्ष्म-कारणरूप सर्वप्रपंचतैं रहित प्रत्यक् अद्वितीयरूप है। इस प्रकार (नांतःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञमस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम् ।) इत्यादिक श्रुतियोंनैं सर्वधर्मोंतैं रहित-करिकै जो प्रत्यक् अभिन्न अद्वितीय ब्रह्म प्रतिपादन कऱ्या है सो अद्वितीय ब्रह्म मैं परमेश्वरका परम धाम है अर्थात् परमभावतैं रहित जो अंतःकरणकी वृत्ति-रूप ज्ञान है तिस वृत्तिरूप ज्ञानतैं अन्य चिन्मात्र ज्योतिरूप है । इहां राहोः शिरः इस वाक्यविषे राहुपदतैं उत्तरसंबंधका वाचक षष्ठीविभक्तिके विद्यमान हुएभी जैसे राहुका शिर है इस प्रकारका बोध होता नहीं किंतु राहुतैं अभिन्न शिर है इस प्रकारका अभेदबोधही होवै है । तैसे (तद्धाम परमं मम) इस वचनविषे मम इस पदतैं उत्तरसंबंधका वाचक षष्ठीविभक्तिके विद्यमान हुए भी मेरा परम धाम है या प्रकारका बोध होवै नहीं किंतु मैं परमेश्वरतैं अभिन्न सो स्वप्रकाश ब्रह्मरूप धाम है या प्रकारका अभेदबोधही होवै है इति। हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो अद्वितीय स्वयंज्योति ब्रह्मरूप पद मैं परमेश्वरका स्वरूप ही है इस कारणतैं ही जिस स्वयंज्योति ब्रह्मपदकूं अहं ब्रह्मास्मि इस ज्ञानपूर्वक प्राप्त होइकै विद्वान् पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होते नहीं अर्थात् पुनः जन्मकूं प्राप्त होते नहीं । काहेतैं पुनः आवृत्तिका कारणरूप जो मूलअज्ञान है सो मूलअज्ञान तिन पुरु-

षोंका मैं परब्रह्मके अभेदज्ञानतैं निवृत्त होइगया है । या कारणतैं ते तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होते नहीं इति । इस कारणतैं इस श्लोकके व्याख्यान किये हुएही (यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विंदते अथ सोऽभयं गतो भवति ।) इस श्रुतिके अर्थकी तिस श्लोकविषे अनुकूलता होवै है । इस श्रुतिका यह अर्थ है–जिस कालविषे यह अधिकारी पुरुष इस अदृश्य, अनात्म, अनिरुक्त, अनिलयन ब्रह्मविषे भयतैं रहित स्थितिकूं प्राप्त होवै है, तिस कालविषे यह अधिकारी पुरुष पुनरावृत्तिके भयतैं रहित ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवैहै इति । इस श्रुतिविषे अदृश्य, अनात्म्य, अनिरुक्त, अनिलयन यह च्यारि विशेषण ब्रह्मके कथन करे हैं । तहां चक्षुकी दृष्टिका जो अविषय होवै ताका नाम अदृश्य है । इस अदृश्य विशेषणकरिकै तिस ब्रह्मविषे सूर्यकृत भास्यत्वका निषेध कऱ्या । और मनरूप आत्माका जो विषय होवै है ताका नाम आत्म्य है तिसतैं जो भिन्न होवै ताका नाम अनात्म्य है । इस अनात्म्यविशेषण करिकै तिस ब्रह्मविषे मनकी अविषयता कथन करिकै चंद्रमाकृत भास्यत्वका निषेध कऱ्या । और स्थूल सूक्ष्मरूप सर्व जगत् लयकूं प्राप्त होवै जिसविषे ताका नाम निलयन है । ऐसा अव्याकृतरूप कारण है तिस कारणरूप निलयनतैं जो भिन्न होवै ताका नाम अनिलयन है । इसीकारणतैं ही सो ब्रह्म अनिरुक्त है अर्थात कथन करणेकूं अयोग्य है । इस अनिरुक्त विशेषणकरिकै तिस परब्रह्मविषे वाक्इंद्रियकी अविषयता कथन करिकै अग्निकृत प्रकाशका निषेध कऱ्या इति । और केईक भेदवादी तौ (न तद्भासयते सूयः) इस श्लोकका यह अर्थ करैहैं–सूर्य, चंद्रमा, अग्नि इन तीनोंकरिकै अप्रकाश्य तथा अर्चिरादि मार्गकरिकै प्राप्त होणेयोग्य तथा ब्रह्मलोकतैंभी ऊपरि स्थित तथा अप्राकृत तथा नित्य ऐसा वैष्णवपद देशांतरविषे स्थित है तिस वैष्णवपदकूं अर्चिरादि मार्गद्वारा प्राप्त होइकै यह अधिकारी जन पुनः आवृत्तिकूं नहीं प्राप्तहोवै है इति । सो यह तिन भेदवादियोंका अर्थ अत्यंत विरुद्ध है । काहेतैं (न रूपमस्येह तथोपलभ्यते ।) इस श्लोकविषे सर्व दृश्यपदार्थोंकूं मिथ्यारूप ही कथन कऱ्या है । और (अतोऽन्यदार्तम् ।) अर्थ यह–इस परमात्मादेवतैं भिन्न सर्व अनात्मपदार्थ मिथ्या हैं । इस श्रुतिनैंभी परमात्मादेवतैं भिन्न सर्व दृश्यपदार्थोंकूं मिथ्या कह्या है सो दृश्यपणा जैसे इन लोकोंविषे है तैसे तिस वैष्णवलोकविषेभी सो दृश्यपणा तुल्यही है । यातैं

देशांतरविषे स्थित तिस वैष्णवलोकविषेभी सो मिथ्यापणा अवश्यकरिकै होवैगा । ऐसे मिथ्यालोकविषे प्राप्तहुए पुरुषोंकी पुनरावृत्तिभी अवश्यकरिकै होवैगी । यातैं यह भेदवादियोंका व्याख्यान समीचीन नहीं है किंतु पूर्वउक्त व्याख्यान ही समीचीन है ॥ ६ ॥

हे भगवन् ! (यद्गत्वा न निवर्तन्ते) यह आपका वचन असंगत है काहेतैं यह अधिकारी पुरुष जो कदाचित् तिस पदविषे जावैंगे तौ तिस पदतैं अवश्यकरिकै निवृत्तभी होवैंगे । जैसे स्वर्गविषे गयेहुए कर्मीपुरुष ता स्वर्गतैं अवश्यकरिकै पीछे आवैंहैं । और यह अधिकारी पुरुष जो कदाचित् तिस पदतैं पीछे नहीं आवैंगे तौ तिस पदविषे जावैंगेभी नहीं । यातैं यह अधिकारी पुरुष तिस पदविषे जाते हैं और तिस पदतैं पुनः आवते नहीं यह दोनों वचन परस्पर विरुद्ध हैं । और जो जहां जाता है सो तहांतैं अवश्य फिर आवता है यह वार्त्ता शास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक—(सर्वे क्षयांता निचयाः पतनांताः समुच्छ्रयाः । संयोगा विप्रयोगांता मरणांतं हि जीवितम् ।) अर्थ यह—जे पदार्थ वृद्धिवाले हैं ते पदार्थ अंतविषे अवश्य क्षयवाले होवैं हैं । और जे पदार्थ उच्चस्थानविषे प्राप्त हुए हैं ते पदार्थ अंतविषे अवश्य कारिकै नीचै पतन होवैंहैं । और जे पदार्थ संयोगवाले हुए हैं ते पदार्थ अंतविषे अवश्य वियोगवाले होवैं हैं । और जिस पदार्थका जन्म हुआ है सो पदार्थ अंतविषे अवश्य मरणकूं प्राप्त होवैहै इति । और जो आप यह वचन कहो अनात्मवस्तुकी प्राप्तिही अंतविषे पुनरावृत्तिवाली होवैहै आत्माकी प्राप्ति अंतविषे पुनरावृत्तिवाली होवै नहीं सो यह आपका कहणाभी संभवता नहीं । काहेतैं (सता सोम्य तदा संपन्नो भवति) इस श्रुतिनैं सुषुप्तिअवस्थाविषे सर्वप्राणीमात्रकूं आत्मभावकी प्राप्ति कथन करीहै । परंतु सा आत्मभावकी प्राप्ति अंतविषे पुनरावृत्तिवाली ही है । जो कदाचित् सुषुप्तिविषे आत्मभावकूं प्राप्तहुए प्राणियोंकी जाग्रत्विषे पुनरावृत्ति नहीं अंगीकार करिये तौ तिस सुषुप्तिमात्रकरिकै ही सर्व प्राणी मुक्त होवैंगे । यातैं मुक्तहुए तिन सुषुप्तपुरुषोंका पुनः उत्थान नहीं होणा चाहिये और तिन सुषुप्तपुरुषोंकी पुनरावृत्ति तौ देखणेविषे आवै है । यातैं तिस परब्रह्मरूप पदकी प्राप्तिविषे (यद्गत्वा) यह वचन कहणा संभवता नहीं । और तिस गमनकूं जो गौण मानिये तौभी तिस पदतैं अनिवृत्ति

नहीं संभवैहै । इस प्रकारकी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं । हे अर्जुन ! तिस ब्रह्मरूप पदकूं प्राप्त होणेहारा जो जीवात्मा है सो जीवात्मा तिस गंतव्यब्रह्मतैं कोई भिन्न नहीं है किंतु यह जीवात्मा तिस गंतव्यब्रह्मतैं अभिन्न ही है । और यह जीवात्मा ब्रह्मरूप ही है इस अर्थकूं (तत्त्वमसि, अहंब्रह्मास्मि, प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म ।) इत्यादिक अनेक श्रुतियां कथन करैं हैं यातैं (यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते) इस वचनकारिकै कथन करी जा जीवात्माकूं ब्रह्मकी प्राप्ति है । सा प्राप्ति स्वर्गादिकोंके प्राप्तिकी न्याईं मुख्य नहीं है किंतु सा प्राप्ति गौण है । अर्थात् अज्ञानमात्रकारिकै व्यवहित जो ब्रह्म है तिस ब्रह्मकी अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारका ज्ञानमात्रही प्राप्ति कहीजावैहै । तहां जिसपक्षमैं अंतःकरणविषे अथवा अविद्याविषे जो ब्रह्मका प्रतिबिंब है सो प्रतिबिंब ही जीव है । तिस पक्षविषे तौ जैसे जलविषे प्रतिबिंबितसूर्यका ता जलके अभाव हुए बिंबभूत सूर्यके प्रति गमन होवैहै । तथा तिस बिंबभूत सूर्यतैं तिस प्रतिबिंबकी पुनः आवृत्ति होती नहीं । तैसे अंतःकरणादिक उपाधियोंके अभाव हुए इस प्रतिबिंबरूप जीवकाभी तिस निरुपाधिक बिंबरूप ब्रह्मके प्रति गमन होवैहै । तथा तिस ब्रह्मतैं इस जीवात्माकी पुनः आवृत्ति होती नहीं । और जिस पक्षमैं बुद्धिअवच्छिन्न जो ब्रह्मका भाग है ताका नाम जीव है तिस पक्षविषे तौ जैसे घटाकाशका घटरूप उपाधिके निवृत्तहुए महाकाशके प्रति गमन होवैहै । तथा तिस महाकाशतैं ता घटाकाशकी पुनः आवृत्ति होती नहीं तैसे इस जीवात्माकाभी तिस बुद्धिरूप उपाधिके निवृत्तहुए तिस ब्रह्मके प्रति गमन होवैहै । तथा तिस ब्रह्मतैं इस जीवात्माकी पुनः आवृत्ति होती नहीं । इहां जैसे वास्तवतैं बिंबरूप सूर्यतैं अभिन्न प्रतिबिंबरूप सूर्यका तिस बिंबरूप सूर्यके प्रति गमन तथा तिसतैं अनावृत्ति यह दोनों गौण हैं मुख्य नहीं हैं और जैसे वास्तवतैं महाकाशतैं अभिन्न घटाकाशका तिस महाकाशके प्रति गमन तथा तिसतैं अनावृत्ति यह दोनों गौण हैं मुख्य नहींहैं । तैसे वास्तवतैं ब्रह्मतैं अभिन्न इस जीवात्माका जो तिस ब्रह्मके प्रति गमन है तथा तिस ब्रह्मतैं अनावृत्ति है यह दोनोंभी गौण हैं मुख्य नहीं हैं । आपणेतैं भिन्नवस्तुके प्रति जो गमन है तथा तिसतैं अनावृत्ति है सो गमन तथा अनावृत्ति दोनोंही मुख्य कहेजावैं हैं । इसप्रकार वास्तवतैं जीवब्रह्मके अभेदहुएभी जो तिन्होंका भेदभ्रम होवैहै सो भेदभ्रम केवल अंतःकरणादिक उपाधिके वशतैंही होवैहै । जैसे घटरूप उपा-

धिके वशतैं घटाकाशका महाकाशतैं भेदभ्रम होवैहै ता अंतःकरणादिक उपाधिके निवृत्तहुए सो भेदभ्रमभी निवृत्त होइजावैहै इति । और सुषुप्तिअवस्थाविषे तौ जीवका उपाधिभूत सो संस्कारकर्मादिविशिष्ट अंतःकरण आपणे कारणरूप अज्ञानविषे सूक्ष्मरूपकरिकै स्थित होवैहै। तातैं तिस अज्ञानरूप कारणतैं ही तिस अंतःकरणका पुनरुद्भव होवै है । और आत्मज्ञानकरिकै जबी अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै तबी अज्ञानरूप कारणके अभाव हुए अंतःकरणादिक कार्योंकी उत्पत्ति कहांतैं होवैगी किंतु नहीं उत्पत्ति होवैगी। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया— इस जीवके अहं ब्रह्मास्मि इस प्रकारके वेदांतवाक्यजन्य साक्षात्कारतैं मैं ब्रह्म नहीं हूं इस प्रकारके अज्ञानकी जा निवृत्ति है सा अज्ञानकी निवृत्ति ही श्रीभगवान्नैं (यद्गत्वा) इस वचनकरिकै कथन करीहै। और आत्मसाक्षात्कार करिकै निवृत्त हुआ जो अनादि अज्ञान है तिस अज्ञानके पुनः उत्थानके अभावतैं जो तिस अज्ञानके कार्यरूप संसारका अभाव है सो संसारका अभाव ही श्रीभगवान्नैं (न निवर्त्तन्ते) इस वचनकरिकै कथन कऱ्याहै। यातैं श्रीभगवान्के वचनोंविषे किंचित्मात्रभी विरोधकी प्राप्ति होवै नहीं। और इस जीवका पारमार्थिक स्वरूप ब्रह्मही है यह वार्त्ता पूर्व अनेकवार कथन करिआयेहैं । यह पूर्वउक्त सर्व अर्थ श्रीभगवान्नैं इसतैं उत्तरग्रंथकरिकै प्रतिपादन करियेगा। तहां यह जीवात्मा वास्तवतैं ब्रह्मरूपही है, यातैं ब्रह्मसाक्षात्कारकरिकै अज्ञानके निवृत्तहुए तिस ब्रह्मरूपताकूं प्राप्तहुए जीवकी तिस ब्रह्मरूपतातैं पुनः आवृत्ति होती नहीं। इस अर्थकूं श्रीभगवान् (ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।) इस अर्द्धश्लोककरिकै कथन करैगा। और सुषुप्तिअवस्थाविषे तौ सर्व कार्योंके संस्कारसहित अज्ञान विद्यमान है। या कारणतैं ही इस जीवात्माकूं तिस सुषुप्तितैं पुनः संसारकी प्राप्ति होवैहै। इस अर्थकूं श्रीभगवान् (मनःषष्ठानींद्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।) इस अर्धश्लोककरिकै कथन करैगा। तिसतैं अनंतर वास्तवतैं असंसारीरूप हुआभी मायाकरिकै संसारीभावकूं प्राप्त हुआ तथा मंदमतिपुरुषोंनैं देहके साथि तादात्म्यभावकूं प्राप्त कऱ्याहुआ ऐसा जो यह जीवात्मा है तिस जीवात्माका तिस देहतैं व्यतिरेकपणकूं श्रीभगवान् (शरीरं यदवाप्नोति) इस श्लोककरिकै कथन करैगा। और शब्दादिक विषयोंविषे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं प्रवृत्त करणेहारा जो यह जीवात्मा है तिस जीवात्माका तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंतैं व्यतिरेकपणेकूं श्रीभगवान्(श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च)

इस श्लोककरिकै कथन करैगा । तहां इसप्रकार देहइंद्रियादिकोंतैं विलक्षण आत्माकूं उत्क्रांतिआदिक अवस्थावोंविषे सर्व प्राणी किसवासतै नहीं देखतेहैं ? ऐसी शंकाके प्राप्त हुए विषयवासनाकरिकै विक्षिप्तचित्तवाले पुरुष दर्शनयोग्यभी तिस आत्मादेवकूं नहीं देखिसकैहैं । इस प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् (उत्क्रामंतं स्थितं वापि) इस श्लोककरिकै कथन करैगा । तहां (उत्क्रामंतम्) इस श्लोकविषे स्थित जो (पश्यंति ज्ञानचक्षुषः) यह वचन है इस वचनके अर्थकूं श्रीभगवान् (यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थितम्) इस अर्द्धश्लोक करिकै वर्णन करैगा । और (विमूढा नानुपश्यंति) इस वचनके अर्थकूं तौ (यतंतोप्यकृतात्मानो नैनं पश्यंत्यचेतसः ।) इस अर्धश्लोककरिकै वर्णन करैगा । इस प्रकारतैं इन वक्ष्यमाण पंचश्लोकोंकी परस्परसंबंधरूप संगति सिद्ध होवैहै । अभी आगे इन पंचश्लोकोंके केवल अक्षरोंके अर्थकूं वर्णन करैंगे-

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥
मनःषष्ठानींद्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) मम । एव । अंशः । जीवलोके । जीवभूतः । सनातनः । मनःषष्ठानि । इंद्रियाणि । प्रकृतिस्थानि । कर्षति ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस संसारविषे मैं परमात्माका ही अंश सनातन जीवरूप है सो जीव मनहैछठा जिनोंविषे ऐसे प्रकृतिविषे स्थित श्रोत्रादिकइंद्रियोंकूं आकर्षण करैहै ॥ ७ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! वास्तवतैं अंशअंशीभावतैं रहित जो मैं परमात्मादेव हूं तिस मैं परमात्मादेवका ही मायाकरिकै कल्पित अंशकी न्याई अंशरूप इस संसारविषे विद्यमान है अर्थात् जैसे वास्तवतैं अंशअंशीभावतैं रहित सूर्यका जलविषे स्थित मिथ्याभेदवाला अंशकी न्याईं अंशरूप प्रतिबिंब होवैहै तथा जैसे वास्तवतैं अंशअंशीभावतैं रहित महाकाशका घटविषे स्थित मिथ्याभेदवाला अंशकी न्याईं अंशरूप घटाकाश होवैहै तैसे वास्तवतैं अंशअंशीभावतैं रहित मैं परमात्मादेवकाभी इस संसारविषे मिथ्याभेदवाला अंशकी न्याईं अंश विद्यमान है सो मैं परमात्मादेवका अंश प्राणोंका धारणरूप उपाधिकरिकै जीवभूत हुआहै अर्थात् कर्त्ता, भोक्ता, संसारी इस प्रकारकी मिथ्याही प्रसिद्धिकूं प्राप्त हुआ है । कैसा है सो

जीवरूप अंश—सनातन है क्या नित्य है अर्थात् अंतःकरणादिक उपाधिकृत परिच्छिन्नताके हुएभी वास्तवतैं सो जीवात्मा परमात्मस्वरूपही है । काहेतैं श्रुतिविषे तिस परमात्मादेवका ही इस शरीरविषे जीवरूपकरिकै प्रवेश कथन कर्‍याहै । तहां श्रुति—(स एष इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यः । तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ।) अर्थ यह—सो परमात्मादेव ही इस संघातविषे नखके अग्रभागतैं लैके प्रवेश करताभया । और सो परमात्मा देव इस संघातकूं उत्पन्न करिकै आपही जीवरूप होइकै इस संघातविषे प्रवेश करताभया इति । यातैं आत्मज्ञानतैं अज्ञानके निवृत्तहुए यह जीवात्मा आपणे स्वरूपभूत ब्रह्मकूं प्राप्त होइकै तिस ब्रह्मतैं पुनः आवृत्तिकूं नहीं प्राप्त होवै है यह अर्थ जो पूर्व कथन कर्‍या था सो युक्त ही है । शंका—हे भगवन् ! स्वस्वरूपकूं प्राप्त हुआभी यह जीवात्मा सुषुप्तिअवस्थातैं पुनः किसप्रकार आवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (मनःषष्ठानि इति ।) हे अर्जुन ! मन है छठा जिनोंविषे ऐसे जे श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण यह पंच ज्ञान इंद्रिय हैं अर्थात् इंद्ररूप आत्माके शब्दादिक विषयोंके उपलब्धकारणरूपकरिकै लिंगरूप जे श्रोत्रादिक इंद्रिय हैं । जे श्रोत्रादिक इंद्रिय जाग्रत्स्वप्नके भोगजनक कर्मोंके क्षयहुए प्रकृतिविषे स्थित हैं अर्थात् अज्ञानरूप प्रकृतिविषे सूक्ष्मरूपकरिकै स्थित हैं ऐसे मनसहित इंद्रियोंकूं सो जीवात्मा पुनः जाग्रत् भोगोंके जनककर्मोंके उदयहुए तिन भोगोंके वासतै आकर्षण करै है अर्थात् जैसे कूर्मनामा जंतु आपणे शरीरविषे लीन करे हुए शिर पादादिक अंगोंकूं पुनः तिस आपणे शरीरतैं बाह्य प्रगट करै है तैसे सो जीवात्माभी तिस अज्ञानरूप प्रकृतितैं मनसहित इंद्रियोंकूं शब्दादिक विषयोंके ग्रहणकी योग्यतारूपकरिकै पुनः प्रगट करै है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । आत्मज्ञानतैं अनावृत्ति हुएभी अज्ञानतैं पुनः आवृत्ति कोई अनुपपन्न नहीं है किंतु अज्ञानतैं इस जीवात्माकी पुनः आवृत्ति युक्तही है ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! यह जीवात्मा किसकालविषे तिन मन सहित इंद्रियोंकूं आकर्षण करै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं—

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ॥
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गंधानिवाशयात् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) शरीरम् । यत् । अवाप्नोति । यत् । च । अपि । उत्क्रामति । ईश्वरः । गृहीत्वा । एतानि । संयाति । वायुः । गंधान् । इव । आशयात् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकालविषे यह जीवात्मा उत्क्रमणकरै है तिसकालविषे तिन इंद्रियोंकूं आकर्षण करै है तथा जिसकालविषे दूसरे शरीरकूं प्राप्तहोवैहै तिसकालविषे इनमनसहितइंद्रियोंकूं ग्रहणकरिकै भी जावैहै जैसे पुष्पादिकस्थानतैं वायु गंधकूं ग्रहण करिकै जावैहै ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! देहइंद्रियरूप संघातका स्वामी होणेतैं ईश्वररूप जो यह जीवात्मा है सो यह जीवात्मा जिसकालविषे उत्क्रमण करैहै अर्थात् इस देहतैं बाह्यनिर्गमन करै है तिस कालविषे यह जीवात्मा जिस देहतैं बाह्य निर्गमन करैहै तिस देहतैं मनसहित श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं आकर्षण करैहै । हे अर्जुन ! यह जीवात्मा तिन मनसहित इंद्रियोंकूं केवल आकर्षणही नहीं करै है किंतु यह जीवात्मा जिसकालविषे इस पूर्व शरीरतैं दूसरे शरीरकूं प्राप्त होवै है तिसकालविषे तिन मनसहित श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं ग्रहण करिकैभी जावैहै । तिन इंद्रियोंकूं छोडिकै जाता नहीं अर्थात् जैसे तिस परित्याग करेहुए पूर्वले शरीरविषे पुनः आवैनहीं तैसे तिन इंद्रियोंकूं ग्रहणकरिकै जावैहै । यह अर्थ (संयाति) इस वचनविषे सम् इस शब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं सूचन कऱ्या । अब स्थूलशरीरके विद्यमान हुएही तिस शरीरतैं इंद्रियोंके ग्रहण करणेविषे श्रीभगवान् दृष्टांतकूं कथन करैं हैं—(वायुर्गंधानिवाशयात् इति) हे अर्जुन ! जैसे पुष्पादिकस्थानतैं गंधरूप सूक्ष्म अंशोंकूं ग्रहणकरिकै वायु पूर्वादिक दिशावोंविषे गमन करैहै तैसे जीवात्माभी इस स्थूलदेहतैं मनसहित इंद्रियोंकूं ग्रहणकरिकै परलोकविषे गमन करै है ॥ ८ ॥

अब श्रीभगवान् तिन इंद्रियोंका कथन करतेहुए जिस प्रयोजनवासतै यह जीवात्मा तिन इंद्रियोंकूं ग्रहणकरिकै निर्गमन करैहै तिस प्रयोजनकूं कथन करैं हैं—

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ॥
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) श्रोत्रम् । चक्षुः । स्पर्शनम् । च । रसनम् । घ्राणम् । एव । च । अधिष्ठाय । मनः । च । अयम् । विषयान् । उपसेवते ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह जीवात्मा श्रोत्रइंद्रियकूं तथा चक्षुइंद्रियकूं तथा त्वक्इंद्रियकूं तथा रसनइंद्रियकूं तथा घ्राणइंद्रियकूं तथा मनकूं आश्रयणकरिकै ही शब्दादिकविषयोंकूं भोगताहै ॥ ९ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! यह जीवात्मा श्रोत्रइंद्रियकूं तथा चक्षुइंद्रियकूं तथा त्वक् इंद्रियकूं तथा रसनइंद्रियकूं तथा घ्राणइंद्रियकूं तथा मनकूं आश्रयणकरिकै ही शब्दस्पर्शादिक विषयोंकूं भोगैहै । इहां (घ्राणमेव च) इस वचनविषे स्थित जो चकार हैं तिस चकारकरिकै वागादिक पंच कर्मइंद्रियोंका तथा प्राणकाभी ग्रहण करणा । और (मनश्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है तिस चकारकरिकै बुद्धि, चित्त, अहंकार इन तीनोंकाभी ग्रहण करणा । अर्थात् पंच ज्ञानइंद्रिय, पंच कर्मइंद्रिय, पंच प्राण, चतुष्टय अंतःकरण इन सर्वोंकूं आश्रयणकरिकै ही यह जीवात्मा शब्दादिक विषयोंकूं भोगै है । तिन इंद्रियादिकोंके आश्रयण कियेतैं विना केवल शुद्ध आत्मा तिन शब्दादिक विषयोंकूं भोगता नहीं । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है तहां श्रुति–(आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।) अर्थ यह–देहश्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै तथा मनकरिकै युक्तहुआही आत्मा भोक्ता होवै है । इस प्रकार वेदवेत्ता बुद्धिमान् पुरुष कथन करैंहैं ॥ ९ ॥

ऐसे दर्शनयोग्यभी आत्माकूं मूढपुरुष देखते नहीं ।किंतु विवेकी पुरुष ही देखैं हैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

उत्क्रामंतं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम् ॥
विमूढा नानुपश्यंति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) उत्क्रामंतम् । स्थितम् । वा । अपि । भुंजानम् । वा । गुणान्वितम् । विमूढाः । न । अनुपश्यंति । पश्यन्ति । ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! उत्क्रमणकरतेहुए अथवा तिसीहीदेहविषे स्थितहुए अथवा विषयोंकूं भोगतेहुए तथा गुणोंकरिकै युक्तहुए ऐसे आत्माकूं भी विमूढपुरुष नहीं देखसकंतेहैं किंतु ज्ञानरूपचक्षुवाले पुरुषही तिस आत्माकूं देखते हैं ॥ १० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! वास्तवतैं गमनादिक सर्वविकारोंतैं रहितहुआभी अंतःकरणादिक उपाधिके तादात्म्यअध्यासतैं पूर्वशरीरका परित्यागकरिकै दूसरे शरीरके प्रति गमन करताहुआ जो यह आत्मा है । अथवा तिस पूर्वले शरीरविषे

ही स्थितहुआ जो यह आत्मा है । अथवा तिस दूसरे शरीरविषे श
विषयोंकूं भोगता हुआ जो यह आत्मा है । तथा सुख, दुःख, मोह, रूप
रज, तम इन गुणोंकरिकै युक्त जो यह आत्मा है इस प्रकारकी सर्व अ
वोंविषे दर्शनके योग्यभी इस आत्माकूं विमूढपुरुष नहीं देखिसकैं हैं । तह
श्लोकके विषयभोगोंकी तथा स्वर्गादिक लोकोंके विषयभोगोंकी वासनाव
आकर्षण हुआहै चित्त जिनोंका ऐसे जे आत्मा अनात्माके विवेक क
अयोग्य पुरुष हैं तिनोंका नाम विमूढ है। ऐसे विमूढ पुरुष तिन उत्क्रम
अवस्थावोंविषे इस आत्मादेवकूं देहादिकोंतैं भिन्नकरिकै जानिसकते नहीं। य
कष्ट है। और जे पुरुष श्रुतिप्रमाणजन्य ज्ञानरूप चक्षुवाले हैं ते विवेकी पु
तिन उत्क्रमणादिक सर्व अवस्थावोंविषे इस आत्मादेवकूं देहादिकोंतैं भिन्न
देखैं हैं ॥ १० ॥

अब (पश्यंति ज्ञानचक्षुषः) इस वचनके अर्थकूं तथा (विमूढा
श्यंति) इस वचनके अर्थकूं यथाक्रमतैं स्पष्टकरिकै वर्णन करैं हैं-

यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थितम् ॥
यतंतोप्यकृतात्मानो नैनं पश्यंत्यचेतसः ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) यतंतः । योगिनः । च । एनम् । पश्यंति । आत्म
अवस्थितम् । यतंतः । अपि । अकृतात्मानः । न । एनम् । पश्
अचेतसः ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! प्रयत्नकरतेहुए योगीपुरुष ही आपणी बु
स्थित इसआत्माकूं देखते हैं और प्रयत्न करतेहुएभी अशुद्धअंतःकरणवाले
वेकी पुरुष इसआत्माकूं नहीं देखैंते हैं ॥ ११ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! ध्यानादिक उपायोंकरिकै यत्न करतेहुए जे शुद्ध अ
करणवाले योगीपुरुष हैं, ते योगीपुरुष ही आपणी बुद्धिविषे स्थित इस आन
रूप आत्माकूं साक्षात्कार करैं हैं । और जिन पुरुषोंनैं यज्ञादिक निष्काम क
रिकै आपणे अंतःकरणकूं शुद्ध नहीं कऱ्या है तथा अशुद्ध अंतःकरणवाले
ही जे पुरुष आत्मानात्माके विवेकतैं रहित हैं ते अशुद्ध अंतःकरणवाले अवि
पुरुष तौ प्रयत्न करतेहुएभी इस आत्मादेवकूं साक्षात्कार करि
नहीं ॥ ११ ॥

तहां सर्वजगत्के प्रकाशकरणेविषे समर्थभी सूर्यचंद्रमादिक जिस परब्रह्मरूप पदकूं प्रकाशकरणेविषे समर्थ होते नहीं । तथा जिस पदकूं प्राप्त हुए मुमुक्षुजन पुनः संसारकी प्राप्तिवासतै आवते नहीं । और जैसे महाकाशतैं घटादिक उपाधिकृत भेदवाले हुए घटाकाशादिक तिस महाकाशके कल्पित अंशभावकूं प्राप्त होवैंहैं तैसे जिस परब्रह्मरूप पदके उपाधिकृत भेदकूं प्राप्त होइकै कल्पित अंशादिक तिस महाकाशके साथि अभेदभावकूं प्राप्त होवैं हैं तैसे महावाक्यजन्य साक्षात्कारकरिकै अविद्यादिक उपाधियोंके निवृत्त हुए यह जीव जिस परब्रह्मरूप पदके साथि अभेदभावकूं प्राप्त होवैहै तिस परब्रह्मरूप पदके सर्वात्मपणेकूं तथा सर्वव्यवहारोंके साधकपणेकूं दिखाइकरिकै (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्) इस पूर्व अध्यायउक्त वचनके अर्थका वर्णन करणेवासतै अब च्यारि श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् आपणे विभूतियोंके संक्षेपकूं कथन करैं हैं–

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ॥
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) यत्[2] । आदित्यगतम्[1] । तेजः[3] । जगत्[10] । भासयते[11] । अखिलम्[9] । यत्[5] । चंद्रमसि[4] । यत्[8] । च[6] । अग्नौ[7] । तत्[12] । तेजः[13] । विद्धि[15] । मामकम्[14] ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! आदित्यविषे[1] स्थित जो[2] तेज[3]है तथा चंद्रमाविषे[4] स्थित जो तेज[5]है तथा[6] अग्निविषे[7] स्थित जो तेज[8] है जो तेज इस सर्व[9] जगत्[10]कूं प्रकाश[11] करताहै तिस[12] तेज[13]कूं तूं मेरास्वरूप[14]ही जान[15] ॥ १२ ॥

भा० टी०–तहां (न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोयमग्निः ।) यह श्रुतिका अर्द्धभाग (न तद्भासयते सूर्यः) इत्यादिक श्लोककरिकै पूर्व व्याख्यान कऱ्याथा अब (तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।) यह श्रुतिका अर्द्धभाग (यदादित्यगतं तेजो) इस श्लोककरिकै श्रीभगवान्नै व्याख्यान करीताहै । हे अर्जुन ! आदित्यविषे स्थित जो चैतन्यात्मक ज्योतिरूप तेज है । तथा चंद्रमाविषे स्थित जो चैतन्यात्मक ज्योतिरूप तेज है । तथा अग्निविषे स्थित जो चैतन्यात्मक ज्योतिरूप तेज है जो चैतन्य ज्योतिरूप तेज इस सर्वजगत्कूं प्रकाश करैहै तिस चैतन्यात्मक ज्योति-

रूप तेजकूं तूं अर्जुन मैं परमात्माका स्वरूपभूत ही जान । यद्यपि स्थावरजंगमरूप सर्वपदार्थोंविषे सो चैतन्यात्मक ज्योति समान हीहै तथापि सत्त्वगुणकी उत्कर्षताकरिकै ते आदित्यादिक सर्वतैं उत्कृष्ट हैं या कारणतैं तिन आदित्यादिकोंविषे ही सो चैतन्यरूप ज्योति अतिशयकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवैहै । तमोगुणप्रधान तथा रजोगुणप्रधान अन्य पदार्थोंविषे स्वरूपतैं विद्यमान हुआभी सो चैतन्यरूप ज्योति स्पष्टकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होता नहीं । यातैं तिन पदार्थोंकी अपेक्षाकरिकै आदित्यादिकोंविषे विशेष्यता बोधन करणेवासतै श्रीभगवान्नैं इहां आदित्यचंद्रमादिकोंका ग्रहण कऱ्या है । जैसे मुखकी समीपताके तुल्य हुएभी काष्ठभित्तिआदिक अस्वच्छ पदार्थोंविषे सो मुख प्रतिबिंबरूपकरिकै अभिव्यक्त होवै नहीं । और स्वच्छ तथा अतिस्वच्छ ऐसे जे दर्पणादिक पदार्थ हैं तिन दर्पणादिक पदार्थोंविषे तौ ता स्वच्छताकी न्यून अधिकताकरिकै सो मुखभी न्यूनअधिकभावतैं प्रतिबिंबरूपकरिकै अभिव्यक्त होवैहै । तैसे सो चैतन्यरूप ज्योतिभी स्वरूपतैं सर्वपदार्थोंविषे विद्यमान हुआभी सत्त्वगुणप्रधान आदित्यादिकोंविषे ही स्पष्टरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवैहै । तमोगुणप्रधान घटादिक पदार्थोंविषे स्पष्टरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होता नहीं इति । अथवा (यदादित्यगतं तेजो) इस वचनविषे तेजशब्दका कथन करिकै (तत्तेजो विद्धि मामकम् ।) इस वचनविषे जो पुनः तेजशब्दका कथन कऱ्या है तिसतैं इस श्लोकका यह दूसरा अर्थभी प्रतीत होवैहै—आदित्यविषे तथा चंद्रमाविषे तथा अग्निविषे स्थित जो परके प्रकाशकरणेविषे समर्थ श्वेतभास्वररूप तेज है जो तेज रूपवान् सर्ववस्तुरूप जगत्कूं प्रकाश करैहै सो तेज मैं परमेश्वरकाही तूं जान अर्थात् मैं परमेश्वरके विभूतिरूप तिस तेजविषे तूं मैं परमेश्वरकी बुद्धि कर इति । इस प्रकारतैं परमेश्वरकी विभूति कथन करणेवासतै यह दूसरा अर्थभी संभव होइसकैहै । जो कदाचित् इस श्लोककूं परमेश्वरकी विभूति कथन करिकै नहीं अंगीकारकरिये तौ पुनः तेजशब्दके ग्रहणतैं विनाही (तन्मामकं विद्धि) इतनेमात्र वचनकूं ही श्रीभगवान् कथन करता भया ईति । और किसी टीकाविषे तौ (यदादित्यगतं तेजो) इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्या है । आदित्य, चंद्रमा, अग्नि इन शब्दोंकरिकै चक्षुआदिक करणोंके अधिष्ठानतारूप सूर्यादिक देवतावोंका तथा सूर्यादिक देवतावोंकरिकै अनुगृहीत चक्षुआदिक करणोंका ग्रहण

करणा । यातैं यह अर्थ सिद्ध होवैहै । चक्षुआदिक बाह्यकरणोंके अधिष्ठातारूप जे सूर्यादिक देवता हैं तथा तिन सूर्यादिक देवतावोंकरिकै अनुगृहीत जे चक्षुआदिकबाह्यकरण हैं तिन दोनोंविषे विद्यमान जो रूपादिकविषयोंके प्रकाशकरणेका सामर्थ्यरूप तेज है सो तेज मैं परमेश्वरका ही तूं जान । तहां श्रुति—(येन सूर्यस्तपति तेजसेऽद्धः येन चक्षूंषि पश्यंति ।) अर्थ यह—जिस चैतन्यरूप तेजकरिकै यह सूर्य तप्त करैहै । तथा जिस चैतन्यरूप तेजकरिकै यह चक्षु रूपादिक पदार्थोंकूं देखैंहैं इति । इसप्रकार मनविषे तथा ता मनके अभिमानी चंद्रमादेवताविषे जो अंतरप्रपंचके प्रकाशकरणेका सामर्थ्यरूप तेज है तिस तेजकूंभी तूं मैं परमेश्वरकाही जान । इस प्रकार वाकूइंद्रियविषे तथा ता वाकूइंद्रियके अभिमानी अग्निदेवताविषे जो अव्याकृतआदिक विषयोंके प्रकाशकरणेका सामर्थ्यरूप तेज है तिस तेजकूंभी तूं मैं परमेश्वरका ही जान ॥ १२ ॥

किंच—

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ॥
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः॥१३॥

(पदच्छेदः) गाम् । आविश्य । च । भूतानि । धारयामि । अहम् । ओजसा । पुष्णामि । च । ओषधीः । सर्वाः । सोमः । भूत्वा । रसात्मकः ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः आपणे बलकारिकै इस पृथिवीकूं अत्यंत दृढकारिकै सर्वभूतोंकूं मैंपरमेश्वरही धारण करूंहूं तथा सर्वरसस्वभाववाला सोमरूप होइकै सर्व ओषधियोंकूं मैं परमेश्वही पुष्टिवाली करूंहूं ॥ १३ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर ही पृथिवीदेवतारूपकरिकै इस पृथिवीकूं सर्वओरतैं व्याप्त करिकै तथा धूलीमुष्टिके तुल्य इस पृथिवीकूं आपणे बलकरिकै अत्यंत दृढकरिकै इस पृथिवीऊपरि रहणेहारे स्थावरजंगमरूप सर्वभूतोंकूं धारण करताहूं । जैसे वायु आपणी शक्तिकरिकै मेघमंडलविषे प्रवेश करिकै ता मेघमंडलविषे स्थित जलोंकूं धारण करै है तैसे मैं परमेश्वरभी पृथिवी देवतारूप करिकै इस पृथिवीविषे प्रवेशकरिकै आपणी शक्तिकरिकै इस पृथिवीकूं अत्यंत दृढ करिकै तिन स्थावरजंगमरूप सर्वभूतोंकूं धारण करूंहूं । जो कदाचित् मैं परमेश्वर

आपणे बलकरिकै इस पृथिवीकूं अत्यंत दृढकरिकै इन सर्वभूतोंकूं धारण करता होवों तौ सिकताके मुष्टितुल्य यह पृथिवी शीघ्र ही विशीर्णभावकूं प्राप्त होवैगी। अथवा यह पृथिवी अधोदेश चलीजावैगी। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति-(येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा। सदाधारपृथिवीम्।) अर्थ यह- जिस परमात्मादेवनैं स्वर्गलोक तथा महान् पृथिवी अत्यंत दृढ करे हैं। जिसकरिकै गुरुत्वधर्मवाले हुएभी यह स्वर्ग तथा पृथिवी नीचै पतन होते नहीं। तथा यह पृथिवी सत्य परमात्मा देवकेही आधार है इति। किंवा सर्वरसस्वभाववाला जो सोम है तिस सोमरूप होइकै मैं परमेश्वर ही पृथिवीतैं उत्पन्नहुई व्रीहियवादिक सर्व ओषधियोंकूं पुष्टिमान् करूंहूं तथा स्वादुरसवाला करूंहूं ॥ १३ ॥

किंच-

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ॥
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४॥

(पदच्छेदः) अहम्। वैश्वानरः। भूत्वा। प्राणिनाम्। देहम्। आश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः। पचामि। अन्नम्। चतुर्विधम् ॥ १४॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरही जठराग्निरूप होईकै सर्वप्राणियोंके देहकूं आश्रयण करताहुआ तथा प्राण अपानकरिकै प्रज्वलितहुआ च्यारि प्रकारके अन्नकूं पाचन करूंहूं ॥ १४ ॥

भा॰ टी॰-हे अर्जुन ! (अयमग्निर्वैश्वानरो योयमंतः पुरुषो येनेदमन्नं पच्यते।) अर्थ यह-जो अग्नि इस पुरुषके अंतरस्थित है तथा जिस अग्निनैं यह च्यारीप्रकारका अन्न पाचन करीताहै सो यह अग्नि वैश्वानर है इति। इस श्रुतिनैं वैश्वानर नामकरिकै कथन कऱ्या जो जठराग्नि है सो जठराग्निरूप होइकै मैं परमेश्वर ही सर्वप्राणियोंके देहोंके अंतर प्रविष्टहुआ तथा तिस जठराग्निकूं प्रज्वालनकरणेहारे प्राणअपानकरिकै युक्तहुआ प्राणियोंनैं भोजन करेहुए भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य इस च्यारिप्रकारके अन्नकूं पाचन करूंहूं। तहां जो वस्तु दांतोंसैं खंडनकरिकै भक्षण कऱ्याजावैहै ता वस्तुकूं भक्ष्य कहैं हैं। जैसे पूरी अपूपादिक हैं तिस भक्ष्यवस्तुकूं चर्व्यभी कहैंहैं। और जो वस्तु दांतोंके व्यापारतैं विनाही केवल जिह्वासैं हलाइकै भीतर निगल्या जावैहै ता वस्तुकूं भोज्य कहैं हैं। जैसे पायस सूपा-

दिक हैं । और जो वस्तु जिह्वाविषे प्राप्तहुआ ही रसके स्वादमात्रकरिकै भीतर निगल्या जावैहै तथा किंचित् द्रवीभूत होवै है ता वस्तुकूं लेह्य कहैं हैं । जैसे गुड आम्ररस शिखरिण्य आदिक हैं । और जो वस्तु दांतोंसैं निष्पीडन करिकै ताके रसअंशकूं भीतर निगलिकै परिशेषतैं रहेहुए असार अंशकूं बाह्य परित्याग करीता है ता वस्तुकूं चोष्य कहैंहैं । जैसे इक्षुदंडादिक हैं इति । और किसी टीकाविषे तौ (पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।) इस वचनका यह अर्थ कऱ्या है—मैं परमेश्वर ही जठराग्निरूप होइकै मनुष्यादिक सर्वप्राणियोंके अंतरस्थित हुआ पार्थिव, आप्य, तैजस, वायव्य इस च्यारिप्रकारके अन्नकूं पाचन करूंहूं । तहां मनुष्यादिक प्राणियोंका तौ व्रीहियवादिक पार्थिव अन्न है । और चातकादिक प्राणियोंका तौ जलरूप आप्य अन्न है । और वालखिल्यादिक प्राणियोंका तौ अग्निरूप तैजस अन्न है । और सर्पादिक प्राणियोंका तौ वायुरूप वायव्य अन्न है इति । तहां जो भोक्ता है सो अग्नि वैश्वानररूप है । और जो भोज्यअन्न है सो सोमरूप है । इसप्रकार यह अग्नि सोम दोनोंही सर्वरूप हैं । इसप्रकारके ध्यान करणेहारे पुरुषकूं अन्नके दोषका लेप होवै नहीं । इस प्रकारका जो शास्त्रविषे फलसहित ध्यान कथन कऱ्याहै सो भी इहां जानिलेणा ॥ १४ ॥

किंच—

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्च ॥
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वदांतकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) सर्वस्य । च । अहम् । हृदि । सन्निविष्टः । मत्तः । स्मृतिः । ज्ञानम् । अपोहनम् । च । वेदैः । च । सर्वैः । अहम् । एव । वेद्यः । वेदांतकृत् । वेदवित् । एव । च । अहम् ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः मैंपरमात्मादेवही सर्वप्राणियोंके बुद्धिविषे जीवात्मारूप होइकै प्रविष्टहुआहूं इसकारणतैं मैं आत्मादेवतैंही तिन सर्वप्राणियोंकूं स्मृति तथा ज्ञान तथा तिस स्मृतिज्ञान दोनोंका अभाव होवै है तथा सर्व वेदोंकरिकै मैंपरमेश्वर ही जानणेयोग्य हूं तथा वेदांतअर्थके संप्रदायका प्रवर्त्तक हूं तथा मैंपरमेश्वर ही सर्व वेदोंके अर्थका वेत्ता हूं ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! ब्रह्मातैं आदिलैके स्थावरपर्यंत जितनेक ऊंच नीच प्राणी हैं तिन सर्वप्राणियोंकी बुद्धिविषे मैं परमात्मादेव ही जीवात्मारूप होइकै

प्रविष्ट हुआहूं । तहां श्रुति-(स एव इह प्रविष्टः । अनेन जीवेनात्मानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि ॥) अर्थ यह- सो परमात्मादेव जीवात्मारूप होइकै इस संघातविषे प्रवेश करताभया । और इस जीवात्मारूप करिकै इस संघातविषे प्रवेशकरिकै मैं परमात्मादेव नामरूपकूं स्पष्ट करूं इति । इत्यादिक अनेक श्रुतियां इन सर्वसंघातोंविषे परमात्मादेवका ही जीवात्मारूपकरिकै प्रवेशकूं कथन करैं हैं । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नै जीवब्रह्मका अभेद कथन कऱ्या । इसीही जीवब्रह्मके अभेदकूं (तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मि) इत्यादिक श्रुतियांभी कथन करैं हैं । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं मैं परत्मात्मादेवही इन सर्वप्राणियोंकी बुद्धिविषे जीवात्मारूप होइकै प्रविष्ट हुआहूं । इसकारणतैं इन सर्व प्राणियोंकूं जा जा स्मृति होवैहै तथा जो जो ज्ञान होवैहै सा स्मृति तथा सो ज्ञान मैं आत्मादेवतैं ही होवैहै । तहां पूर्व अनुभव करेहुए अर्थकूं विषय करणेहारी जा संस्कारजन्य अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम स्मृति है । सा स्मृति अयोगीपुरुषोंकूं तौ इस जन्मविषे पूर्व अनुभव करेहुए अर्थविषयक ही होवैहै । और योगी पुरुषोंकूं तौ जन्मांतरोंविषे अनुभव करेहुए अर्थविषयकभी होवैहै । इस प्रकार सो प्रत्यक्षज्ञानभी अयोगीपुरुषोंकूं तौ विषयइंद्रियके संयोगजन्यही होवैहै । और योगीपुरुषोंकूं तौ देशकालकरिकै व्यवहित वस्तुकाभी सो प्रत्यक्षज्ञान होवैहै । सो दोनोंप्रकारका ज्ञान तथा सा दोनों प्रकारकी स्मृति मैं आत्मादेवतैंही होवैहै । और काम, क्रोध, शोक, मोह इत्यादिकोंकरिकै व्याकुल है चित्त जिन्होंका ऐसे पुरुषोंकूं जो तिस स्मृतिका तथा ज्ञानका अभाव होवैहै सो अभावरूप अपोहनभी मैं आत्मादेवतैं ही होवैहै इति । इस प्रकार श्रीभगवान् आपणी जीवरूपताकूं कथन करिकै अब ब्रह्मरूपताकूं कथन करैंहैं-(वेदैश्च सर्वैः इति) हे अर्जुन ! ऋग्, यजुष, साम, अथर्वण इन च्यारि वेदोंकरिकै मैं परमात्मादेव ही जानणेयोग्य हूं । तहां श्रुति-(सर्वे वेदा यत्पदमामनंति ।) अर्थ यह--कर्मकांड, उपासनाकांड, ज्ञानकांड यह तीनकांडरूप जितनेक ऋगादिक वेद हैं ते सर्व वेद जिस परमात्मादेवरूप पदकूं कथन करैंहैं इति । यद्यपि ऋगादिक वेदोंके कर्मकांड तथा उपासनाकांड इंद्रादिक देवतावोंकूं ही कथन करैंहैं तथापि मैं परमात्मादेव ही तिन इंद्रादिक सर्वदेवतावोंका, आत्मारूप हूं यातैं तिन इंद्रादिक देवतावोंकूं कथन करतेहुएभी ते कर्मउपासनाकांड मैं परमात्मादेवकूं ही कथन करैंहैं । तहां

रमात्मादेव ही इंद्रादिक सर्वदेवतारूप हैं इस अर्थकूं (इंद्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुर-
थो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा बहुधा वदंत्यग्निं यमं मातरिश्वानमा-
हुः । एष उह्येव सर्वे देवाः ।) इत्यादिक अनेक श्रुतियां कथन करैंहैं । पुनः कैसा
हूं मैं परमात्मादेव—वेदांतकृत हूं अर्थात् वेद व्यासादिकरूपकरिकै मैं परमात्मादेव
ही उपनिषदरूप वेदांत अर्थके संप्रदायका प्रवर्त्तक हूं । हे अर्जुन! केवल वेदांत-
अर्थके संप्रदायमात्रका ही मैं प्रवर्त्तक नहींहू किंतु वेदवित्भी मैंही हूं अर्थात् कर्म-
कांड, उपासनाकांड ज्ञानकांड यह तीनकांडरूप जितनेक मंत्रब्राह्मणरूप सर्व वेद हैं
तिन सर्व वेदोंके अर्थकूं जानणेहाराभी मैं परमात्मादेवही हूं । यातैं (ब्रह्मणो हि प्रति-
ष्ठाहम्) यह जो पूर्वअध्यायविषे वचन कह्याथा सो यथार्थही है इति । और किसी
टीकाविषे तौ (सर्वस्य चाहम्) इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्या है—सर्व प्राणियोंकी
बुद्धिरूप गुहाविषे मैं परमात्मादेव क्षेत्रज्ञनामा जीवरूपकारिकै अत्यंत समीपहुआ
स्थित हूं । इस कारणतैं सर्वप्राणिरूप मैं परमेश्वर ही हूं । इतने कहणेकरिकै श्री-
भगवान्नैं जीवब्रह्मविषे भेददृष्टि कदाचित्भी नहीं करणी यह अर्थ सूचन कऱ्या।
तहां यह सर्व जगत् परमेश्वररूपही है इस प्रकार सर्वत्र परमेश्वरबुद्धिकरिकै जे पुरु-
ष परमेश्वरकी उपासना करैंहैं तथा जे पुरुष तिस उपासनाकूं नहीं करैंहैं तिन दो-
नोंप्रकारके पुरुषोंकूं जो फल प्राप्त होवैहै तिस फलकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं ।
(मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च इति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकी उपासनाकरिकै शुद्ध
हुआहै अंतःकरण जिन्होंका ऐसे अधिकारी पुरुषोंकूं तौ मैं परमेश्वरतैं ही गुरुशास्त्रके
अनुग्रहकरिकै स्मृति होवैहै अर्थात् (स आत्मा तत्त्वमसि) इस वचनकरिकै श्रीगुरु-
वोंनैं जो त्रिविधपरिच्छेदतैं रहित निर्विशेष आत्मा तूं है इस प्रकारतैं बोधन कऱ्या
है सो निर्विशेष शुद्ध आत्मा मैं हूं इस प्रकारकी जो तिसीही आत्माविषे स्वात्म-
पणेकी स्मृति है सा स्मृतिभी तिन अधिकारीपुरुषोंकूं मैं परमेश्वरतैं ही होवै है।
तथा यह सर्व जगत् तथा मैं ब्रह्मरूप ही है । इस प्रकार सर्व जगत्विषे तथा आप-
णेविषे जो ब्रह्ममात्रपणेका ज्ञान है सो ज्ञानभी तिन उपासक पुरुषोंकूं मैं परमेश्वरतैं
ही होवैहै । और जे पुरुष मैं परमेश्वरकी उपासनातैं रहित हैं तथा मलिनबुद्धि-
वाले हैं तथा रागद्वेषादिक दोषोंकरिकै दुष्ट हैं ऐसे बहिर्मुख पुरुषोंकूं तिस स्मृतिका
तथा तिस ज्ञानका जो आपोहन है अर्थात् अप्राप्ति है सा अप्राप्तिभी मैं परमेश्वर-
तैंही होवैहै। हे अर्जुन! पुनः मैं परमेश्वर कैसा हूं—वेदांतकृत हूं अर्थात् हिरण्यगर्भ-

रूप ब्रह्माके ताईं वेदांतकी प्राप्तिरूप अनुग्रहकर्त्ता मैं परमेश्वरही हूं। तहां श्रुति-(यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।) अर्थ यह-जो परमेश्वर पूर्वं हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माकूं उत्पन्न करताभया तथा जो परमेश्वर तिस ब्रह्माके ताईं सर्ववेदोंकूं देताभया इति। अथवा (वेदान्तकृत्) इस वचनका यह अर्थ करणा-इस लोकविषे अधिकारी शिष्योंके ताईं आचार्यरूपकरिकै वेदांतके अर्थका प्रकाश करणेहारा मैं परमेश्वरही हूं। पुनः कैसा हूं मैं-वेदवित् हूं। तहां वेदका अर्थरूप जो निर्विशेष अद्वितीय ब्रह्म है तिस ब्रह्मकूं जो पुरुष मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं तथा ब्रह्मवेत्तागुरुके अनुग्रहतैं आपणा आत्मारूपकरिकै जानैहै ताका नाम वेदवित् है ऐसा ब्रह्मवेत्ता पुरुष है सो ब्रह्मवेत्ता पुरुषभी मैं परमेश्वर ही हूं यह वार्ता (ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।) इस वचनकरिकै पूर्वभी कथन करि आये हैं। तहां (सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टः।) इस वचनकरिकै सर्व प्राणीमात्रकूं आपणा आत्मारूपकरिकै श्रीभगवान्नैं जो पुनः वेदान्तकृत् मैं हूं तथा वेदवित् मैं हूं यह वचन कथन कऱ्या है सो इस अर्थके बोधन करणेवासतै कथन कऱ्या है-मूढपुरुषोंनै तथा बुद्धिमान् पुरुषोंनैं वेदांतशास्त्रके उपदेशकर्त्ता गुरुविषे तथा अन्यभी ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंविषे परमेश्वरबुद्धि अवश्यकरिकै करणी इति। तहां (यदादित्यगतं तेजः) इत्यादिक वचनोंकरिकै मुमुक्षजनकृत उपासनावासतै श्रीभगवान्नैं आपणी विभूति कथन करी सा विभूतिही परमेश्वरका पारमार्थिकरूप होवैगा। ऐसी शंकाके प्राप्तहुए श्रीभगवान् आपणे यथार्थस्वरूपके बोधन करणेवासतै कहैहैं (वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः इति।) हे अर्जुन! ऋग्, यजुष, साम, अथर्वण इन च्यारि वेदोंविषे स्थित जितनाक उपनिषद-रूप वेदांत हैं तिन वेदांतोंकरिकै मैं परमात्मादेवही जानणेयोग्य हूं। अर्थात् (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म। विज्ञानमानंदं ब्रह्म। आनंदो ब्रह्म। ब्रदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरम्। अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्। अप्राणममुखमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमचक्षुष्कमनामगोत्रमशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्। निष्कलं निष्क्रियं शांतं नित्यं शुद्धं बुद्धं मुक्तं सत्यं सूक्ष्मं परिपूर्णमद्वयं सदानंदचिन्मात्रं शांतं चतुर्थं मन्यंते। स आत्मा स विज्ञेयः तत्त्वमसि।) इत्यादिक वचनोंकरिकै मुमुक्षजनोंनै जानणेयोग्य जो निर्विशेष नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव सच्चिदानंद एकरस अद्वतीय परमात्मादेव है सो परमात्मादेवरूपही मैं परमार्थतैंहूं पूर्वउक्त मायोपाधिक स्वरूप मैं परमार्थतैं नहीं ॥ १५ ॥

इस प्रकार आपणे सोपाधिकस्वरूपकूं कथन करिकै श्रीभगवान् कृपाकरिकै अर्जुनके ताईं क्षरअक्षरनामा कार्यकारणरूप दोउपाधियोंतैं रहित निरुपाधिक शुद्ध आपणे स्वरूपकूं तीन श्लोकोंकरिकै प्रतिपादन करैंहैं—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च॥
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) द्वौ। इमौ। पुरुषौ। लोके। क्षरः। च। अक्षरः। एव। च। क्षरः। सर्वाणि। भूतानि। कूटस्थः। अक्षरः। उच्यते॥ १६॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! संसारविषे यह दो ही पुरुष हैं एक तौ क्षर पुरुषहै तथा दूसरा अक्षर पुरुष है तहां कार्यरूप सर्व भूत तौ क्षरपुरुष कह्याजावैहै और कारणरूपमाया अक्षरपुरुष कह्याजावैहै ॥ १६ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन! चैतन्यपुरुषका उपाधिरूप होणेतैं पुरुषशब्दकरिकै कथनकरेहुए दो पुरुष ही इस संसारविषे हैं। कौन हैं ते दो पुरुष? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—(क्षरश्चाक्षर एव च इति।) हे अर्जुन! एक तौ क्षरनामा पुरुष है और दूसरा अक्षरनामा पुरुष है। अर्थात् उत्पत्तिविनाश-वाला जितनाक कार्यसमूह है सो कार्यसमूह तौ क्षरनामा पुरुष है और आत्मज्ञानतैं विना विनाशतैं रहित तथा क्षरनामा पुरुषके उत्पत्तिका बीजरूप ऐसी जा भगवत्की मायाशक्ति है सा कारणउपाधिरूप मायाशक्ति दूसरा अक्षरनामा पुरुष है। इसी प्रकारके तिन दोनों पुरुषोंके स्वरूपकूं श्रीभगवान् आपही स्पष्टकरिकै कथन करैंहैं (क्षरः सर्वाणि भूतानि इति।) हे अर्जुन! उत्पत्तिविनाशवाले जितनेक कार्य हैं ते सर्व कार्य तौ क्षरः इस नामकरिकै कहेजावैं हैं। और कूटस्थ अक्षर इस नामकरिकै कह्या जावैहै। तहां यथार्थवस्तुका आच्छादनकरिकै अयथार्थ-वस्तुका जो प्रकाशन है जिसकूं वंचनभी कहैं हैं तथा मायाभी कहैंहैं ताका नाम कूट है तिस कूटरूपकरिकै जो स्थित होवै ताका नाम कूटस्थ है अर्थात् आवर-णशक्ति, विक्षेपशक्ति इन दोनों रूपोंकरिकै जो स्थित होवै ताका नाम कूटस्थ है। ऐसे कूटस्थनामवाली भगवत्की मायाशक्तिरूप कारणउपाधि है सा माया-शक्तिरूप कारणउपाधि इस सर्व संसारका बीजरूप होणेतैं तथा आत्मज्ञानतैं विना अन्य उपायकरिकै नहीं नाशहोणेतैं अनंत है। यातैं सा मायाशक्तिरूप कारण-

उपाधि अक्षर इस नामकरिकै कही जावैहै इति । और किसी टीकाविषे तौ क्षर-शब्दकरिकै सर्व अचेतनवर्गका ग्रहण करिकै (कूटस्थोऽक्षर उच्यते) इस वचन-करिकै क्षेत्रज्ञनामा जीवात्माका ग्रहण कऱ्याहै । सो यह व्याख्यान समीचीन नहींहै । काहेतैं (उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः) इस वक्ष्यमाणवचनकरिकै तिस क्षेत्रज्ञ आत्माकूं ही पुरुषोत्तमरूपकरिकै प्रतिपादन करया है यातैं इहां क्षर, अक्षर इन दोशब्दोंकरिकै कार्यउपाधि कारणउपाधि यह दोनों जडउपाधिही ग्रहणकरणे-योग्य हैं १६ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे क्षरशब्दकरिकै सर्वकार्यरूप उपाधिका कथन करया । और अक्षरशब्दकरिकै भगवत्की मायाशक्तिरूप कारणउपाधिका कथन करया । अब इस श्लोकविषे तिन क्षरअक्षररूप दोनों उपाधियोंतैं विलक्षण तथा तिन दोनों उपाधियोंके दोषोंकरिकै अलिपायमान ऐसा जो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव उत्तमपुरुष है तिस उत्तमपुरुषका श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) उत्तमः । पुरुषः । तु । अन्यः । परमात्मा । इति । उदाहृतः । यः । लोकत्रयम् । आविश्य । बिभर्ति । अव्ययः । ईश्वरः ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः अत्यंतउत्कृष्ट चेतनपुरुष तौ तिस क्षरअक्षर-दोनोंतैं भिन्नही है तथा परमात्मा इसनामकरिकै कथनकऱ्याहै जो चेतनपुरुष तीनलोकोंकूं स्वाश्रितकरिकै धारणकरै है तथा अव्ययरूप है तथा ईश्वररूप है॥ १७॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! अत्यंत उत्कृष्ट प्रत्यक्चेतन आत्मारूप पुरुष तौ अन्य ही है अर्थात् क्षरशब्दकरिकै कथन कऱ्या जो कार्यसमूह है तथा अक्षरशब्द-करिकै कथन कऱ्या जो मायारूप कारणउपाधि है तिन दोनों जड उपाधियोंतैं अत्यंत विलक्षण तथा तिन दोनों उपाधियोंका प्रकाशकरणेहारा प्रत्यक्चेतन-स्वरूप उत्तम पुरुष तीसराही है । जो चेतनपुरुष वेदांतशास्त्रोंविषे परमात्मा इस नामकरिकै कथन कऱ्याहै अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनं-दमय यह जे पंचकोश हैं जे पंचकोश अज्ञानकरिकै तिनतिन वादियोंनैं आत्म-रूपकरिकै कल्पना करे हैं ऐसे पंचकोशोंतैं जो परम होवै तथा आत्मा होवै ताका

म परमात्मा है । तहां सो चेतनरूप उत्तमपुरुष अकल्पित होणेतैं तिन कल्पि-
पंचकोशोंतैं अत्यंत उत्कृष्ट होणेतैं परम है । तथा (ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा) इस श्रुतिनैं
र्वका अधिष्ठानरूपकरिकै कथन कऱ्या है तथा सर्वभूतोंका प्रत्यक्चेतनरूप है ।
सकारणतैं वेदांतशास्त्रोंविषे सो चेतनरूप उत्तमपुरुष परमात्मा इस नामकरिकै
थन करयाहै इति। हे अर्जुन ! जो परमात्मादेव भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक इन
ीनलोकरूप सर्व जगतकूं आपणी मायाशक्तितैं स्वाश्रितकरिकै आपणी सत्तास्फू-
ि देकारिकै धारण करैहै तथा पोषण करै है । तहां श्रुति-(व्यक्ताव्यक्तं भरते
िश्वमीशः) अर्थ यह-कार्यकारणरूप सर्वजगत्कूं परमेश्वर धारण करै है तथा
रण करैहै इति । पुनः कैसा है-अव्यय है अर्थात् जन्ममरणादिक सर्वविकारोंतैं
ून्य है तथा ईश्वर है अर्थात् सूर्यचंद्रादिक सर्वजगत्का नियंता नारायणरूप है
सा उत्तमपुरुष वेदांतोंविषे परमात्मा इस नामकरिकै कथन करया है । तहां
ुति-(स उत्तमः पुरुषः) अर्थ यह-सो परमात्मादेव ही उत्तमपुरुष है इति।
हां प्रत्यक्चेतनरूप आत्माके जे (अव्ययः ईश्वरः) यह दो विशेषण कथन
रेहैं ते दोनों विशेषण हेतुगर्भितविशेषण हैं ताकरिकै यह दो अनुमान सिद्ध
ोवैंहैं । चेतन आत्मा तिस पूर्वउक्त अक्षरनामा दोपुरुषोंतैं भिन्न होणेकूं योग्य है
अव्यय होणेतैं । जो वस्तु तिन क्षरअक्षर दोनोंतैं भिन्न नहीं होवै है सो वस्तु अव्य-
भी नहीं होवैहै जैसे बुद्धिआदिक हैं इति । तथा चेतन आत्मा तिन क्षरअक्षर
ोनोंतैं भिन्न होणेकूं योग्य है ईश्वर होणेतैं । जैसे प्रजाका नियंता महाराजा तिस
जातैं भिन्नही होवैहै ॥ १७ ॥

अब पूर्व कथन कऱ्या जो क्षरअक्षर दोनोंतैं विना विलक्षण परमात्मादेव है
तिस परमात्मादेवका पुरुषोत्तम यह प्रसिद्धनाम कथन करिकै ऐसा परमात्मादेव
मैंही हूं इस प्रकारतैं (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहं तद्धाम परमं मम।) इत्यादिक वचनों-
करिकै पूर्व कथन करेहुए आपणे महिमाके निश्चय करावणेवासतै श्रीभगवान्
आपणे स्वरूपकूं दिखावैं हैं-

यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः ॥
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) यस्मात् । क्षरम् । अतीतः । अहम् । अक्षरात् । अपि । च । उत्तमः । अतः । अस्मि । लोके । वेदे । च । प्रथितः । पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं मैं परमेश्वर क्षरकूं अतिक्रमणकरताभयाहूं तथा अक्षरतैं भी अत्यंत उत्कृष्टहूं इस कारणतैं लोकविषे तथा वेदविषे पुरुषोत्तम इस नामकरिकै प्रसिद्ध हुआहूं ॥ १८ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! कार्यरूप होणेतैं विनाशवान् तथा स्वप्नादिकोंकी न्याई मायामय ऐसा जो अश्वत्थनामा यह संसारवृक्ष है तिस संसारवृक्षरूप क्षरकूं मैं परमेश्वर जिसकारणतैं अतिक्रमण करताभयाहूं । तथा माया, अविद्या, अज्ञान, भगवत्शक्ति इत्यादिक नामोंकरिकै प्रसिद्ध जो अव्याकृतरूप कारण है जिस अव्याकृतरूप कारणकूं (अक्षरात्परतः परः) इस श्रुतिविषे अक्षर इस नामकरिकै कथन कऱ्याहै तथा जो मायारूप अक्षर इस संसारवृक्षका बीजरूप है ऐसे सर्वजगत्के कारणरूप मायानामा अक्षरतैंभी मैं परमेश्वर उत्तम हूं । अर्थात् चैतन्यरूप होणेतैं मैं परमेश्वर तिस जडरूप अक्षरतैं अत्यंत उत्कृष्ट हूं । इस कारणतैं अर्थात् चैतनपुरुषका उपाधिरूप जे क्षरअक्षर दोनों हैं जे क्षरअक्षर दोनों चेतन पुरुषके तादात्म्य अध्यासतैं पुरुष इस नामकरिकै कहे जावैं हैं ऐसे क्षरअक्षररूप दोनों उपाधियोंतैं अत्यंत उत्कृष्ट होणेतैं मैं परमेश्वर इस लोकविषे तथा वेदविषे पुरुषोत्तम इस नामकरिकै प्रसिद्ध हुआ हूं । तहां कविपुरुषोंकरिकै रचित काव्यादिरूप लोकविषे तौ-(हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै मैं परमेश्वर पुरुषोत्तम इस नामकरिकै प्रसिद्ध हूं । और वेदविषे तौ (स उत्तमः पुरुषः) इत्यादिक वचनोंकरिकै मैं परमेश्वर पुरुषोत्तम इस नामकरिकै प्रसिद्ध हूं ॥ १८ ॥

अब श्रीभगवान् पूर्व उक्त अर्थसहित तिस पुरुषोत्तमनामके ज्ञानका फल वर्णन करैं हैं-

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ॥
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) यः । माम् । एवम् । असंमूढः । जानाति । पुरुषोत्तमम् । सः । सर्ववित् । भजति । माम् । सर्वभावेन । भारत ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष संमोहतैं रहितहुआ मैं परमेश्वरकूं इसप्रकार
रुषोत्तमरूप जाँनताहै सो पुरुषही सर्वज्ञ होवैहै तथा भक्तियोगकरिकै मैंपरमेश्वरकूं
वैनकरैहै ॥ १९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष असंमूढ हुआ अर्थात् यह
ृष्णभी कोई मनुष्यविशेषही है या प्रकारके संमोहतैं रहितहुआ मैं परमेश्वरकूं
ुरुषोत्तमनामके अर्थ ज्ञानपूर्वक पुरुषोत्तमरूप ही जानै है मनुष्यरूप जानता नहीं
ो अधिकारी पुरुष ही मैं परमेश्वरकूं निरतिशय प्रेमलक्षण भक्तियोगकरिकै सेवन
करै है। तथा सो अधिकारी पुरुष ही सर्ववित् है अर्थात् मैं परमेश्वरकूं सर्वका
ात्मारूपकरिकै जानणेहारा सो पुरुष ही सर्वज्ञ है। यातैं (मां च योऽव्यभिचारेण
क्तियोगेन सेवते। स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते।) यह जो पूर्व वचन
कह्या था सो वचन युक्तही है । तथा (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्) यह जो वचन
ूर्व कथन कन्या था सो वचनभी युक्तही है ॥ १९ ॥

अब श्रीभगवान् इस पंचदश अध्यायके अर्थकी स्तुति करतेहुए इस अध्यायका
उपसंहार करैं हैं–

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ॥
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
पुरुषोत्तमयोगो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) इति। गुह्यतमम्। शास्त्रम्। इदम्। उक्तम्। मया।
अनघ। एतत्। बुद्ध्वा। बुद्धिमान्। स्यात्। कृतकृत्यः। च।
भारत ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे सर्वव्यसनोंतैं रहित भारत ! मैंभगवान्नैं तुम्हारेप्रति इसपूर्व-
उक्तप्रकारकरिकै अत्यंत रहस्यरूप तथा संपूर्णशास्त्ररूप यह पंचदशाध्याय
कथनकन्याहै इसकूं जांनिकै यह पुरुष आत्मज्ञानवाला होवैहै तथा कृतकृत्य
होवैहै ॥ २० ॥

भा० टी०–हे अनघ ! अर्थात् हे सर्वव्यसनोंतैं रहित तथा हे भारत ! अर्थात्
हे भरतवंशविषे उत्पन्नहुए अर्जुन ! मैं भगवान्नैं तैं अर्जुनके प्रति इस पंचदश

अध्यायविषे पूर्वउक्त प्रकारकरिकै अत्यंत रहस्यरूप संपूर्णशास्त्र ही संक्षेपकरिकै कथन कऱ्याहै अर्थात् अष्टादश अध्यायरूप सर्व गीताशास्त्रका जितनाक अर्थ है सो संपूर्ण अर्थ हमनैं संक्षेपकरिकै इस पंचदश अध्यायविषे तुम्हारेप्रति कथन कऱ्याहै। यातैं इस पंचदश अध्यायके अर्थकूं ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं निश्चयकरिकै यह अधिकारी पुरुष बुद्धिमान् होवैहै अर्थात् मैं ब्रह्मरूप हूं इस प्रकारके आत्मज्ञान-वाला होवैहै तथा सो अधिकारी पुरुष कृतकृत्यभी होवैहै । तहां इस अधिकारी पुरुषकूं तिसतिस वर्ण आश्रमविषे करणेयोग्य जितनेक शुभकर्म हैं ते सर्व शुभकर्म करेहुए हैं जिस पुरुषनैं अर्थात् जिस पुरुषकूं पुनः कोई कर्म करणेयोग्य रह्या नहीं ता पुरुषका नाम कृतकृत्य है । तात्पर्य यह—श्रेष्ठकुलविषे जन्मकूं प्राप्तहुए ब्राह्मणनैं जो जो शास्त्रविहितकर्म करणेयोग्य है सो सर्व कर्म परमात्मादेवके साक्षात्कार हुए कऱ्या जावैहै तिस परमात्मादेवके साक्षात्कारतैं विना किसीभी पुरुषके तिन कर्तव्य-कर्मोंकी समाप्ति होती नहीं । इहां (हे अनघ हे भारत) इन दोनों संबोधनों करिकै श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करताभया । इस पंचदश अध्यायके अर्थकूं जानिकै जबी साधारण पुरुषभी आत्मज्ञानवाला होइकै कृतकृत्य होवैहै तबी तूं अर्जुन तौ महाकुलविषे जन्मकूं प्राप्त हुआ है तथा आप सर्वव्यसनोंतैं रहित हैं यातैं कुलके गुणोंकरिकै तथा आपणे गुणोंकरिकै युक्त हुआ तूं अर्जुन इस पंचदश अध्यायके अर्थकूं जानिकै आत्मज्ञानवाला होइकै कृतकृत्य होवैगा याकेविषे क्या कहणाहै इति । और (हे अनघ) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या—सर्व व्यसनोंतैं रहित अधिकारी पुरुषके प्रतिही ब्रह्मवेत्ता गुरुनैं यह अत्यंत गुह्य ब्रह्मविद्या उपदेश करणी । व्यसनोंवाले पुरुषकूं यह ब्रह्मविद्या उपदेश करणी नहीं ॥ २० ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशाऽध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्वले अध्यायविषे (अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके ।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं मनुष्यदेहविषे पूर्वले पुण्यपापकर्मोंके अनुसार अभिव्यक्तिकूं प्राप्तहुई शुभवासनावोंकूं संसारवृक्षका अवांतर मूलरूपकरिकै कथन कऱ्या था ते वासना ही पूर्व नवमें अध्यायविषे प्राणियोंकी प्रकृतिरूप करिकै दैवी, आसुरी, राक्षसी यह तीनप्रकारकी सूचन करीथी। तहां वेदनैं बोधन करे जे नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तथा आत्मज्ञानके शमदमादिक उपाय हैं तिन दोनोंके अनुष्ठान करणेविषे प्रवृत्ति करावणेहारी जा सात्त्विकी शुभवासना है सा सात्त्विकी शुभवासना दैवी प्रकृति कही जावैहै। और वेदउक्त निषेधका उल्लंघनकरिकै स्वभावतैं सिद्ध रागद्वेषके अनुसारी तथा सर्व अनर्थोंका कारणरूप जा प्रवृत्ति है ता प्रवृत्तिका हेतुभूत जा राजसी तामसीरूप अशुभवासना है सा अशुभवासना आसुरी प्रकृति तथा राक्षसी प्रकृति कही जावैहै। तहां विषयभोगोंकी प्रधानताकरिकै रागकी प्रबलतातैं ता अशुभवासनाविषे आसुरी प्रकृतिपणा है। और हिंसाकी प्रधानताकरिकै द्वेषकी प्रबलतातैं ता अशुभवासनाविषे राक्षसी प्रकृतिपणा है। इतना दोनोंका अवांतरभेद है इति। अब इस अध्यायविषे यह वार्त्ता कहैहैं। शास्त्रके अनुसारिपणेकरिकै तिस शास्त्रविहित अर्थविषे प्रवृत्तिकरावणेहारी जा सात्त्विकी शुभवासना है सा सात्त्विकी शुभवासना तौ दैवीसंपद कही जावैहै। और शास्त्रका उल्लंघनकरिकै तिस शास्त्रनिषिद्ध विषयोंविषे प्रवृत्तिकरावणेहारी जा राजसी तामसीरूप अशुभवासना है सा अशुभवासना राक्षसी, आसुरी इन दोनोंकी एकताकरिकै आसुरीसंपद कहीजावै है। इस रीतिसैं शुभरूपताकरिकै तथा अशुभरूपकरिकै दोप्रकारका ही वासनावोंका भेद है। यहही दोप्रकारका भेद (द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च।) इत्यादिक श्रुतियोंविषे कथन कऱ्याहै। तहां दैवीसंपदरूप शुभवासना तो इस अधिकारी पुरुषके मोक्षका हेतु है। और आसुरीसंपदरूप अशुभवासना इस पुरुषके बंधका हेतु है। यातैं दैवीसंपदरूप शुभवासना तौ इस अधिकारी पुरुषनैं अवश्यकरिकै ग्रहण करणेयोग्य है। और आसुरीसंपदरूप अशुभवासना अवश्यकरिकै परित्यागकरणेयोग्यहै सो शुभवासनावोंका ग्रहण तथा अशुभवासनावोंका परित्याग तिन शुभवासनावोंके स्वरूप जानेतैं विना होवै नहीं।

यातैं श्रीभगवान्‌नैं तिन शुभवासनावोंके ग्रहण करावणेवासतै तथा तिन अशुभवासनावोंके परित्याग करावणेवासतै तिन शुभवासनावोंके स्वरूपकूं कथन करणेहारा यह षोडशाध्याय प्रारंभ करीताहै । तहां प्रथम तीन श्लोकोंकारिकै श्रीभगवान् ग्रहणकरणेयोग्य दैवीसंपद्‌के स्वरूपकूं कथन करैंहैं–

श्रीभगवानुवाच ।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ॥
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) अभयम् । सत्त्वसंशुद्धिः । ज्ञानयोगव्यवस्थितिः । दानम् । दमः । च । यज्ञः । च । स्वाध्यायः । तपः । आर्जवम् ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अभय अंतःकरणकी शुद्धि ज्ञानयोगदोनोंविषे स्थिति दान तथा दम तथा यज्ञ स्वाध्याय तप आर्जव यह सर्व दैवीसंपद्‌रूप हैं ॥ १ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! शास्त्रनैं उपदेशकऱ्या जो अर्थ है ता अर्थविषे संशयतैं रहित होइकै जो तिस अर्थके अनुष्ठानकरणेविषे तत्परता है ताका नाम अभय है । अथवा सर्वपरिग्रहतैं रहित एकाकी स्थितहुआ मैं कैसे जीवोंगा इसप्रकारके भयतैं जो रहितपणा है ताका नाम अभय है । और अंतःकरणकी जा सम्यक् निर्मलता है ताका नाम सत्त्वसंशुद्धि है । तहां ता अंतःकरणकी शुद्धिविषे जा परमेश्वरके स्वरूप जानणेकी योग्यता है यहही ता अंतःकरणकी शुद्धिविषे सम्यक्‌पणा है । अथवा परवंचन, माया, अनृत इत्यादिकोंका जो परित्याग है ताका नाम सत्त्वसंशुद्धि है । तहां आपणे अर्थकी सिद्धि करणेवासतै जिसीकिसी मिसकरिकै जो परका वशकरणा है ताका नाम परवंचन है । और हृदयविषे अन्यप्रकारका अभिप्रायराखिकै बाह्यतैं अन्यप्रकारका व्यवहार करणा याका नाम माया है । और जैसा वृत्तांत देख्या होवै तैसा वृत्तांत मुखतैं नहीं कथन करणा किंतु तिसतैं अन्यथाही कथन करणा याका नाम अनृत है । इत्यादिकोंतैं जो रहितपणा है ताका नाम सत्त्वसंशुद्धि है । और अध्यात्मशास्त्रतैं जो आत्माके स्वरूपका निश्चय है ताका नाम ज्ञान है । और चित्तकी एकाग्रताकारिकै तिस स्वरूपका जो आपणे अनुभवविषे आरूढपणा है ताका नाम योग है । तिस ज्ञान योग दोनोंविषे जा व्यवस्थिति है अर्थात् सर्वकालविषे तत्परता है ताका नाम ज्ञानयोगव्यवस्थिति है । अथवा

(अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।) इस वचनका यह दूसरा अर्थ करणा (अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा) अर्थ यह—हमारेतैं सर्वभूतप्राणियोंके ताईं अभय प्राप्त होवै इसप्रकारका अभयदान देणेका संकल्प संन्यासके ग्रहणकालविषे होवैहै ता संकल्पका जो परिपालन है अर्थात् शरीर, मन, वाणीकरिकै जो किसीभी प्राणीकूं भयकी प्राप्ति नहीं करणी है ताका नाम अभय है। यह अभयरूप धर्म दूसरेभी परमहंसके सर्वधर्मोंका उपलक्षण है । और श्रवण मनन निदिध्यासन इन तीनोंकी परिपक्वताकरिकै अंतःकरणका असंभावना विपरीतभावनादिक मलोंतैं जो रहितपणा है ताका नाम सत्त्वसंशुद्धि है । और अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारका जो आत्मसाक्षात्कार है ताका नाम ज्ञान है । और मनोनाश, वासनाक्षय इन दोनोंके अनुकूल जो पुरुषप्रयत्न है ताका नाम योग है । तिस ज्ञान योग दोनोंकरिकै जा संसारीजनोंतैं विलक्षण जीवन्मुक्तिरूप अवस्थिति है ताका नाम ज्ञानयोगव्यस्थिति है । इसप्रकारके व्याख्यान कियेहुए यह अभयादिक दैवीसंपद फलरूपही जानणी । तहां भगवद्भक्तितैं विना सा अंतःकरणकी शुद्धि होती नहीं। यातैं ता अंतःकरणकी शुद्धिके कथन करिकै सा भगवद्भक्तिभी कथन हुई जानणी । काहेतैं (महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः । भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥) इस नवमे अध्यायके श्लोकविषे दैवीसंपदविषे भगवद्भक्तिकाभी कथन कऱ्याथा और सा भगवद्भक्ति अत्यंत श्रेष्ठ है। यातैं श्रीभगवान्नैं इहां अभयादिकोंके साथि तिस भगवद्भक्तिका पठन कऱ्या नहीं इति। इसप्रकार महान् भाग्यवाले परमहंस संन्यासियोंके फलभूत दैवीसंपद्कूं कथनकरिकै श्रीभगवान् अब तिन संन्यासियोंतैं अन्य गृहस्थादिकोंके साधनभूत दैवीसंपदकूं कथन करैं हैं–(दानं दमश्च इति) तहां आपणे ममत्वअभिमानके विषय जे अन्न, सुवर्ण, गौ, भूमि, गृह इत्यादिक पदार्थ हैं तिन अन्नादिक पदार्थोंका यथाशक्ति परिमाण तथा श्रद्धाभक्तिपूर्वक जो अतिथि ब्राह्मणादिकोंके ताईं देणा है ताका नाम दान है। और श्रोत्रादिक बाह्य इंद्रियोंका जो स्वस्वविषयतैं निवृत्तिरूप संयम है ताका नाम दम है । यद्यपि गृहस्थपुरुषोंविषे सर्वप्रकारतैं इंद्रियोंका संयम संभवता नहीं तथापि ऋतुकालादिकोंतैं अतिरिक्त कालविषे जो मैथुनादिकोंका नहीं करणा है यह ही तिन गृहस्थोंके इंद्रियोंका संयम है । इहां (दमश्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार इहां नहीं कथन करे

हुए दूसरेभी निवृत्तिरूप धर्मोंके समुच्चय करावणेवासतै है । और शास्त्रविहित कर्मविशेषका नाम यज्ञ है सो यज्ञ दोप्रकारका होवे है । एक तौ श्रौतयज्ञ होवैहै और दूसरा स्मार्त्तयज्ञ होवै है । तहां अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, सोमयाग इत्यादिक श्रौतयज्ञ कहेजावैं हैं । और देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ यह च्यारों स्मार्त्तयज्ञ कहेजावैं हैं । यद्यपि ब्रह्मयज्ञभी स्मार्त्तयज्ञ ही कह्या जावैहै तथापि इहां तिस ब्रह्मयज्ञका स्वाध्यायपदकरिकै पृथक्ही कथन कऱ्या है । यातैं इहां यज्ञशब्दकरिकै च्यारिही स्मार्त्तयज्ञ ग्रहण करे हैं । इहां (यज्ञश्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार इहां नहीं कथन करेहुए दूसरेभी प्रवृत्तिरूप धर्मोंके समुच्चय करावणेवासतै है । यह दान, दम, यज्ञ इन तीनों गृहस्थपुरुषके ही दैवीसंपद्रूप हैं । और पुण्यविशेषकी उत्पत्तिवासतै जो ऋगादिकवेदोंका अध्ययन है ताका नाम स्वाध्याय है । इस स्वाध्यायकूं ही ब्रह्मयज्ञ कहैं हैं । यद्यपि पूर्व-उक्त यज्ञशब्दकरिकै पंचप्रकारके स्मार्त्तयज्ञोंका कथन संभव होइसकै है तथापि तिस स्वाध्यायविषे ब्रह्मचारीका असाधारण धर्मपणा कथन करणेवासतै श्रीभग-वान्नैं इहां स्वाध्यायका पृथक् कथन कऱ्याहै । और आगे सप्तदश अध्यायविषे कथन कऱ्या जो शारीर, वाचिक, मानसिक यह तीनप्रकारका तप है सो तीन प्रकारका तप ही इहां तपशब्दकरिकै ग्रहण करणा । सो तप वानप्रस्थका असाधारण धर्म है । इस प्रकार संन्यास, गृहस्थ, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ इन च्यारि आश्र-मोंके असाधारण कर्मोंकूं कथन करिकै अब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन च्यारिवर्णोंके असाधारणकर्मोंका कथन करैं हैं (आर्जवम् इति) तहां वक्रभावका जो परित्याग है ताका नाम आर्जव है अर्थात् श्रद्धावान् श्रोतावोंके समीप निश्चय करेहुए अर्थका जो नहीं गुह्यरखणा है ताका नाम आर्जव है ॥ १ ॥

किंच-

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम् ॥
दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) अहिंसा । सत्यम् । अक्रोधः । त्यागः । शांतिः । अपैशुनम् । दया । भूतेषु । अलोलुप्त्वम् । मार्दवम् । ह्रीः । अचापलम् ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अहिंसा सत्य अक्रोध त्याग शान्ति अपैशुन सर्वभूतोंविषे दया अलोलुप्त्व मार्दव ह्री अचापल यह सर्व दैवीसंपद्रूप हैं ॥ २ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! प्राणियोंके जीविकारूप वृत्तिका जो छेदन है ताका नाम हिंसा है ता हिंसातें जो रहितपणा है ताका नाम अहिंसा है । अर्थात् जिसजिस प्राणीका जिसजिस वृत्तितैं जीवन होता होवै तिसतिस प्राणीके तिसतिस वृत्तिका कदाचित्‌भी छेदन नहीं करणा याका नाम अहिंसा है । और अनर्थका अजनक ऐसा जो यथार्थ अर्थका बोधक वचन है तिस वचनका सर्वदा उच्चारण करणा याका नाम सत्य है । तहां जिस यथार्थ अर्थके बोधकवचनके उच्चारणतैं ब्राह्मणादिकोंकी हिंसा होतीहोवै तिसविषे सत्यताके निवृत्त करणेवासतै अनर्थका अजनक यह विशेषण कथन कऱ्या है । और अन्यप्राणियोंनैं वाणीकरिकै निरादर कियेहुए तथा ताडन कियेहुए उत्पन्नभया जो क्रोध है ता क्रोधका तिसी कालविषे जो उपशमन है ताका नाम अक्रोध है । और शास्त्रकी विधिपूर्वक सर्वकर्मोंका जो संन्यास है ताका नाम त्याग है । यद्यपि कहां दानकूंभी त्याग कहैं हैं तथपि सो दान पूर्वश्लोकविषे कथन करि आयेहैं यातैं इहां त्यागशब्दकरिकै सर्वकर्मोंका संन्यास ही ग्रहण करणा । और अंतःकरणका जो उपशम है ताका नाम शांति है । और परोक्षकालविषे अन्यपुरुषके दोषोंकूं अन्यपुरुषके आगे जो प्रगटकरणा है ताका नाम पैशुन है तिस पैशुनके अभावका नाम अपैशुन है । और दुःखीप्राणियों ऊपरि जा कृपा है ताका नाम दया है । और विषयोंके समीप प्राप्त हुएभी तथा भोगकी सामर्थ्यताके विद्यमान हुएभी जो इंद्रियोंका अविक्रियपणा है ताका नाम अलोलुप्त्व है । और क्रूरस्वभावतैं रहितपणेका नाम मार्दव है। अर्थात् व्यर्थ पूर्वपक्षादिकोंकूं करणेहारे शिष्यादिकोंके प्रतिभी अप्रियवाणीतैं रहित होइकै जो प्रियवाणीकरिकै बोधन करणा है ताका नाम मार्दव है । और नहीं करणेयोग्य कार्यविषयक प्रवृत्तिके आरंभविषे तिस प्रवृत्तिका प्रतिबंधक जा लोकलज्जा है ताका नाम ह्री है । और प्रयोजनतैं विनाभी जो वाक्, पाणि, पाद इत्यादिक इंद्रियोंके व्यापारका करणा है ताका नाम चापल है । ता चापलका जो अभाव है ताका नाम अचापल है। तहां आर्जवतैं लैके अचापलपर्यंत यह पूर्वउक्त ब्राह्मणके दैवीसंपद्रूप असाधारण धर्म हैं ॥ २ ॥

किंच-

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ॥
भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) तेजः । क्षमा । धृतिः । शौचम् । अद्रोहः । नातिमानिता । भवंति । संपदम् । दैवीम् । अभिजातस्य । भारत ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! तेज क्षमा धृति शौच अद्रोह नातिमानिता यह सर्व सत्त्वगुणमयी वासनाकूं संपादनकरिकै जन्मेहुए पुरुष प्राप्तहोवैं हैं ॥ ३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! प्रगल्भताका नाम तेज है अर्थात् स्त्रीबालकादिक मूढजनोंकरिकै जो अभिभवकूं नहीं प्राप्त होणा है ताका नाम तेज है । और सामर्थ्यके विद्यमान हुएभी जो परिभवकरणेहारे पुरुषोंऊपरि क्रोध नहीं करणा है ताका नाम क्षमा है । और व्याकुलताकूं प्राप्तहुएभी देहइंद्रियोंके स्थिरता करणेका जो प्रयत्नविशेष है जिस प्रयत्नविशेषकरिकै स्थिर करेहुए शरीर इंद्रिय व्याकुलताकूं प्राप्त होते नहीं ता प्रयत्नविशेषका नाम धृति है । यह तेज, क्षमा, धृति तीनों क्षत्रियके दैवीसंपदरूप असाधारण धर्म हैं । और धनादिक अर्थोंके संपादनादिकोंविषे जो माया अनृतआदिकोंतैं रहितपणा है ताका नाम शौच है । यह शौच अंतरका शौच ही जानणा । मृत्तिका जलादिकोंकरिकै जन्य शरीरकी शुद्धिरूप बाह्य शौचका इहां शौचशब्दकरिकै ग्रहण करा नहीं काहेतैं तिस शौचकूं शरीरकी शुद्धिरूपताकरिकै बाह्यपणा होणेतैं अंतःकरणकी वासनारूपता है नहीं । और इहां प्रसंगविषे तौ सात्त्विकादिक भेदकरिकै भिन्न अंतःकरणकी वासनावोंका ही दैवी आसुरी संपदरूपकरिकै प्रतिपादन विवक्षित है । यातैं ता शौचपदकरिकै तिस बाह्यशौचका ग्रहण करणा नहीं । और स्वाध्यायकी न्याईं जिसीकिसीरूप करिकै तिस बाह्यशौचकूंभी जो वासनारूप अंगीकार करिये तौ शौचशब्दकरिकै तिस बाह्यशौचकाभी ग्रहण करणा इति । और किसी प्राणीके हनन करणेकी इच्छा करिकै जो शस्त्रादिकोंका ग्रहण है ताका नाम द्रोह है ता द्रोहतैं जो निवृत्ति है ताका नाम अद्रोह है । यह शौच, अद्रोह दोनों वैश्यके दैवीसंपदरूप असाधारण धर्म हैं । और अत्यंत मानीपणेका नाम अतिमानिताहै अर्थात् आपणेविषे पूज्यत्व अतिशयकी जा भावना है ताका नाम अतिमानिता है । ता अतिमानिताका जो अभाव है ताका

नाम नातिमानिता है अर्थात् आपणेकरिकै पूज्य जे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीन वर्ण हैं तिन्होंके आगे जो नम्रभाव है ताका नाम नातिमानिता है । यह नातिमानिता शूद्रका दैवीसंपद्रूप असाधारण धर्म है इति । इहां (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ।) इत्यादिक श्रुतियोंनैं आत्मज्ञानके इच्छाके उपायरूपकरिकै कथनकरे असाधारणरूप तथा साधारणरूप वर्णआश्रमके धर्म हैं ते सर्व धर्मभी इहां दैवीसंपद्रूप करिकै ग्रहण करणे । इस प्रकार अभयधर्मतैं आदिलैके नातिमानिताधर्मपर्यंत तीन श्लोकोंकरिकै कथन करे जे भिन्नभिन्न वर्णआश्रमके धर्म हैं ते धर्म इस पुरुषविषे उत्पन्न होवैं हैं। तहां किसीप्रकारके पुरुषविषे ते धर्म उत्पन्न होवैंहैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (संपदं दैवीम् । अभिजातस्य इति) हे अर्जुन ! इस शरीरके आरंभकालविषे पूर्वले पुण्यकर्मोंकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्तहुआ जो शुद्धसत्त्वगुणमय वासनावोंका समूह है तिस शुभवासनावोंके समूहकूं आपणे अंतःकरणविषे प्रादुर्भावहुआ देखिकै जन्मकूं प्राप्तहुआ जो पुरुष है जिस पुरुषकूं आगे श्रेयकी प्राप्ति होणी है तिस पुरुषकूं ही यह अभयादिक धर्म प्राप्त होवैं हैं । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्रुति-(पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन ।) अर्थ यह—पूर्वपूर्वजन्मके पुण्यकर्मकी वासनाकरिकै यह पुरुष उत्तरउत्तर जन्मविषे पुण्यवान् होवैहै । और पूर्वपूर्वजन्मके पापकर्मकी वासनाकरिकै यह पुरुष उत्तरउत्तर जन्मविषे पापवान् होवैहै इति। इहां (हे भारत) इस संबोधनके कहणेकारिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या—शुद्धवंशविषे उत्पन्न होणेतैं तूं अर्जुन अत्यंत पवित्र है । यातैं तूं अर्जुन इस पूर्वउक्त दैवीसंपद्रूप धर्मोंके संपादन करणेकूं योग्य है ॥ ३ ॥

तहां पूर्व तीन श्लोकोंकरिकै ग्राह्यतारूपकरिकै दैवीसंपदकूं कथन कऱ्या । अब श्रीभगवान् परित्यागकारिकै आसुरी संपदकूं एक श्लोककरिकै संक्षेपतैं कथन करैंहैं—

दंभो दर्पोऽतिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ॥
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) दंभः । दर्पः । अतिमानः । च । क्रोधः । पारुष्यम् ।

एव । च । अज्ञानम् । च । अभिजातस्य । पार्थ । संपदम् । आसुरीम् ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! रजतमोगुणमय अशुभवासनाकूं संपादनकरिकै जन्मे-हुएपुरुषकूं दंभ दर्प तथा अतिमान क्रोध तथा पारुष्य तथा अज्ञान यह दोषही प्राप्त होवैं हैं ॥ ४ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! आपणे महानूपणेकी सिद्धिवासतै लोकोंके समीप आपणेकूं अत्यंत धर्मात्मापणेकरिकै जो प्रसिद्ध करणा है ताका नाम दंभ है। और धन, विद्या, कुल, स्वजन, रूप, कर्म इत्यादिक हैं निमित्त जिसविषे ऐसा जो श्रेष्ठपुरुषोंके अपमानकरणेका हेतुभूत गर्वविशेष है ताका नाम दर्प है। और आपणेविषे जो अत्यंत पूज्यत्वरूप अतिशयताका आरोप है ताका नाम अतिमान है। जिस अतिमानकरिकै असुर पराभवकूं प्राप्त होतेभये हैं। यह वार्त्ता (देवाश्चासुराश्चोभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे ततोऽसुरा अतिमानेनैव कस्मिन्वयं जुहुयामेति स्वेष्वेवास्येषु जुह्वतश्चेरुस्तेऽतिमानेनैव पराबभूवुस्तस्मान्नातिमन्येत पराभवस्य ह्येतन्मुखं यदतिमानः इति ।) इसप्रकार शतपथब्राह्मणविषे कथन करी है। और आपणे अनिष्टकरणेविषे तथा परके अनिष्ट करणेविषे प्रवृत्ति करावणेहारा जो अभिज्वलनरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है जिसकूं क्षोभभी कहैंहैं ताका नाम क्रोध है। और प्रत्यक्ष अत्यंत रूक्षवचनका जो उच्चारण है ताका नाम पारुष्य है। इहां (पारुष्यमेव च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार इहां नहीं कथन करेहुए जे भावरूप चपलतादिक दोष हैं तिन सर्वदोषोंके समुच्चय करावणेवासतै है। और यह कार्य हमारेकूं करणेयोग्य है यह कार्य हमारेकूं नहीं करणेयोग्य है या प्रकारका जो कर्त्तव्यविषयक विवेक है ता विवेकके अभावका नाम अज्ञानहै। इहां (अज्ञानं च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार इहां नहीं कथन करेहुए जे अभावरूप अधृतिआदिक दोष हैं तिन दोषोंकेभी समुच्चय करावणे वासतैहै। तहां ऐसे दंभादिक दोष किस पुरुषकूं प्राप्त होवैं हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—(आसुरीं संपदम् । अभिजातस्य इति ।) हे अर्जुन ! इस शरीरके आरंभकालविषे पूर्वले पापकर्मोंकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त हुआ तथा असुरपुरुषोंके प्रीतिका विषय ऐसा जो रजोगुण तमोगुणमय अशुभ वासनावोंका समूह है, तिस अशुभ वासनावोंके समूहकूं आपणे अंतःकरणविषे प्रादुर्भावहुआ देखिकै जन्मकूं

ाप्त हुआ जो पुरुष है जिस पुरुषका आगे अश्रेय होणा है ऐसे निंदित पुरुषकूं तें दंभतैं लैके अज्ञानपर्यंत सर्व दोषही प्राप्त होवैं हैं । पूर्वउक्त अभयादिक गुण तिस पुरुषकूं कदाचितभी प्राप्त होवैं नहीं । इहां (हे पार्थ) इस संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन कऱ्या । विशुद्धकुलविषे उत्पन्नहुई पृथामाताका तूं पुत्र है यातैं इस दंभदर्पादिक असुरसंपद्के तूं योग्य नहीं है इति । इहां मूलश्लोकविषे (अतिमानश्च) इस पदके स्थानविषे (अभिमानश्च) इस प्रकारका पाठ यद्यपि बहुत पुस्तकोंविषे है तथापि श्रीभाष्यकारोंनैं तथा भाष्यके व्याख्यानकर्त्ता श्रीस्वामी आनंदगिरिनैं तथा श्रीस्वामी मधुसूदननैं (अतिमानश्च) इसप्रकारके पाठकूं अंगीकार करिकै ही व्याख्यान कऱ्या है । यातैं इहां (अतिमानश्च) इसप्रकारका ही पाठ लिख्या है ॥ ४ ॥

तहां पूर्व च्यारि श्लोकोंकरिकै दैवीसंपद् तथा आसुरीसंपद् यह दोप्रकारकी संपद् कथन करी । अब अधिकारी जनोंकूं तिस दैवीसंपद्विषे प्रवृत्त करणेवासतै तथा तिस आसुरीसंपद्तैं निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् इन दोनोंसंपदोंके भिन्न भिन्न फलोंकूं कथन करैं हैं–

दैवीसंपद्विमोक्षाय निबंधायासुरी मता ॥
मा शुचः संपदं दैवीमभिजतोसि पांडव ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) दैवीसंपत् । विमोक्षाय । निबंधाय । आसुरी । मता । मा । शुचः । संपदम् । दैवीम् । अभिजातः । असि । पांडव ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दैवीसंपत् मोक्षवासतै होवैहै और आसुरीसंपत बंधकेवासतै मानीहै हे पांडव ! तूं दैवी संपद्कूं संपादनकरिकै जन्म्या है यातैं तूं मत शोककर ॥ ५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन च्यारिवर्णोंके मध्यविषे तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास इन च्यारि आश्रमोंके मध्यविषे जिसजिस वर्णके प्रति तथा जिसजिस आश्रमके प्रति वेदभगवान्नैं जाजा फलकी इच्छातैं रहित सात्त्विकी क्रिया विधान करीहै सासा क्रिया तिसीतिसी वर्णकी तथा तिसीतिसी आश्रमकी दैवीसंपत कहीजावै है । सा दैवीसंपत सत्त्वशुद्धि, भगवद्भक्ति, ज्ञानयोगव्यवस्थिति इतने पर्यंत सिद्ध हुई इस अधिकारी पुरुषकूं संसारबंधनतैं

विमोक्षवासतै ही होवैहै । अर्थात् सा दैवीसंपत् इस अधिकारी पुरुषकूं कैवल्यमोक्षकी ही प्राप्ति करै है । यातैं आपणे श्रेयकी इच्छाकरणेहारे पुरुषोंनैं सा दैवीसंपत् ही ग्रहण करणे योग्य है इति । और तिन च्यारिवर्णोंके मध्यविषे तथा तिन च्यारि आश्रमोंके मध्यविषे जिस जिस वर्णके प्रति तथा जिस जिस आश्रमके प्रति वेदभगवान्नैं जा जा फलकी इच्छापूर्वक तथा अहंकारपूर्वक राजसी तामसी क्रिया निषेध करी है सा सा निषिद्ध क्रियाही तिस तिस वर्णकी तथा तिसतिस आश्रमकी आसुरीसंपत् कही जावै है । इसी आसुरीसंपत्विषेही राक्षसी प्रकृतिका अंतर्भाव है । सा आसुरीसंपत् तौ नियमतैं संसाररूप बंधके वासतैही शास्त्रोंकूं तथा शास्त्रवेत्ता पुरुषोंकूं संमत है । अर्थात् सर्वशास्त्र सर्वशास्त्रवेत्ता पुरुष तिस आसुरीसंपत्कूं वारंवार जन्ममरणरूप संसारबंधकाही कारण कहैं हैं । यातैं श्रेयके प्राप्तिकी इच्छावान् अधिकारी पुरुषोंनैं सा आसुरीसंपत् अवश्यकरिकै परित्याग करणे योग्य है । तहां मैं अर्जुन दैवीसंपत्करिकै युक्त हूं अथवा आसुरीसंपत्करिकै युक्त हूं इस प्रकारके संशययुक्त अर्जुनके प्रति श्रीभगवान् धैर्य देवैं हैं (माशुचः इति) हे अर्जुन ! मैं अर्जुन आसुरीसंपत्करिकै युक्त हूं इसप्रकारकी शंकाकरिकै तूं शोककूं मत प्राप्त होउ । जिस कारणतैं तूं अर्जुनभी इस शरीरके आरंभकालविषे पूर्वले पुण्यकर्मोंकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त हुई सात्त्विकी शुभवासनावोंकूं आपणे अंतःकरणविषे प्रादुर्भाव हुआ देखिकैही इस जन्मकूं प्राप्त हुआ है । अर्थात् इस जन्मतैं पूर्वभी तुमनैं कल्याणकाही संपादन कर्‍याहै और आगेभी तुम्हारा कल्याणही होणा है इस कारणतैं आपणेविषे आसुरीसंपत्की शंकाकरिकै तुम्हारेकूं शोक करणा उचित नहीं है इति । इहां (हे पांडव) इस संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कर्‍या । जबी पांडुराजाके दूसरे पुत्रोंविषेभी सा दैवीसंपत् प्रसिद्धही देखणेविषे आवै है तबी मैं परमेश्वरके अनन्यभक्त तैं अर्जुनविषे सा दैवीसंपत् है याकेविषे क्या कहणा है ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! राक्षसी प्रकृतिका तौ आसुरीसंपत्विषे अंतर्भाव होवौ । काहेतैं शास्त्रनिषिद्ध क्रियाकी अभिमुखता आसुरीसंपत्विषे तथा राक्षसी प्रकृतिविषे तुल्य ही है । और किसीस्थलविषे आसुरीसंपत् राक्षसीप्रकृति इन दोनोंका जो भिन्न भिन्न कथन कर्‍या है सोभी विषयभोगकी प्रधानताकरिकै तथा जीवहिंसाकी प्रधानताकरिकै संभव होइसकै है । परंतु दैवीसंपत् आसुरीसंपत् इन दोनोंतैं भिन्न

तीसरी मानुषी प्रकृति तौ जुदीही है। काहेतैं श्रुतिविषे सा मानुषी प्रकृति जुदीही कथन करी है। तहां श्रुति-(त्रयाः प्राजापत्याः प्रजापतौ पितारि ब्रह्मचर्यमूषुर्देवा मनुष्या असुरा इति ।) अर्थ यह-प्रजापतितैं उत्पन्नहुए देवता, मनुष्य, असुर यह तीनों तिस प्रजापतिपिताके समीप ब्रह्मचर्यकूं करते भये। यातैं सा तीसरी मानुषी प्रकृतिभी आसुरीसंपत्की न्याईं हेयकोटिविषे कही चाहिये। अथवा दैवीसंपत्की न्याईं उपादेयकोटिविषे कही चाहिये। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ॥
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) द्वौ । भूतसर्गौ । लोके । अस्मिन् । दैवः । आसुरः । एव । च । दैवः । विस्तरशः । प्रोक्तः । आसुरम् । पार्थ । मे । शृणु ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! इस लोकविषे दोप्रकारके ही भूतसर्ग हैं एकतौ दैवसर्ग है और दूसरा आसुरसर्ग है तहां दैवसर्ग तौ हमनैं तुम्हारेप्रति पूर्व विस्तारतैं कथन कऱ्या है अब दूसरे आसुरसर्गकूं तूं हमारेतैं श्रवणकर ॥ ६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! इस संसारविषे दो प्रकारके ही भूतसर्ग हैं अर्थात् दो प्रकारकी ही मनुष्योंकी सृष्टि है। तहां ते दोप्रकारके सर्ग कौन हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। (दैव आसुर एव च) हे अर्जुन ! एक तौ देवसर्ग है और दूसरा आसुरसर्ग है। इन दोनों सर्गोंतैं भिन्न तीसरा कोई राक्षससर्ग अथवा मनुष्यसर्ग है नहीं। तहां जो मनुष्य जिस कालविषे शास्त्रजन्य संस्कारोंकी प्रबलताकरिकै स्वभावसिद्ध रागद्वेषकूं अभिभवकरिकै केवल धर्मपरायण ही होवैहै सो मनुष्य तिस कालविषे देव कह्याजावै है। और जो मनुष्य जिस कालविषे स्वभावसिद्ध रागद्वेषकी प्रबलताकरिकै शास्त्रजन्य संस्कारोंकूं अभिभवकरिकै केवल अधर्मपरायण ही होवैहै सो मनुष्य तिस कालविषे असुर कह्या जावैहै । इस रीतिसैं दोप्रकारका ही मनुष्यसर्ग सिद्ध होवैहै। जिस कारणतैं धर्म अधर्म इन दोनोंतैं भिन्न तीसरी कोई कोटि है नहीं किंतु लोकविषे तथा वेदविषे धर्म अधर्म यह दो कोटि ही प्रसिद्ध हैं। तहां दोप्रकारका ही भूत-

सर्ग है यह वार्त्ता श्रुतिविषे भी कथन करीहै। तहां श्रुति-(द्वयाहप्राजापत्या देवाश्चासुराश्च ततः कनीयसा एव देवाज्यायसा असुराः ।)अर्थ यह-प्रजापतितैं उत्पन्न हुए दोप्रकारके ही भूतसर्ग हैं एक तौ देव हैं दूसरे असुर हैं। तहां असुरोंतैं देवता छोटे हैं। और देवतावोंतैं असुर बडे हैं इति। और दम, दान, दया इन तीनोंका विरोध करणेहारा जो (त्रयाः प्राजापत्याः) इत्यादिक वाक्य हैं तिन वाक्योंविषे तौ दम, दान दया इन तीनोंतैं रहित मनुष्य ही असुरभाववाले हुए किसी समानधर्मकरिकै देव कहेजावैंहैं, तथा मनुष्य कहे जावैंहैं, तथा असुर कहेजावैंहैं। यातैं तिस वाक्यतैं तीसरे भूतसर्गकी सिद्धि होवै नहीं। तहां तिस प्रसंगविषे प्रजापतिनैं एक ही दम इस अक्षरकरिकै दमतैं रहित मनुष्योंके प्रति तौ इंद्रियोंका निग्रहरूप दमका उपदेश कऱ्या है। और दानतैं रहित मनुष्योंके प्रति तौ दानका उपदेश कऱ्या है। और दयातैं रहित मनुष्योंके प्रति तौ दयाका उपदेश कऱ्याहै। इस प्रकार एक मनुष्यत्वजातिवाले मनुष्योंके प्रति ही प्रजापतिनैं अधिकारभेदतैं दम, दान, दया इन तीनोंका उपदेश कऱ्याहै। कोई तिस वचनविषे परस्पर विजातीय देव, असुर, मनुष्य यह तीनों विवक्षित नहीं हैं जिस कारणतैं शास्त्रके उपदेशका मनुष्य ही अधिकारी होवैहै। देवता तथा असुर शास्त्रउपदेशके अधिकारी होवैं नहीं। यातैं यह अर्थ सिद्धभया-राक्षसी प्रकृति तथा मानुषी प्रकृति यह दोनों प्रकृतियां आसुरीसंपत्‌विषे ही अंतर्भूत हैं ता आसुरीसंपत्‌तैं ते दोनों भिन्न नहीं हैं। यातैं देवसर्ग आसुरसर्ग यह दोप्रकारके ही भूतसर्ग हैं यह जो पूर्व वचन कह्याथा सो युक्त ही है इति। हे अर्जुन! तिन दोप्रकारके भूतसर्गोंविषे प्रथम जो दैवभूतसर्ग है सो दैवभूतसर्ग तौ हमनैं तुम्हारे प्रति पूर्व विस्तारतैं कथन कऱ्या है। तहां द्वितीय अध्यायविषे तौ स्थितप्रज्ञपुरुषके लक्षणविषे सो दैवभूतसर्ग कथन करयाहै। और द्वादश अध्याविषे तौ भगवद्भक्तके लक्षणविषे सो दैवभूतसर्ग कथन करयाहै। और त्रयोदश अध्यायविषे तौ ज्ञानके लक्षणविषे सो दैवसर्ग कथन करयाहै। और चतुर्दश अध्यायविषे तो गुणातीतपुरुषके लक्षणविषे सो दैवसर्ग कथन करयाहै। और इस षोडश अध्यायविषे तौ (अभयं सत्त्वसंशुद्धिः) इत्यादिक वचनोंकरिकै सो दैवसर्ग कथन करया है। अब दूसरे आसुरभूत सर्गकूं मैं विस्तारतैं प्रतिपादन करताहूं। तिसकूं तूं श्रवण कर अर्थात् तिस असुरभूतसर्गके परित्याग करणेवासतै प्रथम तिस आसुरभूत

ंकूं तूं निश्चय कर । काहेतैं जिस अनिष्टपदार्थका भलीप्रकारतैं ज्ञान होवैहै सो निष्टपदार्थ ही परित्याग करया जावै है। तिस पदार्थके स्वरूप जानेतैं विना- स पदार्थका परित्याग करयाजावै नहीं इति । तहां (हे पार्थ) इस संबोध- करिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे आपणा संबंधीपणा कथन करया । ताकरिकै र्जुनविषयक उपेक्षाका अभाव सूचन करया अर्थात् मैं परमेश्वर कदाचित्भी म्हारी उपेक्षा नहीं करोंगा ॥ ६ ॥

अब (तानहं द्विषतः क्रूरान्) इस श्लोकतैं पूर्वस्थित द्वादश श्लोकोंकरिकै ीभगवान् परित्याग करणेयोग्य आसुरी संपद्कूं प्राणियोंका विशेषणरूप करिकै थन करैं हैं—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ॥
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) प्रवृत्तिम् । च । निवृत्तिम् । च । जनाः । न । विदुः । आसुराः । न । शौचम् । न । अपि । च । आचारः । न । सत्यम् । ेषु । विद्यते ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! असुरस्वभाववाले मनुष्य धर्मकूं तथा अधर्मकूं नहीं जानतेहैं इसकारणतैंही तिनआसुरमनुष्योंविषे शौच नहीं रहैहै तथा आचार भी नहीं रहैहै तथा सत्य भी नहीं रहैहै ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! दंभदर्पादिरूप असुरस्वभाववाले मनुष्य प्रवृत्तिकूंभी जानते नहीं अर्थात् प्रवृत्तिका विषयभूत जो धर्म है तिस धर्मकूंभी ते आसुर मनुष्य जानते नहीं । इहां (प्रवृत्तिं च) इस वचनविषे स्थित जो चकर है ता चकारकरिकै तिस धर्मके प्रतिपादक विधिवाक्यका ग्रहण करणा अर्थात् ता धर्मके प्रतिपादक विधिवाक्यकूंभी ते आसुरमनुष्य जानते नहीं । तथा ते आसुरमनुष्य निवृत्तिकूं भी जानते नहीं अर्थात् निवृत्तिका विषयभूत जो अधर्म है तिस अधर्मकूंभी ते आसुसर मनुष्य जानते नहीं । इहां (निवृत्तिं च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै तिस अधर्मके प्रतिपादक निषेधवाक्यका ग्रहण करणा । अर्थात् ता अधर्मके प्रतिपादक निषेधवाक्यकूंभी ते आसुरमनुष्य जानते नहीं । इसीकारणतैं ही तिन आसुरमनुष्योंविषे बाह्यशौच तथा

अंतरशौच यह दोप्रकारका शौचभी नहीं रहैहै। तहां जल मृत्तिकादिकोंकारिकै जा शरीरकी शुद्धि है ताका नाम बाह्यशौच है । और मैत्री करुणादिकोंकारिकै जो रागद्वेषादिकोंतैं रहितपणा है ताका नाम अंतरशौच है। और मनुआदिक श्रेष्ठपुरुषोंनैं धर्मशास्त्रविषे कथन करचा जो आचार है सो आचारभी तिन आसुरमनुष्योंविषे रहता नहीं । तथा प्रिय हित यथार्थ भाषणरूप जो सत्य है, सो सत्यभी तिन आसुरपुरुषोंविषे रहता नहीं। ऐसे शौचतैं रहित तथा आचारतैं रहित तथा मिथ्यावादी मायावी आसुरमनुष्य इस लोकविषे भी प्रसिद्धही हैं ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! प्रवृत्तिका विषयभूत जो धर्म है तथा निवृत्तिका विषयभूत जो धर्म है तिन धर्म अधर्म दोनोंका प्रतिपादक वेदरूप प्रमाण विद्यमान ही है। कैसा है सो वेदरूप प्रमाण–भ्रम प्रमाद आदिक सर्व दोषोंतैं रहित है तथा साक्षात् परमेश्वर-की आज्ञारूप है तथा सर्वलोकोंविषे प्रसिद्ध है। और तिस वेदके अनुसारी स्मृति पुराण इतिहास आदिकभी तिस धर्म अधर्मके प्रतिपादक विद्यमानही हैं। ऐसे प्रमाण-भूत वेदोंके तथा स्मृति पुराण इतिहास आदिकोंके विद्यमान हुएभी तिन असुर पुरुषोंकूं तिस धर्मअधर्मका अज्ञान तथा ताके प्रमाणका अज्ञान किसकारणतैं होवै ? और तिन पुरुषोंकूं ता धर्मअधर्मके तथा ताके बोधकप्रमाणके ज्ञान हुए वेद-रूप आज्ञाके उल्लंघन करणेहारे पुरुषोंकूं शासन करणेहारे परमेश्वरके विद्यमानहुए तिन पुरुषोंकूं वेदउक्त अर्थका न अनुष्ठानकारिकै शौच आचारादिकोंतैं रहितपणाभी किसकारणतैं होवैहै जिसकारणतैं दुष्टजनोंकूं शासना करणेहारा परमेश्वरभी लोक-विषे तथा वेदविषे प्रसिद्धिही है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं–

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ॥
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) असत्यम् । अप्रतिष्ठम् । ते । जगत् । आहुः । अनीश्वरम् । अपरस्परसंभूतम् । किम् । अन्यत् । कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ते आसुरपुरुष इस जगत्कूं असत्य अप्रतिष्ठ अनीश्वर अपरस्परसंभूत कामहैतुक कहैं हैं इसजगत्का दूसरा कोई कारण नहींहै ॥ ८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! ते आसुरपुरुष इस जगत्कूं असत्य कहैं हैं। तहां प्रत्यक्षा-दिक प्रमाणोंकारिकै नहीं बाधकूं प्राप्तहुआ है तात्पर्यका विषय जिसका ऐसा जो तत्त्व-

वस्तुका बोधक वेदरूप प्रमाण है तथा तिस वेदरूपप्रमाणके अनुसारी जे स्मृति, पुराण इतिहास आदिक हैं तिन्होंका नाम सत्य है ऐसा सत्य नहीं है वियमान जिसविषे ताका नाम असत्य है। ऐसा असत्यरूप इस जगत्कूं कहैंहैं। यद्यपि ऋगादिक च्यारि वेद तथा मनुस्मृति आदिक स्मृतियां तथा भागवतादिक अष्टादश पुराण तथा महाभारतादिक इतिहास प्रत्यक्षप्रमाणकरिकै सिद्ध हैं तिन प्रत्यक्षसिद्ध वेदादिकोंका निषेधकरणा संभवता नहीं तथापि ते आसुरपुरुष तिन वेदोंकी तथा स्मृति, पुराण इतिहास आदिकोंकी प्रमाणताकूं अंगीकार करते नहीं। यातैं प्रमाणतारूप विशेषणके अभावतैं तिस प्रमाणताविशिष्ट वेदादिकोंका अभाव कथन कऱ्या है। और असत्य होणेतैंही इस जगत्कूं ते आसुरपुरुष अप्रतिष्ठ कहैं हैं। तहां नहीं है धर्मअधर्मरूप प्रतिष्ठा व्यवस्थाका हेतु जिसका ताका नाम अप्रतिष्ठ है अर्थात् ते आसुरपुरुष धर्मअधर्मकूं इस जगतके व्यवस्थाका हेतु मानते नहीं। तथा ते आसुरपुरुष इस जगत्कूं अनीश्वर कहैंहैं। तहां शुभअशुभ कर्मके सुखदुःखरूप फलके देणेविषे नहीं है ईश्वर नियंता जिसका ताका नाम अनीश्वर है। ऐसा अनीश्वर इस जगत्कूं कहैं हैं। तात्पर्य यह—बलवान् पापरूप प्रतिबंधके वशतैं ते आसुरपुरुष वेदोंकूं तथा स्मृति, पुराण, इतिहासादिकोंकूं प्रमाणरूप मानते नहीं। इसी कारणतैं ही ते आसुरपुरुष तिन वेद स्मृति आदिकोंकरिकै बोधित धर्मअधर्मकूं तथा ईश्वरकूं अंगीकार करते नहीं। इसी कारणतैं ही ते आसुरपुरुष निर्भय होइकै निषिद्ध आचरणकूं ही करैंहैं। ता निषिद्ध आचरणकरिकै ते आसुरपुरुष धर्मरूप पुरुषार्थतैं तथा मोक्षरूप पुरुषार्थतैं भ्रष्टही होवैं हैं इति। शंका—हे भगवन्! केवल शास्त्रप्रमाणकरिकै जानणेयोग्य जो धर्मअधर्म है ता धर्मअधर्मकी सहायताकरिकै इस सर्वजगत्का कारणरूप जो प्रकृतिका अधिष्ठाता परमेश्वर है ता कारणरूप परमेश्वरतैं रहित इस जगत्कूं ते आसुर पुरुष जो अंगीकार करैंगे तौ कारणके अभावहुए तिस जगत्रूप कार्यकी उत्पत्ति तिनोंके मतविषे कैसे होवैगी? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (अपरस्परसंभूतम् इति।) हे अर्जुन! ते आसुर पुरुष इस जगत्कूं ईश्वरतैं उत्पन्नहुआ मानते नहीं किंतु इस जगत्कूं अपरस्परसंभूत मानैं हैं अर्थात् विषयसुखकी अभिलाषारूप कामनैं प्रेरणा कऱ्या ही पुरुष है तथा स्त्री है। तिस पुरुष स्त्री दोनोंके संयोगतैं ही यह जगत् उत्पन्न हुआहै। यातैं यह जगत् कामहैतुक है अर्थात् इस जगत्का सो काम ही कारण है। ता कामतैं भिन्न दूसरा कोई इस

जगत्का कारण है नहीं । शंका—हे भगवन् ! इस जगत्की उत्पत्तिविषे धर्मअधर्मकूंभी कारण मान्या चाहिये। काहेतैं जो कदाचित धर्मअधर्मकूं इस जगत्का कारण नहीं मानिये तौ इस जगत्विषे कोई प्राणी दुःखी है कोई प्राणी सुखी है कोई प्राणी मूर्ख है कोई प्राणी पंडित है इस प्रकारकी व्यवस्था नहीं होवैगी । और धर्मअधर्मकूं इस जगत्का कारण मानणेविषे सा व्यवस्था सिद्ध होइसकैहै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (किमन्यत् इति ।) हे अर्जुन ! ते आसुरपुरुष धर्मअधर्मरूप अदृष्टकूं इस जगत्का कारण मानते नहीं । काहेतैं धर्मअधर्मरूप अदृष्टके अंगीकार कियेहुए अंतविषे स्वभावविषे ही परिअवसान होवैगा । ता स्वभावकरिकै ही इस जगतविषे सुखदुःखादिकोंकी विचित्रता संभव होइसकैहै । ता विचित्रताके वासतै धर्मअधर्मरूप अदृष्टकी कल्पना काहेवासतै करणी । और शास्त्रविषेभी यह नियम कह्याहै । (दृष्टे संभवति अदृष्टकल्पनाया अन्यायत्वात् ।) अर्थ यह—कार्यकी उत्पत्तिविषे दृष्टकारणके संभवहुए अदृष्टकारणकी कल्पना करणी अयुक्त है इति । यातैं यह अर्थ सिद्धभया—काम ही सर्वप्राणियोंका कारण है । तिस कामतैं भिन्न दूसरा कोई धर्म अधर्मरूप अदृष्ट तथा ईश्वरादिक इस जगत्का कारण है नहीं । इसप्रकार ते आसुरपुरुष इस जगत्कूं केवल कामहेतुकही कहैंहैं । यह पूर्वउक्त दृष्टि देहात्मवादी लोकायतिक पुरुषोंकी कथन करी है ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! यह पूर्वउक्त लोकायतिक पुरुषोंकी दृष्टिभी शास्त्रीयदृष्टिकी न्याईं इष्टरूपही होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए मुमुक्षुजनोंकूं तिस दृष्टितैं निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् ता दृष्टिविषे अनिष्टरूपताकूं कथन करैंहैं—

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ॥
प्रभवंत्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) एताम् । दृष्टिम् । अवष्टभ्य । नष्टात्मानः । अल्पबुद्धयः । प्रभवंति । उग्रकर्माणः । क्षयाय । जगतः । अहिताः ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस पूर्वउक्त दृष्टिकूं आश्रयणकरिकै ते नष्टात्मा अल्पबुद्धि उग्रकर्मवाले शत्रुपुरुष सर्वप्राणियोंके नाशकरणेवासतै व्याघ्रसर्पादिरूपकरिकै उत्पन्नहोवैं हैं ॥ ९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! इस पूर्व श्लोकविषे कथन करी जा लोकायतिक पुरुषोंकी दृष्टि है तिस दृष्टिकूं आश्रयकरिकै ते आसुरपुरुष नष्टात्मा होवैंहैं । तहां काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादिरूप रजतमदोषकरिकै नष्टहुआ है क्या आवृत हुआ है आत्मा क्या विवेकबुद्धि जिन्होंकी तिन्होंका नाम नष्टात्मा है अर्थात् ते आसुरपुरुष परलोकके साधनोंतैं भ्रष्टहुए हैं । पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष–अल्पबुद्धि हैं तहां अत्यंत तुच्छ जे स्रक्, चंदन, वनिता इत्यादिक विषयोंके भोग हैं तिन्होंका नाम अल्प है ऐसे विषयभोगरूप अल्पविषे है बुद्धि जिन्होंकी तिन्होंका नाम अल्पबुद्धि है । अथवा मल, मांस, रुधिर, अस्थि, मज्जा इत्यादिक निंदितपदार्थोंका समूहरूप जो यह देह है ताका नाम अल्प है । ऐसे अल्पदेहविषे है अहंबुद्धि जिन्होंकी तिनोंका नाम अल्पबुद्धि है । अर्थात् दृष्टविषयसुखमात्रका उद्देशकरि प्रवृत्त हुई है बुद्धि जिन्होंकी तिनोंका नाम अल्पबुद्धि है । पुनः कैसे हैं ते आसुर-पुरुष–उग्रकर्मा हैं । तहां उग्र हैं क्या अत्यंत क्रूर हैं कर्म जिन्होंके तिन्होंका नाम उग्रकर्मा है अर्थात् देहमात्रका पोषण है प्रयोजन जिन्होंका तथा जीवोंकी हिंसा है प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे शास्त्रनिषिद्धकर्म हैं तिन शास्त्रनिषिद्धकर्मोंकूं ही ते आसुरपुरुष सर्वदा करैं हैं । पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष–अहित हैं अर्थात् अपकारकियेतैं विनाही सर्वप्राणीमात्रके शत्रु हैं । इस प्रकार पूर्वउक्त लोकायतिक पुरुषोंकी दृष्टिकूं आश्रयणकरिकै नष्टात्मा हुए तथा अल्पबुद्धि हुए तथा उग्रकर्मा हुए तथा शत्रु हुए ते आसुरपुरुष सर्वप्राणीमात्रके नाशकरणेवास्ते व्याघ्रसर्पादिक-रूपकरिकै उत्पन्न होवैं हैं । यातैं यह पूर्वश्लोकउक्त लोकायतिक पुरुषोंकी दृष्टि ही अत्यंत अधोगतिका हेतु है । इस कारणतैं श्रेयकी इच्छावान् पुरुषोंनैं सर्वप्रकार करिकै सा दृष्टि परित्याग करणे योग्य है ॥ ९ ॥

इसप्रकार व्याघ्रसर्पादिक तामसी योनियोंविषे बहुतकालपर्यंत भ्रमण करते हुए ते आसुरपुरुष जबी किसी कर्मके वशतैं पुनः मनुष्ययोनिकूं प्राप्त होवैं हैं तबी भी ते आसुरपुरुष आपणे श्रेयके उपायविषे प्रवृत्त होवैं नहीं किंतु अश्रेयके उपाय-विषेही प्रवृत्त होवैं हैं इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं–

काममाश्रित्य दुष्पूरं दंभमानमदान्विताः ॥
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्त्ततेऽशुचिव्रताः ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) कामम् । आश्रित्य । दुष्पूरम् । दंभमानमदान्विताः । मोहात् । गृहीत्वा । असद्ग्राहान् । प्रवर्तंते । अशुचिव्रताः ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दुष्पूर कामकूं आश्रयणकरिकै दंभमानमदकरिकै युक्तहुए तथा अशुचिव्रतवालेहुए ते आसुरपुरुष अविवेकतैं अशुभनिश्चयोंकूं ग्रहणकरिकै वेदविरुद्धकर्मोंविषेही प्रवृत्त होवैं हैं ॥ १० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! शतकोटि वर्षपर्यंतभी विषयोंके भोगकरिकै नहीं पूर्ण होणेहारा ऐसा जो तिस तिस दृष्टविषयोंकी अभिलाषारूप काम है ऐसे दुष्पूर कामकूं आश्रयण करिकै ते आसुरपुरुष दंभ, मान, मद इन तीनोंकरिकै युक्त होवैं हैं । तहां अनंतरतैं धर्मनिष्ठातैं रहित होइकैभी जो बाह्यतैं लोकोंके आगे आपणा धर्मात्मापणा प्रगट करणा है ताका नाम दंभ है। और वास्तवतैं पूज्यभावके अयोग्य हुएभी जो लोकोंके आगे आपणा पूज्यपणा प्रगट करणा है ताका नाम मान है । और वास्तवतैं आपणेविषे अधिकता नहीं हुएभी जो अधिकताका आरोपण है ताका नाम मद है । जो मद श्रेष्ठपुरुषोंके अपमान करणेका हेतुरूप है। ऐसे दंभ, मान, मद तीनोंकरिकै युक्त हुए ते आसुरपुरुष केवल अविवेकतैं असत्ग्राहोंकूं ग्रहण करिकै अर्थात् इस मंत्रकरिकै इस देवताकूं आराधनकरिकै हम इन स्त्रियोंका आर्कषण करैंगे । तथा इस मंत्रकरिकै इस देवताकूं आराधन करिकै हम महान्निधियोंकूं संपादन करैंगे । तथा इस मंत्रकरिकै इस देवताकूं आराधन करिकै हम इस शत्रुकूं मारैंगे इत्यादिक दुराग्रहरूप अशुभनिश्चयोंकूं केवल अविवेकरूप मोहतैं ग्रहणकरिकै ते आसुरपुरुष अशुचिव्रत होवैं हैं । तहां श्मशानादिक देश तथा उच्छिष्टत्वादिक अवस्था तथा मद्यमांसादिकोंका भक्षण इत्यादिक अशौचकी अपेक्षाकरिकै सिद्ध होणेहारे जे वामतंत्रउक्त व्रत हैं ते अशुचिव्रत हैं जिन्होंके तिन्होंका नाम अशुचिव्रत है । ऐसे अशुचिव्रत हुए ते आसुरपुरुष केवल दृष्टफलकी प्राप्ति करणेहारे क्षुद्रदेवताओंका आराधनरूप जिसीकिसी वेदविरुद्ध कर्मविषेही प्रवृत्त होवैं हैं । ऐसे आसुरपुरुष मरिकै अशुचि नरकविषे पतन होवैं हैं। इस प्रकारतैं इस श्लोकका (पतंति नरकेऽशुचौ) इस वक्ष्यमाण वचनके साथि अन्वय करणा ॥ १० ॥

अब श्रीभगवान् इन पूर्वउक्त आसुरपुरुषोंकूं ही पुनः आसुरी संपद्रूप अनेक विशेषणोंकरिकै कथन करैहैं–

चिंतामपरिमेयां च प्रलयांतामुपाश्रिताः ॥
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) चिंताम् । अपरिमेयाम् । च । प्रलयांताम् । उपाश्रिताः । कामोपभोगपरमाः । एतावत् । इति । निश्चिताः ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तथा मरणपर्यंत स्थित अपरिमित चिंताकूं जिन्होंनैं आश्रयण कऱ्याहै तथा शब्दादिकविषयोंका भोगही है परमपुरुषार्थ जिन्होंकूं तथा इह विषयजन्यदृष्टही सुख है तिसप्रकारहै निश्चय जिन्होंका ॥ ११ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! अप्राप्तवस्तुकी प्राप्तिरूप जो योग है तथा प्राप्तवस्तुका परिरक्षणरूप जो क्षेम है तिस आपणे योगक्षेमके उपायका चिंतनरूप जा चिंता है कैसी है सा चिंता–अपरिमेय है अर्थात् असंख्यात पदार्थविषयक होणेतैं सा चिंताभी असंख्याता है सा चिंता इतनी संख्यावाली है इस प्रकारतैं निश्चय करणेकूं अशक्य है । पुनः कैसी है सा चिंता–प्रलयांता है । इहां मरणका नाम प्रलय है, सो मरणरूप प्रलय है अंत जिसका ताका नाम प्रलयांता है अर्थात् जीवितकालपर्यंत वर्त्तमान है । ऐसी अपरिमेय तथा प्रलयांत चिंताकूं ते आसुरपुरुष आश्रयण करैं हैं । इहां (चिंतामपरिमेयां च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार पूर्वउक्त अशुचिव्रतके समुच्चय करावणेवासतै है । अर्थात् ते आसुरपुरुष केवल अशुचिव्रतवाले हुए तिन वेदविरुद्ध कर्मोंविषे प्रवृत्त होते नहीं किंतु इस प्रकारकी चिंताकूं आश्रयण करतेहुएभी ते आसुरपुरुष तिन वेदविरुद्धकर्मोंविषे प्रवृत्त होवैंहैं इति । हे अर्जुन ! ते आसुरपुरुष सर्वकालविषे अनंत चिंतावोंकरिकै युक्त हुएभी कदाचित्भी परलोककी चिंताकरिकै युक्त होते नहीं । किंतु ते आसुरपुरुष कामोपभोगपरमाही होवैं हैं । तहां कृपण पुरुषोंके कामनाका विषयभूत जे शब्दस्पर्शादिक दृष्टविषय हैं तिन्होंका नाम काम है तिन शब्दादिक विषयरूप कामोंका उपभोग हैपरम क्या पुरुषार्थ जिन्होंकूं, धर्मादिक जिन्होंकूं पुरुषार्थरूप हैं नहीं तिन्होंका नाम कामोपभोगपरमा है । अर्थात् ते आसुरपुरुष इस लोकके स्रक्, चंदन, वनिता आदिक विषयोंके भोगकूं ही परमपुरुषार्थरूप करिकै मानैं हैं । धर्मकूं तथा मोक्षकूं पुरुषार्थरूप मानते नहीं । शंका–हे भगवन् ! ते आसुरपुरुष जैसे इसलोकके विषयजन्यसुखकी कामना करैं हैं तैसे परलोकके उत्तमसु-

खकी कामना किसवासतै नहीं करते हैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (एतावदिति निश्चिताः ।) तहां इसलोकविषे शब्दस्पर्शादिक विषयोंके भोगतैं जन्य जो दृष्टसुख है सोईही सुख है इस दृष्टसुखतैं भिन्न इस शरीरके वियोग हुएतैं अनंतर भोगणेयोग्य दूसरा कोई सुख है नहीं । काहेतैं इस स्थूलशरीरतैं भिन्न दूसरा कोई भोक्ता है नहीं जो भोक्ता परलोकविषे जाइकै तिस सुखकूं भोगै किंतु यह स्थूलशरीर ही भोक्ता आत्माहै । इसप्रकारके निश्चयवाले हुए ते आसुरपुरुष परलोकके सुखकी कामना करते नहीं। यह आसुरपुरुषोंका मत बृहस्पतिनैंभी कथन कऱ्याहै । तहां सूत्र-(चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः । काम एवैकः पुरुषार्थः ।) अर्थ यह-चैतन्यरूप धर्मकरिकै विशिष्ट जो यह स्थूलशरीर है सो स्थूलशरीर ही आत्मा है । और इस लोकके स्रक्चंदनवनितादिक विषयोंका भोगही परमपुरुषार्थ है इति । यद्यपि बृहस्पति वैदिकपुरुष है तथापि असुरोंके मोहकरणेवासतै तिस बृहस्पतिनैं इस प्रकारके सूत्र रचे हैं । याकारणतैं ही वैदिकपुरुष तिन सूत्रोंकूं प्रमाणरूप मानते नहीं ॥ ११ ॥

किंच-

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ॥
ईहते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) आशापाशशतैः । बद्धाः । कामक्रोधपरायणाः । ईहंते । कामभोगार्थम् । अन्यायेन । अर्थसंचयान् ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! आशारूपपाशोंके समूहकरिकै बाँधेहुए तथा काम क्रोध दोनों हैं आश्रय जिन्होंके ऐसे ते आसुरपुरुष विषयभोगवासतैही अन्याय करिकै धनादिकपदार्थोंकूं इंच्छते हैं ॥ १२ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! जिस वस्तुके प्राप्तिका उपाय करणेकूं अशक्य है तिस वस्तुके प्राप्तिकी जा प्रार्थना है ताका नाम आशा है । अथवा जिस वस्तुके प्राप्तिका उपाय आपणेकूं ज्ञात नहीं है तिस वस्तुके प्राप्तिकी जा प्रार्थना है ताका नाम आशा है । ते आशा ही लोकप्रसिद्ध पाशकी न्याईं इस पुरुषके बंधनका हेतु होणेतैं पाशरूप है । ऐसे आशारूप पाशोंके अनेक शतोंकरिकै अर्थात् अनेक समूहोंकरिकै ते आसुरपुरुष बाँध्येहुए हैं । अर्थात् जैसे लोकप्रसिद्ध रज्जुआदिक

पाशोंकरिकै बांध्येहुए चौरादिक दुष्टपुरुष तिन रज्जु आदिक पाशोंनैं आपणे गृहादिक स्थानोंतैं निकासिकै जहां तहां भ्रमण कराइते हैं तैसे आशारूप पाशोंकरिकै बांध्येहुए यह आसुरपुरुषभी तिन आशारूप पाशोंनैं श्रेयरूप स्वस्थानतैं निकासिकै जहां तहां भ्रमण कराइते हैं पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष—कामक्रोधपरायण हैं। तहां काम क्रोध यह दोनों हैं पर अयन क्या आश्रय जिन्होंका तिन्होंका नाम कामक्रोधपरायण है अर्थात् परस्त्रियोंके संभोगकी अभिलाषाकरिकै तथा परके अनिष्ट करणेकी अभिलाषा करिकै ते आसुरपुरुष सर्वदा युक्त हैं। ऐसे आसुरपुरुष केवल स्रक्, चंदन, वनिता आदिक विषयोंके भोगवास्तै ही धनादिक पदार्थोंके इकट्ठे करणेकी इच्छा करैं हैं कोई धर्मके वास्तै ते आसुरपुरुष धनादिक पदार्थोंके इकट्ठे करणेकी इच्छा करते नहीं। और ते आसुरपुरुष विषयभोगवास्तै जो धनके इकट्ठे करणेकी इच्छा करैं हैं सोभी शास्त्रउक्तमार्गकरिकै ता धनके इकट्ठे करणेकी इच्छा करते नहीं। किंतु केवल अन्यायकरिकै ही ता धनके इकट्ठे करणेकी इच्छा करैंहैं। तहां छलकपटकरिकै अथवा बलात्कारसैं जो परके धनका हरण करणा है ताका नाम अन्याय है अर्थात् शास्त्रतैं विरुद्ध मार्गकरिकै जो धनका संपादन करणा है ताका नाम अन्याय है। इहां (अर्थसंचयान्) इस बहुवचनकरिकै श्रीभगवान्नै तिन आसुरपुरुषोंविषे लोभ दिखाया काहेतैं तिन आसुरपुरुषोंकूं धनकी प्राप्ति हुएभी तिस धनकी तृष्णा निवृत्त होती नहीं किंतु सा धनकी तृष्णा दिनदिनविषे वृद्धिकूं प्राप्त होती जावैहै। और धनादिक विषयोंके प्राप्तहुएभी जो दिनदिनविषे तिन विषयोंके तृष्णाकी वृद्धि है तिसकूं ही शास्त्रविषे तथा लोकविषे लोभ कहैं हैं ॥ १२ ॥

हे भगवन् ! तिन आसुरपुरुषोंके चित्तविषे इस प्रकारकी धनकी तृष्णा है यह वार्त्ता कैसे जानीजावैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन आसुरपुरुषोंके इस प्रकारकी धनकी तृष्णाकूं तिन आसुरपुरुषोंके मनोराज्योंके कथन करिकै वर्णन करैंहैं—

इदमद्य मयालब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ॥
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) इदम् । अद्य । मया । लब्धम् । इमम् । प्राप्स्ये । मनोरथम् । इदम् । अस्ति । इदम् । अपि । मे । भविष्यति । पुनः । धनम् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) यह धन इसकालविषे हमनैं पायाहै इस मनोरथकूं मैं शीघ्रही प्राप्त होऊंगा तथा यह धन हमारेगृहविषे पूर्वही विद्यमान है तथा यह धन भी अगले वर्षविषे पुनः बहुत होवैगा ॥ १३ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! ते आसुरपुरुष निरंतर धनकी तृष्णाकरिकै युक्त हैं इस कारणतैं ही ते आसुरपुरुष इस प्रकारके मनोराज्योंकू करैं हैं। यह धन हमनैं अबी इस उपायकरिकै पाया है और इस धनतैं अन्य दूसरेभी मनकी तुष्टि करणेहारे धनकूं मैं अबी शीघ्रही प्राप्त होवौंगा और यह धन हमारे गृहविषे पूर्व ही इकट्ठा कऱ्या हुआ है सो यह धनभी इस उपायकरिकै अगले वर्षविषे पुनः बहुत होवैगा । इस प्रकार धनकी तृष्णाकरिकै युक्तहुए ते आसुरपुरुष अशुचि नरकविषे पतन होवैंहैं । इस प्रकारतैं इस श्लोकका (पतंति नरकेऽशुचौ) इस वक्ष्यमाणवचनके साथि अन्वय करणा ॥ १३ ॥

इसप्रकार तिन आसुरपुरुषोंके तृष्णारूप लोभका वर्णन करिकै अब तिन आसुरपुरुषोंके अभिप्रायके कथनकरिकै तिन आसुरपुरुषोंके क्रोधकाभी वर्णन करैं हैं-

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ॥
ईश्वरोहमहं भोगी सिद्धोहं बलवान्सुखी ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) असौ । मया । हतः । शत्रुः । हनिष्ये । च । अपरान् । अपि । ईश्वरः । अहम् । अहम् । भोगी । सिद्धः । अहम् । बलवान् । सुखी ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हमनैं यह शत्रु हननकऱ्या है तथा दूसरे शत्रुवोंकूं भी मैं हननकरूंगा मैं ईश्वरहूं तथा मैं भोगीहूं तथा मैं सिद्ध हूं तथा बलवान् हूं तथा सुखी हूं ॥ १४ ॥

भा० टी०-अत्यंत दुर्जय जो यह देवदत्तनामा हमारा शत्रु था सो यह शत्रु हमनैं हनन कऱ्या है । यातैं अबी मैं विनाही आयासतैं दूसरेभी सर्वशत्रुवोंकूं हनन करूंगा हमारेतैं कोईभी शत्रु जीवनकूं प्राप्त होवैगा नहीं । इहां (हनिष्ये च) इस

वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै यह अभिप्राय सूचन कऱ्या— तिन शत्रुवोंकूं मैं केवल हननही नहीं करूंगा किंतु तिन शत्रुवोंके धनदारादिक पदार्थोंकूंभी मैं हरण करूंगा इति। शंका—तुम्हारे तुल्य अथवा तुम्हारेतैंभी अधिक दूसरे शत्रु विद्यमान हैं, यातैं सर्वशत्रुवोंके नाशकरणेका सामर्थ्य तुम्हारेविषे किस हेतुतैं है ? ऐसी शंकाके हुए ते आसुरपुरुष कहैं हैं—(ईश्वरोहमिति) मैं ईश्वर हूं केवल मनुष्य नहीं हूं। जिस मनुष्यपणेकारिकै हमारे तुल्य अथवा हमारेतैं अधिक कोई पुरुष होवै यह अत्यंत तुच्छबलवाले दीनजन हमारी क्या हानि करैंगे सर्वप्रकारतैं हमारे तुल्य कोईभी प्राणी नहीं है। इस अभिप्रायकरिकै ते आसुरपुरुष आपणे ईश्वरपणेकूं वर्णन करैं हैं (अहं भोगी इति) जिस कारणतैं मैंही भोगी हूं अर्थात् विषयभोगोंके सर्वसाधनोंकारिकै मैं ही युक्त हूं तथा मैं ही सिद्ध हूं अर्थात् भ्राता पुत्र भृत्य इत्यादिक सहायकारिकै मैं ही संपन्न हूं तथा स्वतःभी मैं बलवान् हूं अर्थात् अत्यंत ओजसवाला हूं तथा मैं ही सुखी हूं अर्थात् सर्वप्रकारतैं नीरोग हूं इस कारणतैं मैं ईश्वरही हूं ॥ १४ ॥

धनकारिकै अथवा कुलकारिकै कोई पुरुष तुम्हारे तुल्य होवैगा। ऐसी शंकाके हुए ते आसुरपुरुष कहैं हैं—

आढ्योभिजनवानस्मि कोन्योस्ति सदृशो मया ॥
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) आढ्यः[1]। अभिजनवान्[2]। अस्मि[3]। कः[4]। अन्यः[5]। अस्ति[6]। सदृशः[7]। मया[8]। यक्ष्ये[9]। दास्यामि[10]। मोदिष्ये[11]। इति[12]। अज्ञानविमोहिताः[13] ॥ १५ ॥

(पदार्थः) धनवान्[1] तथा कुलवान्[2] मैंहीहूं[3] यातैं हमारे[8] सदृश[7] दूसरा[5] कौन[4]है[6] मैं यागकूं[9] करूंगा तथा दानकूं[10] करूंगा तिसतैं हर्षकूं[11] प्राप्त होवूंगा इस प्रकार[12] ते आसुरपुरुष अविवेककारिकै[13] मोहित होवैं हैं ॥ १५ ॥

भा० टी०—इस लोकविषे मैंही धनवान् हूं तथा कुलीनभी मैंही हूं इस कारणतैं इसलोकविषे धनकारिकै तथा कुलकारिकै हमारे समान दूसरा कौन है किंतु हमारे समान दूसरा कोईभी पुरुष धनवान् तथा कुलवान् नहीं है। शंका—धनकारिकै तथा कुलकारिकै तुम्हारे तुल्य कोई मतहोवौ तौभी यागकारिकै तथा दानकारिकै तुम्हारे

तुल्य कोई होवैगा। ऐसी शंकाके हुए ते आसुरपुरुष कहैं हैं—(यक्ष्ये दास्यामि इति) मैं आपणी प्रतिष्ठाके वासतै इस प्रकारके महान् यागकूं करौंगा तिस यागकरिकैभी मैं दूसरे सर्वयागकरणेहारे पुरुषोंकूं अभिभव करौंगा । यातैं यागकरिकैभी हमारे तुल्य कोई है नहीं। और हमारी स्तुति करणेहारे जे नट भाट नर्त्तकी आदिक हैं तिन नटादिकोंके ताईं मैं बहुत धन देवूंगा तिस धनके देणेतैं मैं नर्त्तकी आदि-कोंके साथि बहुतहर्षकूं प्राप्त होवूंगा । यातैं दानकरिकैभी हमारे तुल्य कोई है नहीं । इस प्रकारतैं ते आसुरपुरुष अविवेकरूप अज्ञानकरिकै मोहित होवैं हैं अर्थात् तिस अविवेकरूप अज्ञाननैं ते आसुरपुरुष भ्रमकी परंपरारूप विविधप्रकारके मोहकूं प्राप्त करीते हैं ॥ १५ ॥

अनेकचित्तविभ्रांता मोहजालसमावृताः ॥
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतंति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) अनेकचित्तविभ्रांताः । मोहजालसमावृताः । प्रसक्ताः । कामभोगेषु । पतंति । नरके । अशुचौ ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अनेक दुष्टसंकल्पोंकरिकै विभ्रांतहुए तथा मोहरूप जालकरिकै आवृतहुए तथा विषयभोगोंविषे अत्यंत आसक्तहुए ते आसुरपुरुष अशुचि नरकविषे पतन होवैं हैं ॥ १६ ॥

भा० टी०— हे अर्जुन ! पूर्वकथनकरे जे अनेकप्रकारके चित्तके दुष्टसंकल्प हैं तिन अनेक चित्तके दुष्टसंकल्पोंकरिकै विविधप्रकारकी भ्रांति हुई है जिन्होंकूं तिन्होंका नाम अनेकचित्तविभ्रांत है । अथवा नहीं है एकवस्तु चिंतनका विषय जिसका ताका नाम अनेक है। अनेक है क्या पूर्वउक्त बहुतविषयोंविषे संलग्न है चित्त जिन्होंका तिन्होंका नाम अनेकचित्त है । और यह कार्य आदिविषे करणेयोग्य है अथवा यह कार्य आदिविषे करणे अयोग्य है इस प्रकार विशेषकरिकै जे पुरुष भ्रांतिकरिकै युक्त हैं तिन्होंका नाम विभ्रांत है। अनेक चित्त होवैं तेही विभ्रांत होवैं तिन्होंका नाम अनेकचित्तविभ्रांत है । अब ता भ्रांतिकी प्राप्तिविषे हेतु कहैं हैं— (मोहजालसमावृताः इति ।) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं ते आसुरपुरुष मोहरूप जा-लकरिकै आवृत हुएहैं तिस कारणतैं ते आसुरपुरुष पूर्वउक्त अनेक दुष्टसंकल्पोंकरि-

के विविधप्रकारकी भ्रांतिकूं प्राप्त होवैं हैं। तहां यह वस्तु हमारे हितका साधन है और यह वस्तु हमारे अहितका साधन है इसप्रकारके हितअहित विवेकका जो असामर्थ्य है ताका नाम मोह है। सो मोहही आवरणरूपताकरिकै बंधनका हेतु होणेतैं लोकप्रसिद्ध जालकी न्याईं जालरूप है। ऐसे मोहरूप जालकरिकै ते आसुरपुरुष सम्यक् आवृत हुएहैं अर्थात् तिस मोहरूपजालनैं ते आसुरपुरुष सर्व ओरतैं वेष्टन करैं हैं। तात्पर्य यह—जैसे लोकप्रसिद्ध सूत्रमय जालनैं मत्स्यादिक जंतु परवश करीते हैं तैसे तिस मोहरूप जालनैं ते आसुरपुरुष परवश करैं हैं इसी कारणतैं ही ते आसुरपुरुष आपणे अनिष्टके साधनरूपभी विषयभोगोंविषे प्रसक्त हुए हैं अर्थात् सर्वप्रकारकरिकै तिन विषयभोगोंविषेही अत्यंत आसक्त हुए हैं तिस विषयभोगोंकी आसक्तिकरिकै क्षणक्षणविषे पापोंकूं संचय करतेहुए ते आसुरपुरुष अशुचिनरकविषे पतन होवैं हैं। अर्थात् विष्ठा, श्लेष्म, रुधिर इत्यादिक मलिनपदार्थोंकरिकै पूर्ण जे वैतरणी आदिक नरक हैं तिन नरकोंविषे ही ते आसुरपुरुष पतन होवैं हैं ॥ १६ ॥

हे भगवन्! तिस आसुरपुरुषोंके मध्यविषेभी कितनेक आसुरपुरुषोंकी यागादिक कर्मोंविषे प्रवृत्ति देखणेमैं आवै है यातैं तिन आसुरपुरुषोंका नरकविषे पतन कहणा अयुक्त है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ॥
यजंते नामयज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) आत्मसंभाविताः। स्तब्धाः। धनमानमदान्विताः। यजंते। नामयज्ञैः। ते। दंभेन। अविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! आत्मसंभावित तथा स्तब्ध तथा धनमानमदकरिकै युक्त ते आसुरपुरुष नाममात्रयज्ञोंकरिकै अविधिपूर्वक दंभकरिकै यजन करैं हैं ॥ १७ ॥

भा० टी०— हे अर्जुन! पुनः कैसे हैं ते आसुररपुरुष—आत्मसंभावित हैं अर्थात् हम सर्वगुणोंकरिकै युक्त होणेतैं अत्यंत श्रेष्ठ हैं इस प्रकार आपणेआपकरिकै ही पूज्यताकूं प्राप्तहुए हैं किसी श्रेष्ठपुरुषोंकरिकै पूज्यताकूं प्राप्त हुए नहीं। अथवा आपणे स्त्रीपुत्रादिकोंकरिकै ही ते आसुरपुरुष पूज्यताकूं प्राप्तहुए हैं किसी श्रेष्ठपुरुषकरिकै पूज्यताकूं प्राप्तहुए नहीं। पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष—स्तब्ध हैं अर्थात

नम्रभावतैं रहित हैं। ता नम्रताके अभावविषे हेतु कहैं हैं–(धनमानमदान्विताः इति) तहां सुवर्ण, पशु, अन्न, गृह, भूमि इत्यादिकोंका नाम धन है। सो धन है निमित्त जिसविषे ऐसा जो आपणेविषे पूज्यत्वरूप अतिशयताका अध्यास है ताका नाम मान है। सो मान है निमित्त जिसविषे ऐसा जो आपणेतैं भिन्न आपणे गुरुआदिकोंविषे भी अपूज्यत्वका अभिमान है ताका नाम मद है। ऐसे धननिमित्तक मानकारिकै तथा माननिमित्तक मदकारिकै युक्त हुए ते आसुरपुरुष नामयज्ञोंकारिकै यजन करैं हैं। तहां जे यज्ञ केवल नाममात्रकारिकै ही यज्ञरूप होवैं वास्तवतैं यज्ञरूप होवैं नहीं तिन यज्ञोंका नाम नामयज्ञ है। अथवा जे यज्ञ कर्त्तापुरुषविषे दीक्षित सोमयाजी इत्यादिक नाममात्रके ही संपादक होवैं हैं किसी धर्मके संपादक होते नहीं तिन यज्ञोंका नाम नामयज्ञ है। ऐसे नाममात्र यज्ञोंकूंभी ते आसुरपुरुष विधिपूर्वक करते नहीं किंतु अविधिपूर्वकही करैं हैं। अर्थात् वेदनैं विधान करे जे द्रव्य, देवता, मंत्र, दक्षिणा इत्यादिक यज्ञके अंग हैं तिन अंगोंकी संपूर्णतापूर्वक ते आसुरपुरुष तिन यज्ञोंकूं करते नहीं। ऐसे यज्ञोंकूंभी ते आसुरपुरुष कोई श्रद्धापूर्वक करते नहीं किंतु दंभकारिकै करतेहैं। तहां अंतरतैं धर्मनिष्ठातैं रहित होइकैभी बाह्यतैं लोकोंके आगे आपणा धर्मात्मापणा प्रगटकरणा याका नाम दंभ है। ऐसे दंभकारिकै ते आसुरपुरुष यज्ञोंकूं करैं हैं इस कारणतैं ते आसुरपुरुष तिन यज्ञोंके फलोंकूं प्राप्त होते नहीं ॥ १७ ॥

तहां (यक्ष्ये दास्यामि) इस वचनकारिकै कथन कऱ्या जो दंभ अहंकारादिक हैं प्रधान जिसविषे ऐसा संकल्प है तिस संकल्पकारिकै प्रवृत्त हुए तिन आसुरपुरुषोंके बहिरंगसाधनरूप यागदानादिक कर्मभी सिद्ध होते नहीं तौ विचार, वैराग्य, भगवद्भक्ति इत्यादिक अंतरंगसाधन तिन आसुरपुरुषोंके कैसे सिद्ध होवैंगे ? किंतु ते अंतरंगसाधन तिन्होंके कदाचित्भी सिद्ध नहीं होवैंगे। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं–

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ॥
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) अहंकारम् । बलम् । दर्पम् । कामम् । क्रोधम् । च संश्रिताः । माम् । आत्मपरदेहेषु । प्रद्विषंतः । अभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अहंकारकूं तथा बलकूं तथा दर्पकूं तथा कामकूं तथा क्रोधकूं आश्रयणकरणेहारे तथा आपणेदेह परदेहोंविषे स्थित मैं परमेश्वरका द्वेषकरणेहारे तथा असूयादोषवाले ते आसुरपुरुष नरकविषेही पडैं हैं ॥ १८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अहं अभिमानरूप जो अहंकार है सो अहंकार तौ सर्वप्राणियोंविषे साधारण है । यातैं सो साधारण अहंकार इहां अहंकारशब्दकरिकै ग्रहण करणा नहीं किंतु जे गुण आपणेविषे हैं नहीं तिन गुणोंका आपणेविषे आरोपणकरिकै तिन आरोपित गुणोंकरिकै जो आपणे महान्पणेका अभिमान है ताका नाम अहंकार है । इसप्रकार शरीरविषे कार्य करणेका सामर्थ्यरूप जो बल है सो बल तौ सर्व प्राणियोंविषे साधारण है । यातैं सो साधारण बल इहां बलशब्दकरिकै ग्रहण करणा नहीं किंतु अन्यप्राणियोंके पराभव करणेवासतै जो शरीरविषे स्थित सामर्थ्यविशेष है ताका नाम बल है । और अन्यप्राणियोंकी अवज्ञारूप तथा गुरु राजादिक महान् पुरुषोंके उल्लंघन करणेका कारणरूप ऐसा जो चित्तका दोषविशेष है ताका नाम दर्प है । और इष्टवस्तुविषयक जा अभिलाषा है ताका नाम काम है । और अनिष्टवस्तुविषयक जो द्वेष है ताका नाम क्रोध है । इहां (क्रोधं च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है तिस चकारकरिकै परगुणोंके नहीं सहनकरणेका स्वभावरूप मात्सर्यका तथा अन्यभी महान् दोषोंका ग्रहण करणा । ऐसे अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध, मात्सर्य इत्यादिक महान् दोषोंकूं ते आसुरपुरुष सर्वदा आश्रयण करैंहैं इसकारणतैं ते आसुरपुरुष नरकविषे ही पडैं हैं । शंका—हे भगवन् ! इस प्रकारके पतितभी ते आसुरपुरुष आप परमेश्वरकी भक्तिकरिकै पावन हुए नरकविषे नहीं पडैंगे । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन आसुरपुरुषोंविषे भगवद्भक्तिका असंभव कथन करैंहैं—(मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतः इति) इहां देहशब्दका आत्माशब्दके अंतविषे तथा परशब्दके अंतविषे संबंध करणेतैं (मामात्मदेहेषु परदेहेषु प्रद्विषंतः) इसप्रकारका वाक्य सिद्ध होवैहै । तहां (आत्मदेहेषु) इस पदकरिकै तिन आसुरपुरुषोंके देहोंका ग्रहण करणा । और (परदेहेषु) इस पदकरिकै तिन आसुरपुरुषोंके पुत्रभार्यादिकोंके देहोंका ग्रहण करणा । यातैं (मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतः) इस वचनका यह अर्थ सिद्ध होवैहै तिन आसुरपुरुषोंके प्रेमका विषयभूत जे आपणे देह हैं तथा पुत्रभार्यादिकोंके देह हैं तिन सर्वदेहोंविषे तिन्होंके बुद्धिकर्मादिकोंका साक्षीरूपकरिकै विद्यमान

तथा निरतिशयप्रीतिका विषय ऐसा जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरविषयक द्वेषकूं ही ते आसुरपुरुष करैंहैं । तहां मैं परमेश्वरकी आज्ञारूप जो श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्र है तिस शास्त्रउक्त अर्थके अनुष्ठानतैं रहितपणेकरिकै जो तिस शास्त्ररूप आज्ञाका उल्लंघन है यहही मैं परमेश्वरविषयक द्वेष है । और इस लोकविषेभी राजादिक महान् पुरुषोंके आज्ञाकूं जो पुरुष उल्लंघन करैहै तिस पुरुषकूं तिन राजादिकोंका द्वेषी कहैंहैं । ऐसे मैं परमेश्वरके द्वेषकूं करणेहारे तिन आसुरपुरुषोंविषे मैं परमेश्वरकी भक्ति होणी अत्यंत दुर्घट है इति । शंका—हे भगवन् ! ऐसे आसुरपुरुषोंकूं आपणे गुरुआदिक महान् पुरुष क्यों नहीं शिक्षा करते ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (अभ्यसूयकाः इति) हे अर्जुन ! वेदप्रतिपादित मार्गविषे स्थित जे गुरुआदिक वृद्ध पुरुष हैं तिन गुरुआदिकोंविषे स्थित करुणादिक गुणोंविषे ते आसुरपुरुष वंचनादिक दोषोंकाही आरोपण करैं हैं ऐसे असूयादोषवाले आसुरपुरुषोंकूं तिन गुरुवोंके वचनोंविषे श्रद्धाही होती नहीं । यातैं ते गुरुभी तिन आसुरपुरुषोंकूं शिक्षा करते नहीं । इस प्रकार बहिरंगरूप तथा अंतरंगरूप सर्वसाधनोंतैं शून्यहुए ते आसुरपुरुष केवल नरकविषेही पडैंहैं इति । अथवा (मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतः) इस वचनका यह दूसरा अर्थ करणा । तहां (आत्मदेहेषु) इस पदकरिकै तिन आसुरपुरुषोंके देहोंका ग्रहण करणा । और (परदेहेषु) इस पदकरिकै पशुआदिकोंके देहोंका ग्रहण करणा ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै—तिन आसुरपुरुषोंके देहोंविषे तथा पशुआदिकोंके देहोंविषे चैतन्यअंशकरिकै स्थित जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरविषयक द्वेषकूं करतेहुए ते आसुरपुरुष यजन करैंहैं । तहां दंभपूर्वक करेहुए तिनयज्ञोंविषे तिन आसुरपुरुषोंकी श्रद्धा है नहीं । यातैं तिन श्रद्धाहीन यज्ञोंका दूसरा तौ कोई फल होवै नहीं किंतु दीक्षादिक नियमोंकरिकै तिन आसुरपुरुषोंके आत्माकूं केवल व्यर्थ ही पीडाकी प्राप्ति होवैहै । इसप्रकार पशुआदिकोंकीभी अविधिपूर्वक हिंसाकरिकै दूसरा कोई फल होवै नहीं किंतु ता हिंसाकरिकै केवल चैतन्यका द्रोहमात्रही सिद्ध होवैहै । इस रीतिसैं आपणे देहोंविषे स्थित तथा पशुआदिकोंके देहोंविषे स्थित चैतन्यरूप मैं परमेश्वरका द्वेष करतेहुए ते आसुरपुरुष यजन करैंहैं इति । अथवा (मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतः) इस वचनका यह तीसरा अर्थ करणा । इहां (आत्मदेहेषु) इस पदकरिकै परमेश्वरके लीला-

विग्रहरूप रामकृष्णादिक नामवाले देहोंका ग्रहण करणा। और (परदेहेषु) इस पदकरिकै प्रह्लाद, विभीषण इत्यादिक नामवाले भक्तजनोंके देहोंका ग्रहण करणा। ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै मैं परमेश्वरके लीलाविग्रहरूप वासुदेवादिक नामवाले देहोंविषे मनुष्यत्वबुद्धिरूप भ्रमकरिकै ते आसुरपुरुष मैं परमेश्वरविषयक द्वेषकूं करैंहैं। तथा प्रह्लाद विभीषण इत्यादिक नामोंवाले भक्तजनोंके देहोंविषे सर्वदा आविर्भावकूं प्राप्तहुआ जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरविषयक द्वेषकूं ते आसुरपुरुष करैंहैं। यह वार्त्ता पूर्व नवमअध्यायविषे (अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। परं भावमजानंतो मम भूतमहेश्वरम्॥ मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः। राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥) इन दोश्लोकोंकरिकै कथन करीथी। तथा (अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः।) इस वचनकरिकैभी पूर्व कथन करीथी इति। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। जिस मैं परमेश्वरकी भक्तिकरिकै अधिकारी जन पावन होवैं हैं तिस मैं परमेश्वरविषे ही तिन आसुरपुरुषोंका द्वेष है ऐसे द्वेषी पुरुषोंविषे मैं परमेश्वरकी भक्ति होणी अत्यंत दुर्घट है। यातैं ते आसुरपुरुष किसी प्रकारकरिकैभी पावन होते नहीं॥ १८॥

हे भगवन्! आप परमेश्वरकी कृपाकरिकै तिन आसुरपुरुषोंकाभी कदाचित् निस्तार होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए तिन आसुरपुरुषोंका कदाचितभी निस्तार होणेहारा नहीं है इस प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्॥
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥ १९॥

(पदच्छेदः) तान्। अहम्। द्विषतः। क्रूरान्। संसारेषु। नराधमान्। क्षिपामि। अजस्रम्। अशुभान्। आसुरीषु। एव। योनिषु॥ १९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! द्वेषकरणेहारे तथा क्रूर तथा नरोंविषेअधम तथा निरंतर अशुभकर्मोंकूं करणेहारे ऐसे तिनआसुरपुरुषोंकूं मैं परमेश्वर नरकजाणेके मार्गोंविषेही गेरताहूं तिसतैं अनंतर अत्यंत क्रूर व्याघ्रसर्पादिक योनियोंविषे ही गेरताहूं॥ १९॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! शास्त्रप्रतिपादित सन्मार्गके विरोधी जे आसुरपुरुष हैं कैसे हैं ते आसुरपुरुष–मैं परमेश्वरका तथा साधुजनोंका सर्वदा द्वेष करणेहारे हैं। पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष–क्रूर हैं अर्थात् सर्वदा जीवोंकी हिंसाविषे ही प्रीतिवाले हैं इसी कारणतैं ही ते आसुरपुरुष सर्वनरोंविषे अधम हैं अर्थात् अत्यंत निंदित हैं । पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष–अशुभ हैं अर्थात् निरंतर शास्त्रनिषिद्ध अशुभ कर्मोंकूं ही करणेहारे हैं। ऐसे तिन आसुरपुरुषोंकूं कर्मके फलका प्रदाता मैं परमेश्वर नरक जाणेके मार्गोंविषे ही गेरता हूं । और ते आसुरपुरुष आपणे पापकर्मोंके वशतैं तिन नरकोंविषे बहुत कालपर्यंत अनेकप्रकारके दुःखोंकूं अनुभवकरिकै जबी तिस नरकतैं आवैं हैं तबी मैं परमेश्वर तिन आसुरपुरुषोंकूं पूर्वले कर्मवासनावोंके अनुसार व्याघ्रसर्पादिक अत्यंत क्रूरयोनियोंविषे ही गेरता हूं । ऐसे मैं परमेश्वरके द्रोही तथा साधुपुरुषोंके द्रोही आसुरपुरुषों ऊपरि मैं परमेश्वरकी कदाचित्भी कृपा होती नहीं। तहां इस प्रकारके पापात्मा आसुरपुरुष नीचयोनियोंकूं ही प्राप्त होवैं हैं । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति-(अथ कपूयचरणा अभ्यासोहयत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चांडालयोनिं वा इति ।) अर्थ यह–शास्त्रनिषिद्ध पापकर्मोंकूं करणेहारे पुरुष शीघ्रही नीचयोनियोंकूं प्राप्त होवैं हैं । कभी श्वानयोनिकूं प्राप्त होवैं हैं कभी शूकरयोनिकूं प्राप्त होवैंहैं कभी चांडालयोनिकूं प्राप्त होवैं हैं इसतैं आदिलैके दूसरीभी अनेक नीचयोनियोंकूं प्राप्त होवैं हैं इति। इस प्रकार जीवोंके पूर्वपूर्वकर्मोंके अनुसार फलकी प्राप्तिकरणेहारे ईश्वरविषे विषमतादोषकी तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति होवै नहीं । यह वार्त्ता ब्रह्मसूत्रोंविषे श्रीव्यासभगवान्नैंभी कथन करी है । तहां सूत्र–(वैषम्यनैर्घृण्येन सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति।) अर्थ यह–इस लोकविषे कोई प्राणी सुखी है कोई प्राणी दुःखी है कोई प्राणी धनी है कोई प्राणी दरिद्री है कोई प्राणी पंडित है कोई प्राणी मूर्ख है । इस प्रकारके विषम जगत्की उत्पत्ति करणेहारे ईश्वरविषे विषमतादोषकी तथा निर्दयतादोषकी अवश्यकरिकै प्राप्ति होवैगी ? ऐसी शंकाके प्राप्तहुए श्रीव्यासभगवान् कहैं हैं–परमेश्वर जीवोंके पुण्यपापकर्मकी अपेक्षाकरिकै इस विषम जगत्कूं उत्पन्न करै है तिस पुण्यपापकर्मके अनुसारही कोई प्राणी सुखी होवैहै कोई प्राणी दुःखी होवै है । यातैं परमेश्वरविषे विषमतादोषकी तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति होवै नहीं । इसी प्रकारके अर्थकूं (अथ कपूयचरणाः)

इत्यादिक श्रुतियां कथन करें हैं इति। ऐसा सर्वजगतका कारणरूप सो अंतर्यामी परमेश्वर तिन आसुरपुरुषोंकूं केवल पापकर्मही करावै है पुण्यकर्म करावता नहीं। काहेतैं तिन आसुरपुरुषोंविषे केवल पापकर्मोंका ही बीज विद्यमान है पुण्यकर्मोंका बीज तिन्होंविषे है नहीं। और बीजके अनुसारही अंकुरकी उत्पत्ति होवैहै अन्य बीजतैं अन्य अंकुरकी उत्पत्ति होवै नहीं। जैसे निंबके बीजतैं निंबके अंकुरकी ही उत्पत्ति होवैहै तिस निंबके बीजतैं आम्रके अंकुरकी उत्पत्ति होवै नहीं। यद्यपि सो परमेश्वर परमकृपालु है तथापि सो परमेश्वर तिन आसुरपुरुषोंके पापोंकूं नाश करता नहीं काहेतैं तिन पापोंके नाशकरणेहारे जे पुण्यकर्म ते पुण्यकर्म तिन आसुरपुरुषोंविषे हैं नहीं यातैं सो परमेश्वर तिन आसुरपुरुषोंके पापोंकूं नाश करता नहीं। और तिन आसुरपुरुषोंविषे पुण्यकर्मोंके करणेकी योग्यता है नहीं यातैं सो परमेश्वर तिन आसुरपुरुषोंकूं पुण्यकर्मभी करावता नहीं जिन पुण्यकर्मोंकरिकै तिन्होंके पापोंका नाश होवै है। काहेतैं कार्यकी उत्पत्ति करणेविषे समर्थ हुआभी सो परमेश्वर जिस वस्तुविषे जिस कार्यकी उत्पत्तिकी योग्यता होवै है तिस वस्तुतैंही तिस कार्यकी उत्पत्ति करै है अयोग्यवस्तुतैं तिस कार्यकी उत्पत्ति करता नहीं। जैसे पाषाणोंविषे यवअंकुरकी उत्पत्तिकी योग्यता है नहीं यातैं परमेश्वर तिन पाषाणोंविषे यवअंकुरकी उत्पत्ति करता नहीं किंतु यवबीजोंविषे ही तिस यवअंकुरकी उत्पत्ति करै है। तैसे पुण्यकर्मकी उत्पत्तिके अयोग्य तिन आसुरपुरुषों-विषे सो ईश्वरभी पुण्यकर्मोंकूं उत्पन्न करता नहीं। और जो कोई वादी यह वचन कहै कार्यके करणेकूं तथा न करणेकूं तथा अन्यथा करणेकूं जो समर्थ होवै ताका नाम ईश्वर है ऐसा ईश्वर होणेतैं सो परमेश्वर पुण्यकर्मोंके अयोग्यभी तिन आसुर-पुरुषोंविषे पुण्यकर्मकी योग्यताके संपादन करणेमैं समर्थ ही है इति। सो यह कहणा यद्यपि सत्य है काहेतैं सो परमेश्वर सत्यसंकल्प है यातैं सो परमेश्वर जो कदाचित् इन आसुरपुरुषोंविषे पुण्यकर्मकी योग्यता होवै इस प्रकारका संकल्प करै तौ तिन आसुरपुरुषोंविषे पुण्यकर्मकी योग्यता होइजावै परंतु सो परमेश्वर इस प्रकारका संकल्प ही करता नहीं। काहेतैं परमेश्वरकी आज्ञारूप जो श्रुतिस्मृति-रूप शास्त्र है तिस शास्त्रका उल्लंघन करणेहारे तथा परमेश्वरके भक्तोंके द्रोही ऐसे जे ते दुरात्मा आसुरपुरुष हैं तिन आसुरपुरुषों ऊपरि तिस परमेश्वरकी प्रसन्नता है नहीं ता प्रसन्नतातैं विना सो परमेश्वर तिस संकल्पकूं कैसे करैगा? किंतु कदा-

चित्भी नहीं करैगा । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति-(एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमुन्निनीषते एष एवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते ।) अर्थ यह-यह परमेश्वर प्रसन्न होइकै जिस पुरुषकूं ऊपरिले स्वर्गादिक लोकों-विषे लेजाणेकी इच्छा करैहै तिस पुरुषकूं तौ पुण्यकर्म करावै है और यह परमेश्वर अप्रसन्न होइकै जिस पुरुषकूं नरकादिक अधोलोकोंविषे लेजाणेकी इच्छा करै है तिस पुरुषकूं तौ पापकर्म ही करावैहै इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया-परमेश्वरकी प्रसन्नताका कारणरूप जो परमेश्वरकी वेदरूप आज्ञाका पालन है सो आज्ञाका पालन जिन पुरुषोंविषे विद्यमान है तिन पुरुषोंऊपरि तौ परमेश्वरकी प्रसन्नता होवै है । और जिन पुरुषोंविषे सो परमेश्वरकी आज्ञाका पालन नहीं है तिन पुरुषों ऊपरि परमेश्वरकी प्रसन्नता होती नहीं । और कारणके विद्यमान हुए ही कार्यकी उत्पत्ति होवै है कारणके अभाव हुए कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं यह वार्त्ता लोक-विषेभी प्रसिद्ध ही है। इसविषे परमेश्वरकूं विषमता तथा निर्दयता कैसे प्राप्त होवैगी ? किंतु नहीं प्राप्त होवैगी ॥ १९ ॥

हे भगवन् ! ऐसे आसुरपुरुषोंकाभी क्रमकरिकै बहुतजन्मोंके अंतविषे श्रेय होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए ऐसे आसुरपुरुषोंका कदाचित्भी श्रेय होणेहारा नहीं है इसप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ॥
मामप्राप्यैव कौंतेय ततो यांत्यधमां गतिम् ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) आसुरीम् । योनिम् । आपन्नाः । मूढाः । जन्मनि । जन्मनि । माम् । अप्राप्य । एव । कौंतेय । ततः । यांति । अधमाम् । गतिम् ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! जे पुरुष कदाचित्भी आसुरी योनिकूं प्राप्तहुए हैं ते पुरुष जन्म जन्मविषे अविवेकी हुए वेदमार्गकूं नप्राप्तहोइकै ही तिसतैंभी अधम गतिकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २० ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जे पुरुष कदाचित्भी आसुरी योनिकूं प्राप्त हुए हैं ते पुरुष जन्मजन्मविषे मूढहुए अर्थात् तमोगुणकी बाहुल्यताकरिकै विवेकतैं शून्यहुए मेरेकूं न प्राप्त होइकै अर्थात् मैं परमेश्वरउपदिष्ट वेदमार्गकूं न प्राप्तहोइकै तिसतैंभी

अत्यंत निकृष्टगतिकूं प्राप्त होवैं हैं । इहां (मामप्राप्यैव) इस वचनके अंतविषे स्थित जो एव यह शब्द है सो एवशब्द तिर्यक्स्थावरादिक योनियोंविषे वेदमार्गके प्राप्तिकी अयोग्यताकूं बोधन करै है अर्थात् तिन तिर्यक्स्थावरादिक योनियोंविषे वेदमार्गके प्राप्तिकी योग्यताही नहीं है यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। अत्यंत तमोगुणकी बाहुल्यताकरिकै ते आसुरपुरुष वेदमार्गकी प्राप्तिके अयोग्य होइकै पूर्वपूर्व निकृष्ट योनियोंतैं उत्तरउत्तर अत्यंत निकृष्ट अधमयोनियोंकूं प्राप्त होवैं हैं । जैसे व्याघ्रयोनितैं सर्पयोनि निकृष्ट है तिस सर्पयोनितैंभी कीटपतंगादिक योनि निकृष्ट है तिस कीटपतंगादिक योनितैंभी वृक्षादिक योनि निकृष्ट है इति । इहां यद्यपि (मामप्राप्य) इस वचनविषे स्थित मां इस पदकरिकै परमेश्वररूप अर्थकी ही प्रतीति होवैहै तथापि मां इस पदकरिकै परमेश्वरका ग्रहण करणा नहीं किं तु मां इस पदकरिकै परमेश्वरउपदिष्ट वेदमार्गका ही ग्रहण करणा । काहेतैं जिस वस्तुविषे जो अर्थ किसीभी प्रकारकरिकै प्राप्त होवैहै तिस वस्तुविषे ही तिस अर्थका निषेध होवैहै सर्वप्रकारतैं अप्राप्त अर्थका निषेध होता नहीं । और तिन आसुरपुरुषोंविषे परमेश्वरके प्राप्तिकी कोई शंकामात्रभी होती नहीं । जिस परमेश्वरकी प्राप्तिका (अप्राप्य) इस शब्दकरिकै निषेध होवै । यद्यपि तिन आसुरपुरुषोंविषे वेदमार्गकीभी प्राप्ति संभवती नहीं तथापि तिन आसुरपुरुषोंविषे वेदमार्गके प्राप्तिकी शंकामात्र कदाचित् होइसकैहै तिस वेदमार्गके प्राप्तिका ही (अप्राप्य) यह शब्द निषेध करैहै। यातैं मां इस पदकी लक्षणावृत्तितैं परमेश्वरउपदिष्ट वेदमार्गका ग्रहण करणा उचित है इति । और किसी टीकाविषे तौ मां इस पदकी लक्षणावृत्तिकरिकै परमेश्वरके प्राप्तिका साधनरूप अधिकारी मनुष्यदेहका ग्रहण कऱ्याहै इति । यातैं इस श्लोकका यह समुदाय अर्थ सिद्ध होवैहै । जिस कारणतैं एकवारभी आसुरीयोनिकूं प्राप्तहुए पुरुषोंकूं तिसतैं उत्तरउत्तर निकृष्टतर तथा निकृष्टतम योनियोंकीही प्राप्ति होवैहै । और अत्यंत तमोगुणकी बाहुल्यताकरिकै तिन आसुरपुरुषोंकूं तिन निकृष्टयोनियोंके निवृत्तकरणेका सामर्थ्य होवै नहीं । तिस कारणतैं जितनैं कालपर्यंत अधिकारी मनुष्यदेहकी प्राप्ति है तितनैं कालपर्यंत महान् प्रयत्नकरिकै परमनिकृष्ट आसुरी संपदावोंके निवृत्त करणेवासतै शीघ्रही इन श्रेयकी इच्छावान् पुरुषोंनैं यथाशक्तिपरिमाण दैवी संपदावोंका संपादन करणा । जो कदाचित् तिन आसुरी संपदावोंके निवृत्त करणेवासतै यह पुरुष दैवीसंपदावों-

का संपादन नहीं करैगा तौ तिन आसुरीसंपदावोंके वशतैं व्याघ्रसर्पादिक नीचदेहोंके प्राप्त हुएतैं अनंतर श्रेयसाधनोंके अनुष्ठान करणेविषे अयोग्य होणेतैं इस पुरुषोंका कदाचित्भी निस्तार नहीं होवैगा। इस प्रकार सो पुरुष महान्संकटोंकूं प्राप्त होवैगा। यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै। तहां श्लोक—(इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः। गत्वा निरौषधं स्थानं सरुजः किं करिष्यति ॥) अर्थ यह—आसुरीसंपत्रूप निमित्तकरिकै उत्पन्न होणेहारी जा नरकरूप व्याधि है तिस नरकरूप व्याधिकी निवृत्तिकरणेहारी दैवीसंपदरूप चिकित्साकूं जो पुरुष इस अधिकारी मनुष्यशरीरविषे नहीं करैहै सो रोगीपुरुष दैवीसंपद्रूप औषधतैं रहित स्थानविषे जाइकै तिन नरकरूप व्याधिके निवृत्त करणेवासतै क्या उपाय करैगा। किंतु तहां कोईभी उपाय नहीं करैगा ॥ २० ॥

हे भगवन् ! (दंभो दर्पोऽतिमानश्च) इत्यादिक वचनोंकारिकै पूर्व आपनैं कथन करी जा आसुरसंपत् है सा आसुरसंपत् अनेकप्रकारकी है यातैं सा सर्व आसुरसंपत् इस पुरुषनैं आपणे आयुष्की समाप्तिपर्यंत प्रयत्नकरिकैभी निवृत्त करणेकूं अशक्य है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस आसुरीसंपत्कूं संक्षेपकरिकै कथन करैं हैं—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ॥
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥

(पदच्छेदः) त्रिविधम् । नरकस्य । इदम् । द्वारम् । नाशनम् । आत्मनः । कामः । क्रोधः । तथा । लोभः । तस्मात् । एतत् । त्रयम् । त्यजेत् ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस पुरुषकूं अधमयोनियोंकी प्राप्तिकरणेहारा यह तीनप्रकारका नरकका द्वारहै काम क्रोध तथा लोभ तिसकारणतैं इन तीनोंकूं परित्याग करै ॥ २१ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! नरककी प्राप्तिका यह तीनप्रकारकाही द्वार कहिये साधन है सो यह तीन प्रकारका द्वारही पूर्वउक्त सर्व आसुरसंपत्का मूलभूत है तथा आत्माके नाशकरणेहारा है अर्थात् धर्ममोक्षादिक सर्वपुरुषार्थोंकी अयोग्यताकूं संपादनकरिकै इन पुरुषोंकूं अत्यंत अधमयोनियोंकी प्राप्ति करणेहारा है।

तहां सो तीनप्रकारका नरकका द्वार कौन है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (कामः क्रोधस्तथा लोभः इति।) हे अर्जुन ! काम, क्रोध, लोभ यह तीनोंही इस पुरुषकूं नरककी प्राप्ति करणेहारे हैं। तथा व्याघ्र, सर्प, कीट, पतंग, वृक्ष इत्यादिक अत्यंत अधमयोनियोंकी प्राप्ति करणेहारे हैं। और इन तीनोंके प्राप्तहुएतैं अनंतरही इस पुरुषकूं ते सर्व आसुरसंपत्तियां प्राप्त होवैं हैं। हे अर्जुन ! जिसकारणतैं काम, क्रोध, लोभ यह तीनोंही इस पुरुषकूं सर्व अनर्थोंके मूलभूत हैं तिस कारणतैं यह अधिकारी पुरुष इन तीनोंका अवश्यकरिकै परित्याग करै। इन तीनोंके परित्यागकरिकै ही पूर्वउक्त सर्वही आसुरसंपत् परित्याग करी जावैहै। तहां चित्तविषे उत्पन्नहुए काम, क्रोध, लोभका जो अनर्थविषे प्रवृत्तिरूप कार्य है ता कार्यका विवेककरिकै जो प्रतिबंध है तथा तिसतैं अनंतर तिन कामादिकोंकी जो नहीं उत्पत्ति है यहही तिन कामादिक तीनोंका परित्याग है। तहां काम, क्रोध, लोभ इन तीनोंका स्वरूप इसी अध्यायविषे पूर्व कथन करि आये हैं ॥ २१ ॥

हे भगवन् ! काम, क्रोध, लोभ इन तीनोंके त्याग करणेहारे पुरुषकूं कौन फल प्राप्त होवै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ॥
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ २२॥

(पदच्छेदः) एतैः। विमुक्तः। कौंतेय। तमोद्वारैः। त्रिभिः। नरः। आचरति। आत्मनः। श्रेयः। ततः। याति। पराम्। गतिम् ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय। नरकके द्वारभूत इन काम क्रोध लोभ तीनोंनैं परित्याग कऱ्याहुआ यह पुरुष आपणे श्रेयकूंही सिद्धकरैहै तिसतैं परम गतिकूं प्राप्त होवैहै ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! नरकके प्राप्तिका साधनभूत तथा अत्यंत अधमयोनियोंके प्राप्तिका साधनभूत जे काम, क्रोध, लोभ यह तीन हैं इन तीनोंतैं रहित हुआ यह पुरुष आपणे श्रेयकूंही सिद्ध करैहै। अर्थात् इस अधिकारी पुरुषके प्रति वेद भगवान्नैं हितरूपकरिकै विधान कऱ्ये जे भगवत्भजनादिक अर्थ हैं तिन अर्थों-

कूंही सो पुरुष अनुष्ठान करै है । हे अर्जुन ! इन काम, क्रोध, लोभ तीनोंके परित्यागतैं पूर्व तिन कामादिकोंकरिकै प्रतिबद्धहुआ यह पुरुष आपणे श्रेयकूं सिद्ध करता नहीं । जिस करिकै इस पुरुषकूं मोक्षरूप पुरुषार्थकी प्राप्ति होवै। उलटा यह पुरुष आपणे अश्रेयकूंही संपादन करैहै जिसकरिकै इस पुरुषका नरकविषेही पतन होवैहै । और अभी तिस कामक्रोधादिरूप प्रतिबंधतैं रहित हुआ यह पुरुष आपणे आश्रयकूं संपादन करता नहीं किंतु अभी आपणे श्रेयकूंही संपादन करै है । तिस श्रेयके संपादनतैं इस लोकके सुखकूं अनुभव करिकै अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा आत्मज्ञानकी प्राप्तिद्वारा मोक्षरूप परमगतिकूंही प्राप्त होवै है । यातैं मोक्षकी इच्छावान् अधिकारी पुरुषोंनैं यह कामादिक तीनों अवश्यकरिकै परित्याग करणे ॥ २२ ॥

जिस कारणतैं अश्रेयके नहीं आचरण करणेका तथा श्रेयके आचरण करणेका केवल शास्त्रही निमित्त है काहेतैं अश्रेयका नहीं आचरण तथा श्रेयका आचरण यह दोनों केवल शास्त्रप्रमाणकरिकै ही जान्येजावैं हैं अन्य किसी प्रमाणकरिकै जान्ये जाते नहीं । तिसकारणतैं तिस शास्त्रका परित्याग करिकै आपणी इच्छापूर्वक वर्त्तणेहारा पुरुष किसीभी पुरुषार्थकूं प्राप्त होता नहीं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः ॥
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) यः । शास्त्रविधिम् । उत्सृज्य । वर्त्तते । कामकारतः । नं । सः । सिद्धिम् । अवाप्नोति । न । सुखम् । न । पराम् । गतिम् ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष शास्त्रविधिकूं परित्याग करिकै आपणी इच्छामात्रतैं वर्तता है सो पुरुष अंतःकरणके शुद्धिकूंभी नहीं प्राप्त होवै है तथा इस लोकके सुखकूंभी नहीं प्राप्त होवैहै तथा स्वर्गमोक्षरूप उत्कृष्ट गतिकूंभी नहीं प्राप्तहोवैहै ॥ २३ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! अधिकारी जनोंके प्रति अपूर्व अर्थका बोधन करीता है जिसनैं ताका नाम शास्त्र है। ऐसे शास्त्ररूप ऋगादिक च्यारि वेद हैं तथा तिन वेदोंके

अनुसारी स्मृति, पुराण, इतिहास, सूत्र इत्यादिकभी शास्त्ररूपही हैं। तिन शास्त्रोंकी जा विधि है अर्थात् इस अधिकारी पुरुषनैं यह कार्य करणा यह कार्य नहीं करणा इसप्रकारके कर्त्तव्य अकर्तव्यज्ञानके हेतुभूत जे प्रवर्त्तक निवर्तक विधिनिषेध वचन हैं तहां (अहरहः संध्यामुपासीत।) अर्थ यह—यह त्रैवर्णिक पुरुष दिनदिनविषे संध्याकूं करैं इत्यादिक वचन तौ विधिवचन कहेजावैं हैं। और (परदारान्न गच्छेत्।) अर्थ यह—यह पुरुष परस्त्रीके साथि मैथुन नहीं करै इत्यादिकवचन निषेधवचन कहेजावैं हैं। ऐसे शास्त्रविधिकूं जो पुरुष अश्रद्धातैं परित्याग करिकै आपणी इच्छामात्रतैं वर्त्तता है अर्थात् जो पुरुष शास्त्रविहितभी कर्मकूं करता नहीं तथा शास्त्रनिषिद्धभी कर्मकूं करता है सो शास्त्रविधिके परित्याग करणेहारा पुरुष पुरुषार्थके प्राप्तिकी योग्यतारूप अंतःकरणकी शुद्धिके कर्मोंकूं करताहुआभी प्राप्त होता नहीं। तथा सो पुरुष इसलोकके सुखकूंभी प्राप्त होता नहीं। तथा सो पुरुष स्वर्गरूप उत्कृष्टगतिकूं अथवा मोक्षरूप उत्कृष्टगतिकूंभी प्राप्त होता नहीं किंतु सो शास्त्रके विधिका उल्लंघन करणेहारा पुरुष सर्व पुरुषार्थोंतैं भ्रष्टही होवै है इति। इहां (शास्त्रविधिम्) इस वचनविषे जो भगवान्नैं विधि यह शब्द कथन कन्या है सो तिन विधिनिषेधवचनोंतैं अतिरिक्त प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मके प्रतिपादक जे तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मि इत्यादिक वेदांतवचन हैं ते वचनभी शास्त्ररूपही हैं इस अर्थके सूचन करणेवासतै कथन कन्या है ॥ २३ ॥

जिस कारणतैं शास्त्रतैं विमुख होइकै आपणी इच्छापूर्वक प्रवर्त्त होणेहारे पुरुष सर्व पुरुषार्थोंतैं भ्रष्ट होवैं हैं तिसकारणतैं इन अधिकारी पुरुषोंनैं शास्त्रकी विधिकारिकै ही कर्मोंकूं करणा। इस अर्थकूं कथन करताहुआ श्रीभगवान् इस षोडश अध्यायका उपसंहार करैंहैं—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । शास्त्रम् । प्रमाणम् । ते । कार्य
व्यवस्थितौ । ज्ञात्वा । शास्त्रविधानोक्तम् । कर्म । कर्तुम्
अर्हसि ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसंकारणतैं तैं अर्जुनकूं कार्यअकार्यकी व्य
विषेही शास्त्रही प्रमाण है यातैं इसकर्मके अधिकारभूमिविषे शास्त्रविधान
कथन करेहुए कर्मकूं जानिकरिकै तूं युद्धादिक कर्मोंके करणेकूं योग्य है ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जिसकारणतैं शास्त्रविधिका परित्याग करिकै
इच्छापूर्वक वर्त्तणेहारा पुरुष इसलोकके तथा परलोकके सर्वपुरुषार्थोंके
होवै है। जिसकारणतैं श्रेयकी इच्छावान् तैं अर्जुनकूं कार्यअकार्यकी व्यवस
केवल शास्त्रही प्रमाणरूप है। अर्थात् हमारेकूं क्या करणेयोग्य है क्या नहीं
योग्य है इसप्रकारकी जा कर्त्तव्य अकर्त्तव्य अर्थकी व्यवस्था है तिस व्य
विषे श्रुति, स्मृति, पुराण इतिहासादिरूप शास्त्रप्रमाणही बोधक हैं। आपणे
तथा वृद्धादिकोंके वाक्य तिस व्यवस्थाविषे प्रमाणरूप नहीं हैं। यातैं इस
अधिकारभूमिविषे इस पुरुषनैं यह कर्म करणा यह कर्म नहीं करणा इस
प्रवर्तक निवर्तकरूप शास्त्रके विधाननैं कथन कऱ्या जो विहित प्रतिषिद्ध
तिस कर्मकूं भलीप्रकार जानिकै शास्त्रनिषिद्ध कर्मका परित्याग करिकै
अंतःकरणकी शुद्धिपर्यंत शास्त्रविहित आपणे युद्धादिक कर्मोंकेही कर
योग्य है इति। तहां इस षोडश अध्यायविषे श्रीभगवान्नैं यह अर्थ कथन
पूर्वउक्त दंभदर्पादिक सर्व आसुरसंपत्का मूलभूत तथा सर्व अश्रेयकी प्रा
हारे तथा सर्व श्रेयके प्रतिबंधक ऐसे जे काम, क्रोध, लोभ यह तीन महान्
तिन कामादिक महान् दोषोंका परित्याग करिकै श्रेयके प्राप्तिकी इच्छाव
अधिकारी पुरुषनैं अत्यंत श्रद्धापूर्वक शास्त्रके श्रवणपरायण होणा तथा
शास्त्रउपदिष्ट अर्थके अनुष्ठानपरायण होणा। यह अर्थ श्रीभगवान्नैं दै
आसुरीसंपत इन दोनों संपदावोंके भिन्नभिन्न कथन करिकै निर्णय कऱ्या।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगि
विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशाऽध्यायप्रारंभः ।

तहां कर्मके अनुष्ठान करणेहारे पुरुष तीन प्रकारके होवैंहैं । केईक पुरुष तौ शास्त्रके विधिकूं जानिकरिकै भी अश्रद्धारूप दोषतैं तिस शास्त्रविधिका परित्याग करिकै आपणी इच्छामात्रतैं यत्किंचित् कर्मोंका अनुष्ठान करैं हैं ऐसे पुरुष तौ सर्व पुरुषार्थोंके अयोग्य होणेतैं आसुर कहेजावैं हैं । और केईक पुरुष तौ शास्त्रके विधिकूं जानिकरिकै अत्यंत श्रद्धावान् होइकै तिस शास्त्रविधिके अनुसारही निषिद्धकर्मोंका परित्याग करिकै शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान करैं हैं ऐसे पुरुष तौ सर्वपुरुषार्थोंके योग्य होणेतैं देव कहेजावैं हैं । यह अर्थ पूर्व षोडश अध्यायके अंतविषे निर्णय कऱ्या । और जे पुरुष शास्त्रके विधिकूं आलस्यादिक दोषके वशतैं परित्याग करिकै आपणे पितापितामहादिक वृद्धपुरुषोंके व्यवहारमात्रकरिकै श्रद्धापूर्वक निषिद्धकर्मोंका परित्याग करिकै विहितकर्मोंका अनुष्ठान करैंहैं तिन पुरुषोंविषे असुरोंका धर्म घटताहै तथा देवतावोंका धर्मभी घटताहै । तहां शास्त्रके विधिका परित्याग करणा यह तौ असुरोंका धर्म तिन्होंविषे घटैहै । और श्रद्धापूर्वक वहितकर्मोंका अनुष्ठान करणा यह देवतावोंका धर्म तिन्होंविषे घटै है । इसप्रकार असुरोंके धर्मकरिकै तथा देवतावोंके धर्मकरिकै युक्त हुए ते पुरुष क्या असुरोंविषे अंतर्भूत हैं अथवा देवतावोंविषे अंतर्भूत हैं इसप्रकार दोनों कर्मोंके दर्शनतैं तथा एक कोटिक निश्चय करावणेहारे अर्थके दर्शनतैं संशयकूं प्राप्तहुआ सो अर्जुन श्रीभगवान्के प्रति प्रश्न करै है–

अर्जुन उवाच ।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजंते श्रद्धयान्विताः ॥
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) ये । शास्त्रविधिम् । उत्सृज्य । यजंते । श्रद्धया । अन्विताः । तेषाम् । निष्ठा । तु । का । कृष्ण । सत्त्वम् । आहो । रजः । तमः ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे कृष्ण ! जे पुरुष शास्त्रविधिकूं परित्यागकरिकै श्रद्धाकरिकै युक्तहुए देवपूजनादिकोंकूं करैं हैं तिन्पुरुषोंकी पुनः किसप्रकारकी निष्ठा है सात्त्विकी है अथवा राजसी तामसी है ॥ १ ॥

भा० टी०—हे कृष्ण ! अर्थात् हे सत्य आनंदरूप ! जैसे देवतापुरुष श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रके अनुसारी होवैंहैं तैसे जे पुरुष शास्त्रके अनुसारी हैं नहीं किंतु जे पुरुष श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रके विधिकूं आलस्यादिक दोषके वशतैं परित्याग करिकै वर्त्तैंहैं । और जैसे आसुरपुरुष श्रद्धातैं रहित होवैंहैं तैसे जे पुरुष श्रद्धातैं रहित हैं नहीं ।किंतु जे पुरुष आपणे पितापितामहादिक वृद्ध पुरुषोंके व्यवहारके अनुसरणमात्रतैं श्रद्धाकरिकै युक्तहुए हैं, इसप्रकार आलस्यादिक दोषके वशतैं शास्त्रविधिका परित्याग करिकै तथा आपणे वृद्ध-पुरुषोंके व्यवहारके अनुसरणमात्रतैं श्रद्धाकरिकै युक्तहुए जे पुरुष देवपूजनादिक कर्मोंकूं करैंहैं तिन पुरुषोंकी किसप्रकारकी निष्ठा है अर्थात् शास्त्रविधिकी उपेक्षा तथा वृद्धव्यवहारमात्रतैं श्रद्धा इन दोनोंकरिकै जे पुरुष पूर्व अध्यायउक्त देव असुरपुरुषोंतैं विलक्षण हैं तिन पुरुषोंकी सा शास्त्रविधिकी अपेक्षातैं रहित श्रद्धापूर्वक देवपूजनादिरूप क्रियाकी व्यवस्थिति किस प्रकारकी है क्या सात्त्विकी है अथवा राजसी तामसी है । तहां तिन पुरुषोंकी सा निष्ठा जो कदाचित् सात्त्विकी होवैगी तौ सात्त्विकस्वभाववाले होणेतैं ते पुरुष देवताही होवैंगे । और तिन पुरुषोंकी सा निष्ठा जो कदाचित् राजसी तामसी होवैगी तौ राजसतामसस्वभाववाले होणेतैं ते पुरुष असुरही होवैंगे इति । इहां (सत्त्वम्) इस पदकरिकै अर्जुननैं संशयकी एक कोटि कथन करीहै । और (रजस्तमः) इस वचनकरिकै ता संशयकी दूसरी कोटि कथन करी है । इसी विभागके जनावणेवास्तै तिन दोनोंके मध्यविषे (आहो) इस शब्दका कथन कर्याहै यातैं सात्त्विकी, राजसी, तामसी यह तीन कोटि इहां ग्रहण करणी नहीं ॥ १ ॥

तहां जे पुरुष शास्त्रविधिका परित्यागकरिकै श्रद्धापूर्वक देवपूजनादिक कर्मोंकूं करैं हैं ते पुरुष तिस श्रद्धाके भेदकरिकै भेदवालेही होवैंहैं । तहां जे पुरुष सात्त्विकी श्रद्धाकरिकै युक्त होवैंहैं ते पुरुष तौ देव कहेजावैं हैं । ऐसे सात्त्विकश्रद्धावाले देवपुरुष तौ श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रउक्त साधनोंविषे अधिकारीभावकूं प्राप्त होवैं हैं । तथा तिन साधनोंजन्य फलकूंभी प्राप्त होवैं हैं । और जे पुरुष राजसी श्रद्धाकरिकै तथा तामसी श्रद्धाकरिकै युक्त हैं ते पुरुष आसुर कहे जावैं हैं । ऐसे आसुरपुरुष तौ शास्त्रउक्त साधनोंविषे अधिकारीभावकूं प्राप्त होवैं नहीं तथा तिन साधनों जन्य कूंभी प्राप्त होते नहीं । इसप्रकारके विवेककरिकै अर्जुनके संशयके निवृत्त णेकी इच्छा करताहुआ श्रीभगवान् तिन श्रद्धाके भेदकूं कथन करैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ २ ॥

च्छेदः) त्रिविधा । भवति । श्रद्धा । देहिनाम् । सा । स्व-
। सात्त्विकी । राजसी । च । एव । तामसी । च । इति ।
शृणु ॥ २ ॥

र्थः) हे अर्जुन ! देहाभिमानवाले पुरुषोंकी सा स्वभावजन्य श्रद्धा
तथा राजसी तथा तामसी यह तीन प्रकारकी ही होवैहै तिसे
श्रवण कर ॥ २ ॥

टी०–हे अर्जुन ! जिस श्रद्धाकरिकै युक्तहुए यह प्राणी शास्त्रविधिका
करिकै देवपूजनादिक कर्मोंकूं करैं हैं सा देहाभिमानी पुरुषोंकी स्वभाव-
तीनप्रकारकी होवैहै । तहां जन्मांतरोंविषे संपादन करे जे धर्म अधर्म
संस्कार हैं जिन संस्कारोंनैं इस जन्मका आरंभ कऱ्याहै तिन संस्का-
म स्वभाव है । सो जीवोंका स्वभाव सात्त्विक, राजस, तामस इस भेद-
नप्रकारका होवै है । तिस तीनप्रकारके स्वभावकरिकै जन्य जा श्रद्धा है
भी सात्त्विकी, राजसी, तामसी इस भेदकरिकै तीनप्रकारकी होवै है ।
कविषे जो जो कार्य होवै है सो सो कार्य आपणे कारणके सदृशही होवैहै
विलक्षण कार्य होवै नहीं । तहां सात्त्विकस्वभावजन्य श्रद्धा सात्त्विकी
जावैहै । और राजसस्वभावजन्य श्रद्धा राजसी श्रद्धा कही जावै है ।
सस्वभावजन्य श्रद्धा तामसी श्रद्धा कहीजावैहै । इसप्रकार संस्काररूप
त्रिविधपणेकरिकै सा श्रद्धाभी तीनप्रकारकी ही होवै है इति । इहां
चैव) इस वचनविषे स्थित जो (च एव) यह दो शब्द हैं तिन दोनों
प्रथम च इस शब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ बोधन कऱ्या–जो
भहुए जन्मविषे केवल शास्त्रके संस्कारमात्र करिकैभी जन्य होवैहै सा
षोंकी श्रद्धा कारणकी एकरूपताकरिकै एक सात्त्विकीरूपही होवैहै
तथा तामसीरूप होवै नहीं इति । और दूसरे एव इस शब्दकरिकै
नैं यह अर्थ बोधन कऱ्या–जा श्रद्धा शास्त्रकी अपेक्षातैं रहित है तथा

प्राणीमात्रविषे साधारण है तथा पूर्वउक्त स्वभावकारिकै जन्य है। सा श्रद्धा ही तिस स्वभावके त्रिविधपणेकारिकै तीनप्रकारकी होवैहै इति। और (तामसी च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार तिन तीन प्रकारोंके समुच्चय करावणेवासतै है इति। हे अर्जुन! जिस कारणतैं पूर्वजन्मके वासनारूप स्वभावका अभिभव करणेहारा शास्त्रजन्य विवेकविज्ञान तिन शास्त्रविधिके उल्लंघन करणेहारे पुरुषोंकूं है नहीं तिस कारणतैं तिन पुरुषोंके पूर्ववासनारूप स्वभावके वशतैं सा श्रद्धा तीन प्रकारकी ही होवै है तिस तीन प्रकारकी श्रद्धाकूं तूं श्रवण-कर। तिस श्रद्धाकूं श्रवण कारिकै तिन पुरुषोंविषे देवभावकूं अथवा आसुरभावकूं तूं आपेही निश्चय करैगा ॥ २ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे अंतःकरणविषे स्थित पूर्वजन्मकी वासनारूप निमित्तका-रणकी विचित्रताकारिकै तिस श्रद्धाकी विचित्रता कथन करी। अब श्रीभगवान् तिस श्रद्धाके उपादानकारणरूप अंतःकरणकी विचित्रता करिकैभी तिस श्रद्धाकी विचित्रताकूं कथन करैहैं-

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ॥
श्रद्धामयोयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) सत्त्वानुरूपा। सर्वस्य। श्रद्धा। भवति। भारत। श्रद्धामयः। अयम्। पुरुषः। यः। यच्छ्रद्धः। सः। एव। सः ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे भारत! सर्वप्राणीमात्रकी आपणे अंतःकरणके अनुसारही श्रद्धा होवैहै यह पुरुष श्रद्धामय होवैहै यातैं जो पुरुष जिसश्रद्धावाला होवैहै सो पुरुष तत्सदृश ही होवैहै ॥ ३ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन! सत्त्वगुण है प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे त्रिगुणात्मक अपंचीकृत पंचमहाभूत हैं तिन पंचमहाभूतोंतैं उत्पन्नहुआ यह अंतःकरण प्रकाश-स्वभाववाला होणेतैं सत्त्व इस नामकारिकै कह्याजावैहै। सो अंतःकरण किसीक शरी-रविषे तौ उद्भूतसत्त्वगुणवालाही होवैहै। जैसे देवतावोंका अंतःकरण है। और किसी शरीरविषे तौ सो अंतःकरण रजोगुणकारिकै अभिभूत सत्त्वगुणवाला होवैहै। जैसे यक्षादिकोंका अंतःकरण है। और किसीक शरीरविषे तौ सो अंतःकरण तमोगुणकारिकै अभिभूत सत्त्वगुणवाला होवैहै। जैसे भूतप्रेतादिकोंका अंतःकरण

है। और मनुष्योंका तौ सो अंतःकरण बाहुल्यताकरिकै व्यामिश्रितही होवैहै। तो मनुष्योंका अंतःकरण शास्त्रजन्य विवेकज्ञानकरिकै रजोतमोगुणका अभिभव करिकै उद्भूतसत्त्वगुणवाला कऱ्या जावै है। और जे पुरुष शास्त्रजन्य विवेकज्ञानतैं शून्य हैं तिन सर्व प्राणीमात्रकी तिस आपणे आपणे अंतःकरणके अनुसार ही श्रद्धा होवै है। अर्थात् तिस अंतःकरणकी विचित्रतातैं तिन प्राणियोंकी सा श्रद्धाभी विचित्रही होवै है। तहां सत्त्वगुण है प्रधान जिसविषे ऐसे अंतःकरण-विषे तौ सात्त्विकी श्रद्धा होवैहै। और रजोगुण है प्रधान जिसविषे ऐसे अंतःकरण-विषे तौ राजसी श्रद्धा होवै है। और तमोगुण है प्रधान जिसविषे ऐसे अंतःकरण-विषे तौ तामसी श्रद्धा होवै है इति। हे अर्जुन! तिन पुरुषोंकी किस प्रकारकी सा निष्ठा होवै है यह जो पूर्व तुमनैं प्रश्न कऱ्याथा तिस प्रश्नके उत्तरकूं तूं अब श्रवण कर। यह शास्त्रजन्य ज्ञानतैं रहित तथा कर्मका अधिकारी त्रिगुणात्मक अंतःकरणविशिष्ट पुरुष श्रद्धामय होवै है। तहां जिसविषे श्रद्धाकी बाहुल्यता होवै है ताका नाम श्रद्धामय है। जैसे अन्नकी बाहुल्यतावाले यज्ञकूं अन्नमययज्ञ कहैं हैं। श्रद्धामय होणेतैं ही जो पुरुष जिस श्रद्धावाला है अर्थात् जो पुरुष जिस सात्त्विकी श्रद्धावाला है अथवा राजसी श्रद्धावाला है अथवा तामसी श्रद्धावाला है सो पुरुष तिस आपणी श्रद्धाके अनुसारही सात्त्विक कह्या जावै है अथवा राजस कह्या जावै है अथवा तामस कह्या जावै है। यातैं इस पुरुषकी श्रद्धाकरिकै ही सा निष्ठा जानीजावै है इति। तहां महान् भरतकुलविषे जो उत्पन्न हुआ होवै ताका नाम भारत है। अथवा शास्त्रजन्य ज्ञानका नाम भा है ताकेविषे जो प्रीतिवाला होवै ताका नाम भारत है। इस भारत संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे शुद्धसात्त्विकपणा सूचन कऱ्या ॥ ३ ॥

हे भगवन्! इस पुरुषकी श्रद्धाही इस पुरुषके निष्ठाकूं जनावै है यह वचन पूर्व आपनैं कथन कऱ्या सो सत्य है परंतु सा श्रद्धा आप अज्ञात हुई तिस निष्ठाकूं जनावैगी नहीं किंतु आप ज्ञात हुई सा श्रद्धा तिस निष्ठाकूं जनावैगी यातैं इस पुरुषकी सा श्रद्धाही किस उपायकरिकै जानी जावै है? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए देवपूजनादिक कार्यरूप लिंगकरिकै सा श्रद्धा अनुमान करी जावैहै इसप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

यजंते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ॥
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजंते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) यजंते । सात्त्विकाः । देवान् । यक्षरक्षांसि । राजसाः । प्रेतान् । भूतगणान् । च । अन्ये । यजंते । तामसाः । जनाः ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे पुरुष देवतावोंकूं पूजनकरैं हैं ते पुरुष सात्त्विक जानणे और जे पुरुष यक्षराक्षसोंकूं पूजनकरैं हैं ते पुरुष राजस जानणे और जे पुरुष प्रेतोंकूं तथा भूतगणोंकूं पूंजनकरैं हैं ते अन्यपुरुष तामस जानणे ॥ ४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! शास्त्रजन्य विवेकज्ञानतैं रहित जे पुरुष ता स्वभावजन्य श्रद्धाकरिकै वसुरुद्रादिक सात्त्विक देवताकूं पूजन करैंहैं ते अन्यपुरुष सात्त्विक जानणे। और शास्त्रजन्य विवेकज्ञानतैं रहित जे पुरुष तिस स्वभावजन्य श्रद्धाकरिकै रजोगुणवाले कुबेरादिक यक्षोंकूं तथा नैर्ऋत आदिक राक्षसोंकूं पूजन करैं हैं ते अन्यपुरुष राजस जानणे। और शास्त्रजन्य विवेकज्ञानतैं रहित जे पुरुष ता स्वभावजन्य श्रद्धाकरिकै तमोगुणवाले प्रेतोंकूं तथा भूतगणोंकूं पूजन करैं हैं ते अन्यपुरुष तामस जानणे । तहां जे ब्राह्मणादिक आपणे धर्मतैं भ्रष्ट होवैं हैं ते ब्राह्मणादिक तिस शरीरके पात हुएतैं अनंतर वायुमयदेहकूं प्राप्त होइकै उल्कामुख कट पूतनादिक नामवाले प्रेत होवैं हैं । अथवा पिशाचविशेषका नाम प्रेत है । और सप्तमातृका आदिकोंका नाम भूतगण है । इहां (भूतगणांश्चान्ये) इस वचनके अंतविषे स्थित जो अन्ये यह पद है ता पदका (सात्त्विकाः राजसाः तामसाः) इन तीनों पदोंविषे संबंध करणा । ताकरिकै सात्त्विक, राजस, तामस इन तीन प्रकारके पुरुषोंविषे परस्पर विलक्षणता सिद्ध होवैहै ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रके परित्याग करणेहारे पुरुषोंकी सात्त्विकादिरूप निष्ठा देवपूजनादिक कार्यतैं निर्णय करी । तहां केईक राजसतामसपुरुषभी पूर्वले किसी पुण्यकर्मके परिपाकतैं सात्त्विक होइकै शास्त्रउक्त साधनोंविषे अधिकारीपणेकूं प्राप्त होवैं हैं । और जे पुरुष आपणे दुराग्रहकारिकै तथा पूर्वले किसी पापकर्मके परिपाकतैं प्राप्त हुए दुर्जनसंगादिक दोषकारिकै तिस राजसतामसभावकूं नहीं परित्याग करैं हैं ते पुरुष शास्त्रप्रतिपादित सन्मार्गतैं भ्रष्टहुए शास्त्रनिषिद्ध असन्मार्गके अनुसरणकरिकै इसलोकविषे तथा परलोकविषे केवल दुःखकेही भागी होवैं हैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् दोश्लोकोंकरिकै प्रतिपादन करैंहैं–

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यंते ये तपो जनाः ॥
दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥
कर्षयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ॥
मां चैवांतः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) अशास्त्रविहितम् । घोरम् । तप्यंते । ये । तपः । जनाः । दंभाहंकारसंयुक्ताः । कामरागबलान्विताः । कर्षयंतः । शरीरस्थम् । भूतग्रामम् । अचेतसः । माम् । च । एव । अंतः । शरीरस्थम् । तान् । विद्धि । आसुरनिश्चयान् ॥ ५ ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे पुरुष अशास्त्रविहित घोर तपकूं करैं हैं तथा दंभअहंकारकरिकै संयुक्त हैं तथा कामरागबलकरिकै युक्त हैं तथा शरीरविषे स्थित भूतोंके समूहकूं कृशकरैं हैं तथा अंतर शरीरविषे स्थित मैं परमेश्वरकूं भी कृश करैं हैं तथा विवेकतैं रहित हैं तिनपुरुषोंकूं आसुरनिश्चयवालाही जाण ॥ ५॥६॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जे पुरुष अशास्त्रविहित घोर तपकूं करैं हैं । इहां ऋगादिक वेदोंका नाम शास्त्र है सो वेदरूप शास्त्र जितनाक इदानींकालविषे पठनपाठन करणेविषे प्रसिद्ध है सो तौ प्रत्यक्ष है । और जो वेदका भाग इदानींकालविषे कहांभी पठनपाठन करणेविषे प्रसिद्ध नहीं है सो तौ वेदका भाग स्मृति आदिकोंविषे कथन करे हुए अर्थका मूलरूप करिकै अनुमान कऱ्या जावै है । ऐसे प्रत्यक्षरूप शास्त्रनैं तथा अनुमेयरूप शास्त्रनैं जो तप नहीं विधान कऱ्या है ता तपका नाम अशास्त्रविहित तप है । अथवा वेदके विरोधी बौद्धादिकोंनैं रच्या जो आगम है ताका नाम अशास्त्र है । तिस अशास्त्रनैं विधान कऱ्या जो तप्तशिलाआरोहणादिक तप है ताका नाम अशास्त्रविहिततप है। कैसा है सो तप–घोर है अर्थात् कर्त्तापुरुषकूं तथा अन्य प्राणियोंकूं केवल पीडाकीही प्राप्तिकरणेहारा है । ऐसे अशास्त्रविहित घोरतपकूंही जे पुरुष सर्वदा करैंहैं । तथा जे पुरुष दंभ, अहंकार इन दोनों करिकै संयुक्त हैं। तहां सर्वलोक हमारेकूं धर्मात्मा कहैं या प्रकारकी इच्छाराखिकै तिन लोकोंविषे जो आपणा धार्मिकपणा प्रगटकरणा है ताका नाम दंभ है । और सर्वगुणोंकारिकै मैंही सर्वतैं श्रेष्ठ हूं या प्रकारका जो दुष्टअभिमान है ताका नाम अहंकार है। ऐसे दंभ अहंकार

दोनों करिकै जे पुरुष सम्यक्युक्त हैं। तहां दंभ अहंकारके योगविषे जो आयासतैं विनाही वियोगके उत्पत्तिकरणेका असामर्थ्य है यहही सम्यक्पणा है। तथा जे पुरुष कामरागबलकरिकै युक्त हैं तहां कामनाके विषयभूत जे शब्दस्पर्शादिक विषय हैं तिन विषयोंका नाम काम है। तिन विषयरूप कामोंविषे जा अत्यंत आसक्ति है ताका नाम राग है। और सो राग है निमित्त जिसविषे ऐसा जो अतिउग्रदुःखोंके सहनकरणेका सामर्थ्य है ताका नाम बल है। ऐसे कामरागबलकरिकै जे पुरुष सर्वदा युक्त हैं अथवा शब्दस्पर्शादिक विषयोंविषे जा अभिलाषा है ताका नाम काम है। और सर्वदा तिन विषयोंविषे अभिनिविष्टत्वरूप जो अभिष्वंग है ताका नाम राग है। और इस विषयकूं मैं अवश्यकरिकै संपादन करूंगा या प्रकारका जो आग्रह है ताका नाम बल है। ऐसे काम, राग, बल इन तीनोंकरिकै जे पुरुष सर्वदा युक्तहैं, इसी कारणतैं ही बलवान् दुःखकूं देखिकैभी नहीं निवर्त्तमानहुए जे पुरुष शरीरविषे स्थित भूतोंके समूहकूं कृश करैं हैं अर्थात् देहइंद्रियादिरूप संघातके आकारकरिकै परिणामकूं प्राप्तहुए जे पृथिवीआदिक पंचभूत हैं तिन भूतोंके समूहकूं जे पुरुष व्यर्थ उपवासादिकोंकरिकै कृश करैं हैं तथा इस शरीरके अंतर भोक्तारूपकरिकै स्थित जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरकूंभी जे पुरुष इस भोग्यशरीरके कृशकरणेकरिकै कृश करैंहैं। अथवा अंतर्यामीरूपकरिकै इस शरीरविषे स्थित जो बुद्धिका तथा बुद्धिके वृत्तियोंका साक्षीरूप मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरकूं जे पुरुष हमारी शास्त्ररूप आज्ञाका उल्लंघनकरिकै कृश करैं हैं इसी कारणतैंही जे पुरुष अचेतस हैं अर्थात् विवेकतैं शून्य हैं ऐसे इस लोकके सर्वभोगोंतैं विमुख तथा परलोकविषे अधमगतिकूं प्राप्त होणेहारे सर्व पुरुषार्थोंतैं भ्रष्ट तिन पुरुषोंकूं तूं अर्जुन आसुरनिश्चय जान। तहां आसुर है क्या विपरीतभावनायुक्त है वेदअर्थका विरोधी निश्चय जिन्होंका तिन्होंका नाम आसुरनिश्चय है। अर्थात् ते पुरुष यद्यपि मनुष्यरूपकरिकै प्रतीत होवैं हैं तथापि ते पुरुष असुरोंकेही कर्मोंकूं करैंहैं यातैं तिन पुरुषोंकूं तूं अर्जुन असुररूप ही जान। अर्थात् तिन पुरुषोंकूं असुररूप जानिकै तिन्होंकी उपेक्षा कर इति। इहां (आसुरनिश्चयान्) इस वचनविषे तिन पुरुषोंके निश्चयविषे आसुरपणा कथन कऱ्या। यातैं तिस निश्चयपूर्वक जितनीक तिन पुरुषोंकी अंतःकरणकी वृत्तियां हैं तिन सर्व वृत्तियोंविषेभी सो आसुरपणा ही जानणा। और असुरत्वजातितैं रहित मनुष्योंविषे साक्षात् आसुरपणा रहता नहीं किंतु दुष्टकर्मों-

के करणेकरिकै ही मनुष्योंविषे असुरपणा प्राप्त होवैहै । इसकारणतैंही श्रीभगवान्नैं (तान् असुरान्विद्धि) इसप्रकार तिन पुरुषोंविषे साक्षात् असुरपणा कथन कन्या नहीं किंतु आसुरनिश्चयकरिकै ही तिन्होंविषे असुरपणा कथन कन्याहै ॥५॥६॥

तहां जे सात्त्विक हैं ते तौ देव हैं और जे राजस हैं तथा तामस हैं ते विपरीतिबुद्धिवाले होणेतैं असुर हैं । यह अर्थ पूर्व निर्णय कन्या । अब श्रीभगवान् सात्त्विकोंके ग्रहण करावणेवासतै तथा राजसतामसोंके परित्याग करावणेवासतै आहार, यज्ञ, तप, दान इन च्यारोंके त्रिविधपणेकूं कथन करैहैं—

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ॥
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) आहारः । तु । अपि । सर्वस्य । त्रिविधः । भवति । प्रियः । यज्ञः । तपः । तथा । दानम् । तेषाम् । भेदम् । इमम् । शृणु ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः सर्वप्राणियोंका प्रिय आहार भी तीनप्रकारकाही होवैहै तथा यज्ञ तप दान यहभी तीनप्रकारकेही होवैं हैं तिन आहारादिकोंके इस सात्त्विकादिक भेदकूं तूं श्रवण कर ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व कथनकरीहुई श्रद्धाही केवल तीनप्रकारकी नहीं होवै है किंतु सर्वप्राणियोंका प्रिय आहारभी सात्त्विक राजस तामस इस भेदकरिकै तीन प्रकारकाही होवै है च्यारि प्रकारका होवै नहीं । काहेतैं सर्वपदार्थोंकूं त्रिगुणात्मक होणेतैं तिसतैं भिन्न चौथा कोई प्रकार संभवता नहीं । तहां भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य यह जो च्यारिप्रकारका अन्न है ताका नाम आहार है । हे अर्जुन ! क्षुधाकी निवृत्तिरूप दृष्ट अर्थकी सिद्धि करणेहारा सो आहार जैसे सात्त्विकादिक भेदकरिकै तीन प्रकारका है तैसे धर्मकी उत्पत्तिद्वारा स्वर्गादिरूप अदृष्ट अर्थकी सिद्धिकरणेहारे जे यज्ञ, तप, दान यह तीनों हैं ते यज्ञ, तप, दान, तीनोंभी सात्त्विक, राजस, तामस इस भेदकरिकै तीनप्रकारके ही होवैं हैं । तहां अग्नि आदिक देवतावोंका उद्देशकरिकै जो घृतादिक द्रव्यका परित्याग है ताका नाम यज्ञ है । और शरीरइंद्रियोंकूं शोषण करणेहारे जे कृच्छ्रचांद्रायणादिक हैं तिन्होंका नाम तप है । और आपणे ममत्वके विषयभूत जे सुवर्ण, गौ, अन्न, गृह इत्यादिक पदार्थ

हैं, तिन सुवर्णादिक पदार्थोंविषे आपणे ममत्वका परित्यागकरिकै जो ब्राह्मणादिकोंका ममत्व संपादन करणा है ताका नाम दान है। ऐसे आहार, यज्ञ, तप, दान च्यारोंका जो सात्त्विक, राजस, तामस यह तीनप्रकारका भेद है सो यह भेद मैं तुम्हारे प्रति स्पष्टकारिकै कथन करताहूं, तिस भेदकूं तूं सावधान होइकै श्रवण कर ॥ ७ ॥

अब आहार, यज्ञ, तप, दान इन च्यारोंके सात्त्विक, राजस, तामस इन तीन प्रकारके भेदकूं श्रीभगवान् पंचदश श्लोकोंकरिकै कथन करैंहैं। तिसविषेभी प्रथम आहारके सात्त्विकादिक भेदकूं तीन श्लोकोंकरिकै कथन करैंहैं-

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ॥
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥८॥

(पदच्छेदः) आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः । रस्याः । स्निग्धाः । स्थिराः । हृद्याः । आहाराः । सात्त्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! आयुष् सत्त्व बल आरोग्य सुख प्रीति इन सर्वोंकूं बधावणेहारे तथा रस्य स्निग्ध स्थिर हृद्य ऐसे आहार सात्त्विकपुरुषोंकूं प्रिय होवैंहैं ॥ ८ ॥

भा०टी०-तहां चिरकालपर्यंत जीवनका नाम आयुष् है। और बलवान् दुःखके प्राप्तहुएभी निर्विकारपणेका संपादक जो चित्तका धर्य है ताका नाम सत्त्व है। अथवा उत्साहका नाम सत्त्व है। और आपणेकूं करणेविषे उचित जो कार्य है ता कार्यविषे परिश्रमके अभावका प्रयोजक जो शरीरका सामर्थ्य है ताका नाम बल है। और ज्वरशूलादिक व्याधियोंका जो अभाव है ताका नाम आरोग्य है। और भोजनतैं अनंतर जो अंतर आह्लादतृप्ति है ताका नाम सुख है। और भोजनकालविषे जो अरुचितैं रहितपणा है अर्थात् तिस भोजनविषयक इच्छाकी उत्कटता है ताका नाम प्रीति है। ऐसे आयुष्, सत्त्व, बल, आरोग्य, सुख, प्रीति इन सर्वोंकूं जे आहार बधावणेहारे हैं। तथा जे आहार रस्य हैं अर्थात् मधुररसकी प्रधानताकरिकै जे आहार अत्यंतस्वादु हैं। तथा जे आहार स्निग्ध हैं अर्थात् स्वभावसिद्ध स्नेहकरिकै तथा आगंतुक घृतादिरूप स्नेहकरिकै जे आहार युक्त हैं। तथा जे आहार स्थिर हैं अर्थात् जे आहार रसादिकअंशकरिकै शरीरविषे चिरकालपर्यंत स्थायी हैं। तथा जे आहार हृद्य हैं अर्थात् दुर्गन्ध अशुचित्वादिक

दृष्ट अदृष्टदोषोंतैं रहितहोणेतैं जे आहार आपणे दर्शनमात्रकरिकै ही हृदयकी प्रसन्नता करणेहारे हैं इस प्रकारके गुणोंकरिकै युक्त जे भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य यह च्यारिप्रकारके आहार हैं ते आहार सात्त्विक पुरुषोंकूं ही प्रिय होवैं हैं अर्थात् इन पूर्वउक्त लक्षणोंकरिकै ते आहार सात्त्विक जानणे। तथा सात्त्विकपणेकी इच्छाकरणेहारे पुरुषोंनैं यह पूर्वउक्त आहार ही ग्रहणकरणे योग्य हैं ॥ ८ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः। आहाराः। राजसस्य। इष्टाः। दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! कटु अम्ल लवण अतिउष्ण तीक्ष्ण रूक्ष दाहकरणेहारे तथा दुःख शोक रोग इन तीनोंकी प्राप्तिकरणेहारे ऐसे आहार राजसपुरुषोंकूंही प्रिय होवैं हैं ॥ ९ ॥

भा० टी०—इहां (अतिउष्ण) इस वचनविषे जो अति यह शब्द है तिस अतिशब्दका कटुआदिक सप्तशब्दोंके साथि अन्वय करणा ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै। जे आहार अतिकटु हैं तथाअति अम्ल हैं तथा अतिलवण हैं तथा अतिउष्ण हैं तथा अतितीक्ष्ण हैं तथा अतिरूक्ष हैं तथा अतिदाहकरणेहारे हैं इति। तहां निंबादिक आहार अतिकटु कहेजावैंहैं। और निंबुजंबीरादिक आहार अतिअम्ल कहेजावैंहैं। और सैंधवादिक आहार अतिलवण कहेजावैं हैं। और जिस आहारके भक्षणकरतेहुए मुख तथा हस्त दाह होवैंहैं सो आहार अतिउष्ण कह्याजावैहै। और मरीचादिक आहार अतितीक्ष्ण कहेजावैंहैं। और स्नेहतैं रहित जे कंगुकोद्रवादिक आहार हैं ते आहार अतिरूक्ष कहेजावैं हैं। और अत्यंतसंतापकी प्राप्ति करणेहारे जे राजिकादिक आहार हैं ते आहार अतिविदाही कहेजावैंहैं इति। तथा जे आहार दुःख, शोक, आमय इन तीनोंकी प्राप्ति करणेहारेहैं। तहां तात्कालिक जा पीडा है ताका नाम दुःख है। और पश्चात् भावी जो दौर्मनस्य है ताका नाम शोक है। और ज्वरादिक रोगोंका नाम आमय है। ऐसे दुःख शोक आमयकूं जे आहार वातपित्तादिक धातुवोंकी विषमताद्वारा प्राप्त करैंहैं तिन आहारोंका नाम दुःखशोकामयप्रद है। ऐसे

आहार राजसपुरुषोंकूं ही प्रिय होवैं हैं। अर्थात् इन पूर्वउक्त लक्षणोंकरिकै ते आहार राजस जानणे। ऐसे राजस आहार सात्त्विकपुरुषोंनैं अवश्यकरिकै परित्याग करेचाहिये॥ ९॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्॥
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ १०॥

(पदच्छेदः) यातयामम्। गतरसम्। पूति पर्युषितम्। च यत्। उच्छिष्टम्। अपि। च। अमेध्यम्। भोजनम्। तामसप्रियम्॥ १०॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जो आहार यातयाम है तथा गतरस है तथा पूति है तथा पर्युषित है तथा उच्छिष्ट है तथा अमेध्य है सो आहार तामसपुरुषोंकूंही प्रिय होवैहै॥ १०॥

भा० टी०—हे अर्जुन! जो आहार यातयाम है अर्थात् अर्धपक्कहुआ है तथा जो आहार गतरस है अर्थात् अत्यंतपकणेकरिकै शुष्कहुआ जो आहार विरसताकूं प्राप्तहुआहै। अथवा अग्निकरिकै पक्कहुआ जो ओदनादिक आहार प्रहरादिककालके व्यवधानकरिकै शीतलताकूं प्राप्तहोवैहै तिस आहारका नाम यातयाम है। और जिस आहारका सारअंश निकासलियाहै ता आहारका नाम गतरस है। जैसे मथनकरेहुए दुग्धादिक हैं। तथा जो आहार पूति है अर्थात् जो आहार दुर्गंधवाला है। तथा जो आहार पर्युषित है अर्थात् अग्निकरिकै पक्कहुआ जो आहार एकरात्रिके व्यवधानकरिकै भोजनकर्त्तापुरुषकूं तात्कालिक उन्मादकी प्राप्ति करणेहारा है। यहां (पर्युषितं च यत्) इस वचनविषे स्थित जो च यह शब्द है सो चशब्द इसप्रकारके अत्यंत दुष्टपणेकरिकै प्रसिद्ध अन्य आहारोंकेभी समुच्चय करावणे वासतैहै। तथा जो आहार उच्छिष्ट है अर्थात् भोजनकरिकै पीछे रह्या जो अन्न है। तथा जो आहार अमेध्य है अर्थात् यज्ञके अयोग्य जे अशुचि मांसमत्स्यादिक हैं। इहां (उच्छिष्टमपि चामेध्यम्) इस वचनविषे स्थित जो (अपि च) यह शब्द है सो शब्द वैद्यकशास्त्रविषे कथन करेहुए अपथ्य आहारोंके समुच्चय करावणेवासतै है। इसप्रकारके लक्षणोंकरिकै युक्त जो आहार है सो आ-

हार तामसपुरुषोंकूं ही प्रिय होवैहै। अर्थात् इन सर्व उक्तलक्षणोंकरिकै तिस आहारकूं तामस जानणा । ऐसा तामसआहार सात्त्विकपुरुषोंनैं अत्यंत दूरतैंही परित्याग करणा इति । ऐसे तामस आहारविषे दुःखशोकादिकोंकी कारणता अत्यंत प्रसिद्धही है । यातैं श्रीभगवान्नैं साक्षात् मुखतैं कथन करी नहीं । इहां श्रीभगवान्नैं यथाक्रमकरिकै तीनप्रकारके आहारवर्ग कथन करे हैं । तहां (रस्याः) इत्यादिक तौ सात्त्विक आहारवर्ग कथन कऱ्या है । और (कट्वम्ल) इत्यादिक राजस आहारवर्ग कथन कऱ्याहै । और (यातयामम्) इत्यादिक तामस आहारवर्ग कथनकऱ्याहै । इस प्रकार तीनप्रकारके आहारवर्ग कथन करे हैं । तहां राजस आहारवर्ग तथा तामस आहारवर्ग इन दोनों वर्गोंविषे सात्त्विक आहारवर्गका विरोधीपणाही जानणा सो प्रकार दिखावैं हैं । तहां अतिकटुत्वादिक रस्यत्वके विरोधीही होवैं हैं । जिस कारणतैं अतिकटुत्वादिक आहार अत्यंत स्वादु होवैं नहीं । यह वार्त्ता सर्व लोकोंविषे प्रसिद्धही है । और रूक्षपणा स्निग्धपणेका विरोधी होवैहै । और अतितीक्ष्णपणा तथा अतिविदाहकपणा यह दोनों धातुवोंके पोषणका विरोधी होणेतैं स्थिरताके विरोधीही होवैं हैं । और अतिउष्णत्वादिक हृद्यत्वके विरोधी होवैं हैं । और आमयप्रदत्व आयुः, सत्त्व, बल, आरोग्य इन च्यारोंका विरोधी होवै है । और दुःखशोकप्रदत्व सुख प्रीति इन दोनोंका विरोधी होवैहै । इस रीतिसैं राजस आहारवर्गविषे सात्त्विक आहारवर्गका विरोधीपणा स्पष्टही है । इस प्रकार तामस आहारवर्गविषेभी गतरसत्व, यातयामत्व, पर्युषितत्व यह तीनों यथायोग्य रस्यत्व, स्निग्धत्व, स्थिरत्व इन तीनोंके विरोधीही हैं । और पूतित्व, उच्छिष्टत्व, अमेध्यत्व यह तीनों हृद्यत्वके विरोधी हैं । और तामस आहारवर्गविषे आयुः सत्त्वादिकोंका विरोधीपणा तौ स्पष्टही है । तहां राजस आहारवर्गविषे तौ केवल दृष्टविरोधमात्रही होवै है । और तामस आहारवर्गविषे तौ दृष्टविरोध तथा अदृष्टविरोध दोनोंही होवैं हैं इतनी दोनोंविषे परस्पर विशेषता है ॥ १० ॥

तहां पूर्व (आयुः सत्त्व—) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान्नैं यथाक्रमतैं सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन प्रकारका आहार कथन करया । अब (अफलाकांक्षिभिः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् यथाक्रमतैं सात्त्विक, राजस, तामस इन तीनप्रकारके यज्ञोंकूं कथन करैं हैं—

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ॥
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) अफलाकांक्षिभिः । यज्ञः । विधिदृष्टः । यः । इज्यते । यष्टव्यम् । एव । इति । मनः । समाधाय । सः । सात्त्विकः ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! फलकी इच्छातैं रहित पुरुषोंनैं यह अवश्य कर्त्तव्य ही है इसप्रकार मनकूं निश्चितकरिकै जो शास्त्रविहित यज्ञ अनुष्ठान करीताहै सो यज्ञ सात्त्विक कह्याजावै है ॥ ११ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, ज्योतिष्टोम इत्यादिकोंका नाम यज्ञ है । सो यज्ञ दोप्रकारका होवै है एक काम्ययज्ञ होवै है दूसरा नित्ययज्ञ होवैहै । तहां (दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत) इत्यादिक वचनोंनैं स्वर्गादिकफलके संयोगकरिकै विधानकरया जो यज्ञ है सो यज्ञ काम्ययज्ञ कह्याजावैहै । सो काम्ययज्ञ तौ सर्वअंगोंकी संपूर्णतापूर्वक इस पुरुषनैं आपही अनुष्ठान करीताहै ब्राह्मणादिक प्रतिनिधिद्वारा अनुष्ठान करीता नहीं । और (यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति) इत्यादिक वचनोंनैं फलके संयोगतैं विनाही केवल जीवनादिकनिमित्तके संयोगकारिकै विधानकऱ्या जो यज्ञ है जो यज्ञ सर्वअंगोंकी पूर्णताके अभाव हुए ब्राह्मणादिक प्रतिनिधिकरिकैभी अनुष्ठान कऱ्याजावैहै सो यज्ञ नित्ययज्ञ कह्याजावैहै । तहां सर्वअंगोंकी संपूर्णताके अभाव हुएभी प्रतिनिधिकूं ग्रहणकारिकै हमारेकूं अवश्यकारिकै सो नित्यकर्म करणेयोग्य है जिस कारणतैं प्रत्यवायकी निवृत्ति करणेवासतै वेदभगवान्नैं आवश्यक जीवनादिक निमित्तकारिकै सो नित्यकर्म विधान कऱ्याहै इस प्रकारतैं आपणे मनकूं निश्चितकारिकै अंतःकरणके शुद्धिकी इच्छावान् होणेतैं काम्यकर्मोंके अनुष्ठानतैं विमुख पुरुषोंनैं शास्त्रप्रमाणतैं निश्चय कऱ्याहुआ जो यज्ञ अनुष्ठान करीताहै सो शास्त्रप्रमाणतैं अंतःकरणकी शुद्धिवासतै अनुष्ठान कऱ्या नित्ययज्ञ सात्त्विक कह्या जावैहै ॥ ११ ॥

अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् ॥
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) अभिसंधाय । तु । फलम् । दंभार्थम् । अपि । च । एव । यत् । इज्यते । भरतश्रेष्ठ । तम् । यज्ञम् । विद्धि । राजसम् ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे भरतवंशविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! पुनः स्वर्गादिकफलकूं उद्देशकरिकै तथा दंभकेवासतै भी जो यज्ञ अनुष्ठानकऱ्याजावै है तिसं यज्ञकूं तूं राजस जान ॥ १२ ॥

भा० टी०–हे भरतकुलविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! पुरुषोंकी कामनाके विषयभूत जे स्वर्गादिफल हैं तिन स्वर्गादिकफलोंका उद्देशकरिकै जो यज्ञ अनुष्ठान करया जावैहै अंतःकरणके शुद्धिका उद्देशकरिकै जो यज्ञ अनुष्ठान करया जाता नहीं । और यह सर्वलोक हमारेकूं धर्मात्मा कहैं या प्रकारकी इच्छाकरिकै जो लोकों-विषे आपणा धर्मात्मपणा प्रगट करणा है ताका नाम दंभ है ऐसे दंभवासतैभी जो यज्ञ अनुष्ठान करयाजावैहै । इहां (अपि चैव) यह वचन विकल्प समुच्चय इन दोनोंके कथनकरिकै तीनपक्षोंके सूचनकरणेवासतै है । तहां कोईक यज्ञ तौ दंभके वासतै नहीं करया हुआभी पारलौकिक स्वर्गादिकफलका उद्देशकरिकै ही करयाजावैहै तथा कोईक यज्ञ तौ पारलौकिक स्वर्गादिक फलका नहीं उद्देशकरिकैभी केवल दंभके वासतैही कऱ्याजावैहै । इस प्रकारके विकल्पकरिकै दो पक्ष सिद्ध होवैं हैं । और कोईक यज्ञ तौ पारलौकिक स्वर्गादिक फलवासतैभी तथा इस लोकके दंभवासतैभी कऱ्याजावै है । इस प्रकार दोनोंका समुच्चयकरिकै एकपक्ष सिद्ध होवैहै । इस प्रकारतैं दृष्टफलका उद्देशकरिकै अथवा अदृष्टफलका उद्देशकरिकै अथवा दृष्टअदृष्ट दोनों फलोंका उद्देशकरिकै शास्त्रके अनुसार जो यज्ञ अनुष्ठान कऱ्याजावै है तिस यज्ञकूं तूं राजस यज्ञ जान । अर्थात् तिस यज्ञकूं तूं राजस जानिकै परित्याग कर । इहां (हे भरतश्रेष्ठ !) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे तिस राजसकर्मके परित्यागकरणेकी योग्यता सूचन करी । और (अभिसंधाय तु) इस वचनके अंतविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वश्लोकउक्त नित्यकर्मरूप सात्त्विक यज्ञतैं इस काम्यकर्मरूप राजस यज्ञविषे विलक्षणताके सूचन करणेवासतै है ॥ १२ ॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् ॥
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) विधिहीनम् । असृष्टान्नम् । मंत्रहीनम् । अदक्षिणम् । श्रद्धाविरहितम् । यज्ञम् । तामसम् । परिचक्षते ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो यज्ञ शास्त्रविधितैं रहित है तथा अन्नदानतैं रहितहै तथा मंत्रतैं रहित है तथा दक्षिणातैं रहितहै तथा श्रद्धातैं रहित है ऐसे यज्ञकूं वेदवेत्ता शिष्टपुरुष तामसँ यज्ञ कहैं हैं ॥ १३ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! जो यज्ञ विधिहीन है अर्थात् जिस प्रकारतैं शास्त्रनैं तिस यज्ञ करणेका विधान कऱ्या है तिस शास्त्रउक्तरीतितैं जो यज्ञ विपरीत है तथा जो यज्ञ असृष्टान्न है अर्थात् जिस यज्ञविषे ब्राह्मणादिकोंके ताईं अन्नदान नहीं कऱ्या जावै है । तथा जो यज्ञ मंत्रहीन है अर्थात् उदात्तादिक स्वरोंकरिकै तथा ककारादिक वर्णोंकरिकै मंत्रोंतैं रहित है । तथा जो यज्ञ दक्षिणातैं रहित है तथा ऋत्विजब्राह्मण-विषयक द्वेषादिकों करिकै जो यज्ञ श्रद्धातैं रहित है ऐसे यज्ञकूं वेदवेत्ता शिष्ट पुरुष तामसयज्ञ कहैंहैं इति । तहां विधिहीनत्व, असृष्टान्नत्व, मंत्रहीनत्व, अदक्षिणत्व, श्रद्धाविरहितत्व यह जे पांच विशेषण कथन करे हैं तिन पांचविशेषणोंके मध्यविषे एकएक विशेषणकरिकै युक्तहुआ सो तामसयज्ञ पंचप्रकारका सिद्ध होवै है । और तिन पांचोंविशेषणोंकरिकै युक्त हुआ सो तामसयज्ञ एकप्रकारका सिद्ध होवैहै । इस प्रकारतैं षट् तामसयज्ञ सिद्ध होवैहै । और तिन पांचों विशेषणोंके मध्यविषे दोवि-शेषणोंकरिकै युक्तहुआ सो तामस यज्ञ भिन्नही सिद्ध होवैहै । और तीनविशेषणों-करिकै युक्तहुआ सो तामसयज्ञ भिन्नही सिद्ध होवैहै । और च्यारि विशेषणोंकरि-कै युक्तहुआ सो तामसयज्ञ भिन्नही सिद्ध होवै है । इस प्रकारतैं तिस तामसयज्ञके बहुतप्रकारके भेद सिद्ध होवैं हैं । तहां पूर्वउक्त राजस यज्ञविषे अंतःकरणकी शुद्धि-के अभाव हुएभी स्वर्गादिक फलोंकी प्राप्ति करणेहारा धर्मरूप अपूर्व अवश्यकरिकै उत्पन्न होवैहै काहेतैं सो राजसयज्ञ शास्त्रकी विधिपरिमाण ही अनुष्ठान कऱ्या-जावैहै । और यह तामसयज्ञ तौ शास्त्रकी विधिपरिमाण अनुष्ठान कऱ्याजाता नहीं यातैं तिस तामसयज्ञतैं कोईभी धर्मरूप अपूर्व उत्पन्न होता नहीं । इतना दोनोंविषे परस्पर भेद है ॥ १३ ॥

तहां (अफलाकांक्षिभिः) इत्यादिक तीन श्लोकों करिकै श्रीभगवान्नैं यथा-क्रमतैं सात्त्विक, राजस, तामस यह तीनप्रकारके यज्ञ कथन करे । अब सात्त्विक राजस, तामस इस तीनप्रकारके तपके कथन करणेवास्तै श्रीभगवान् प्रथम

तीन श्लोकोंकरिकै यथाक्रमतैं शारीर, वाचिक, मानस इस भेदकरिकै तिस तपकी तीनप्रकारताकूं कथन करैंहैं–

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ॥
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम् । शौचम् । आर्जवम् । ब्रह्मचर्यम् । अहिंसा । च । शारीरम् । तपः । उच्यते ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! देव द्विज गुरु प्राज्ञ इन सर्वोंका पूजन तथा शरीरकी शुद्धि तथा आर्जव तथा ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा यह सर्व शारीर तप कह्या जावैहै ॥ १४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, अग्नि, दुर्गा इत्यादिकोंका नाम देव है ऐसे ब्रह्मादिकदेवोंका जो पूजन है । और सदाचारकरिकै युक्त जे उत्तम ब्राह्मण हैं तिन्होंका नाम द्विज है ऐसे द्विजोंका जो पूजन है । और पिता, माता, आचार्य इत्यादिक वृद्धपुरुषोंका नाम गुरु है ऐसे गुरुवोंका जो पूजन है । और वेदोंके पाठकूं तथा वेदोंके अर्थकूं जानणेहारे जे पंडित हैं तिन्होंका नाम प्राज्ञ है ऐसे प्राज्ञोंका जो पूजन है । इहां शास्त्रकी विधिप्रमाण श्रद्धाभक्तिपूर्वक यथायोग्य जो तिन देवादिकोंके ताईं प्रणाम, शुश्रूषा, प्रदक्षिणा, अन्नदान इत्यादिकोंका करणा है यहही तिन देवादिकोंका पूजन है इति । और मृत्तिकाजलकरिकै जो शरीरका शुद्धिरूप शौच है और आर्जव जो है । तहां अंतःकरणकी अकुटिलतारूप जो आर्जव है सो आर्जव तौ (भावसंशुद्धिः) इस शब्दकरिकै श्रीभगवान् आगे मानसतपविषे कथन करैंगे यातैं इहां आर्जवशब्दकरिकै ता अकुटिलताका ग्रहण करणा नहीं किंतु शास्त्रविहित कर्मविषे जा प्रवृत्ति है तथा शास्त्रनिषिद्ध कर्मतैं जा निवृत्ति है सा एकरूपप्रवृत्ति है सा एकरूपप्रवृत्तिही इहां आर्जवशब्दकरिकै ग्रहण करणी । और शास्त्रनिषिद्ध मैथुनतैं निवृत्तिरूप जो ब्रह्मचर्य है तथा शास्त्रनिषिद्ध प्राणियोंके पीडनका अभावरूप जा अहिंसा है । इहां (अहिंसा च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै अस्तेय अपरिग्रह इन दोनोंकाभी ग्रहण करणा । इसप्रकार देवपूजनतैं आदिलैके अहिंसापर्यंत सर्वही शारीर तप कह्याजावैहै । तहां शरीर है प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे कर्त्तादिक हैं तिन्होंकरिकै

जो तप सिद्ध होवै है ताका नाम शारीर तप है। केवल शरीरमात्रकरिकै जो तप सिद्ध होवैहै ताका नाम शारीर तप नहीं है। काहेतैं (अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् । विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥ शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः। न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः॥) इन दोनों श्लोकोंकारिकै श्रीभगवान् आगे अष्टादश अध्यायविषे अधिष्ठान, कर्त्ता, करण, चेष्टा, दैव इन पांचोंविषेही सर्वकर्मोंकी कारणता कथन करेंगे । इसीप्रकारकी रीति आगे वाचिक तपविषे तथा मानस तपविषेभी जानिलेणी इति । और किसी टीकाविषे तौ प्राज्ञ इस शब्दकरिकै ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंका ग्रहण कन्या है। तहां मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी प्रज्ञा जिस पुरुषकूं प्राप्त हुई है ताका नाम प्राज्ञ है। इहां द्विज इस शब्दकरिकै कथन करे जे द्विजाति पुरुष हैं तिन द्विजातिपुरुषोंतैं श्रीभगवान्नैं जो प्राज्ञपुरुषोंका पृथक् कथन कन्याहै सो इस अर्थके सूचन करणेवासतै कथन कन्या है। पूर्वले अनेकजन्मोंके पुण्यकर्मोंकारिकै प्राप्त भई जा ईश्वरकी प्रसन्नता है तिस ईश्वरकी प्रसन्नता करिकै सो ब्रह्मनिष्ठत्वरूप प्राज्ञत्व तिन द्विजातिपुरुषोंतैं भिन्न शूद्रादिकोंविषेभी संभव होइसकै है। जैसे विदुर धर्मव्याध इत्यादिकोंविषे सो ब्रह्मनिष्ठत्वरूप प्राज्ञत्व शास्त्रोंमैं प्रसिद्धही है। तथा (स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यांति परां गतिम् ।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आपही पूर्व कथन कन्या है। ऐसे ब्रह्मनिष्ठत्वरूप प्राज्ञपणेकरिकै युक्त ते शूद्रादिकभी पूजनही करणेयोग्य हैं। इस अर्थके बोधन करणेवासतै श्रीभगवान्नैं द्विजाति पुरुषोंतैं तिन प्राज्ञपुरुषोंका पृथक् कथन कन्या है ॥ १४ ॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ॥
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) अनुद्वेगकरम् । वाक्यम् । सत्यम् । प्रियहितम् । च । यत् । स्वाध्यायाभ्यसनम् । च । एव । वाङ्मयम् । तपः । उच्यते ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दुःखकी नहीं प्राप्तिकरणेहारा तथा सत्य तथा प्रियहित ऐसा जो वाक्य है तथा वेदोंका जो अभ्यास है यह सर्व वाङ्मय तप कहींजावैहै ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो वाक्य अनुद्वेगकर है अर्थात् जो वाक्य किसी भी श्रोताप्राणीकूं दुःखकी प्राप्ति करता नहीं। तथा जो वाक्य सत्यहै अर्थात् जो वाक्य किसी प्रमाणमूलक है। तथा जिस वाक्यका अर्थ किसी अन्यप्रमाणकरिकै बाधित नहीं है। तथा जो वाक्य प्रिय है अर्थात् जो वाक्य आपणे उच्चारणकाल-विषेही श्रोता पुरुषके श्रोत्रइंद्रियकूं सुखकी प्राप्तिकरणेहारा है तथा जो वाक्य हित है अर्थात् जो वाक्य आगे परिणामविषेभी तिस श्रोतापुरुषकूं सुखकीही प्राप्ति करणे-हारा है। इहां (प्रियहितं च यत्) इस वचनविषे स्थित जो च यह शब्द है सो च शब्द अनुद्वेगकरत्व, सत्यत्व, प्रियत्व, हितत्व इन च्यारों विशेषणोंके समुच्चय करावणेवासतै है अर्थात् जो वाक्य अनुद्वेगकरत्व आदिक च्यारों विशेषणोंकरिकै विशिष्ट है किसी एक विशेषणकरिकैभी न्यून नहीं है। जैसे (शांतो भव वत्स स्वाध्यायं योगं चानुतिष्ठ तथा ते श्रेयो भविष्यति।) इत्यादिक वाक्य हैं। अर्थ यह—हे पुत्र ! तूं शांत होउ तथा वेदाभ्यासकूं तथा चित्तके निरोधरूप योगकूं तूं कर तिसकरिकै तुम्हारा श्रेय होवैगा इति। इस वचनविषे अनुद्वेगकरत्व, सत्यत्व, प्रियत्व, हितत्व यह च्यारों विशेषण विद्यमान हैं ऐसे वचनका उच्चारण वाङ्मय तप कह्या जावै है। अर्थात् वाचिक तप कह्या जावै है। और शास्त्रनैं वेदोंके अध्ययनकाल-विषे जो जो नियम कथन करे हैं तिस शास्त्रउक्त नियमपूर्वक जो ऋगादिक वेदोंका अभ्यास है सो वेदोंका अभ्यासभी वाचिक तप कह्या जावैहै ॥ १५ ॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ॥
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६॥

(पदच्छेदः) मनःप्रसादः। सौम्यत्वम्। मौनम्। आत्मविनिग्रहः। भावसंशुद्धिः। इति। एतत्। तपः। मानसम्। उच्यते ॥ १६ ॥

(पदार्थः) अर्जुन ! मनका प्रसाद तथा सौम्यत्व तथा मौन तथा मनका विनिग्रह तथा हृदयकी शुद्धि इस प्रकारका यह सर्व तप मानसतप कह्या जावैहै ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! विषयोंकी चिंताकृत व्याकुलतातैं रहिततारूप जा मनकी स्वस्थता है ताका नाम मनःप्रसाद है। और सर्व लोकोंके हितकी इच्छा करणी तथा शास्त्रनिषिद्धपदार्थोंका नहीं चिंतन करणा इस प्रकारका जो सौम-

नस्य है ताका नाम सौम्यत्व है। और एकाग्रताकरिकै आत्माका चिंतनरूप जो निदिध्यासन है ताकूं मुनिभाव कहैं हैं ता मुनिभावका नाम मौन है। अथवा वाक्-इंद्रियके संयमका हेतुभूत जो मनका संयम है ताका नाम मौन है। इस प्रकारका भाष्यकारोंनैं मौनशब्दका अर्थ कऱ्या है। और मनके सर्ववृत्तियोंका जो विशेषकरिकै निग्रह है जिसकूं असंप्रज्ञातनामा निरोधसमाधि कहैं हैं ताका नाम आत्मविनिग्रह है। और हृदयरूप भावकी जा कामक्रोधलोभादिरूप मलकी निवृत्तिरूप सम्यक्शुद्धि है ताका नाम भावसंशुद्धि है। तहां तिस हृदयविषे कामक्रोधादिरूप अशुद्धिकी जो पुनः नहीं उत्पत्ति होणी है यहही तिस शुद्धिविषे सम्यक्पणा है। अथवा अन्यपुरुषोंके साथि व्यवहारकालविषे जो छलकपटरूप मायातैं रहितपणा है ताका नाम भावसंशुद्धि है। इस प्रकारका अर्थ भाष्यकारोंनैं कऱ्या है। इस प्रकारका मनःप्रसादतैं आदिलैकै भावसंशुद्धिपर्यंत यह सर्व तप मानसतप कह्या जावै है ॥ १६ ॥

तहां (देवद्विजगुरुप्राज्ञ) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै शारीर, वाचिक, मानस इस भेदकरिकै तीन प्रकारका तप कथन कऱ्या। अब तिस तीनप्रकारके तपके सात्त्विक, राजस, तामस इस तीनप्रकारके भेदकूं श्रीभगवान् तीन श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं—

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ॥
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) श्रद्धया। परया। तप्तम्। तपः। तत्। त्रिविधम्। नरैः। अफलाकांक्षिभिः। युक्तैः। सात्त्विकम्। परिचक्षते ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! फलकी इच्छातैं रहित ऐकाग्रचित्तवाले पुरुषोंनैं परम श्रद्धाकरिकै कऱ्याहुआ जो पूर्वउक्त तीनप्रकारका तप है तिस तपकूं शिष्टपुरुष सात्त्विक तप कहैहैं ॥ १७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! फलकी अभिलाषातैं रहित ऐसे जे युक्तपुरुष हैं अर्थात् कार्यकी सिद्धि असिद्धि दोनोंविषे हर्षविषादरूप विकारभावतैं रहित जे समाहितचित्तवाले अधिकारी पुरुष हैं ऐसे निष्काम अधिकारी पुरुषोंनैं अप्रामाण्यशंकारूप कलंकतैं शून्य आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धाकरिकै अनुष्ठान कऱ्या जो सो

ारीर, वाचिक, मानस यह तीन प्रकारका तप है तिस तपकूं वेदवेत्ता
सात्त्विक तप कथन करैहैं ॥ १७ ॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ॥
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

दच्छेदः) सत्कारमानपूजार्थम् । तपः । दंभेन । च । एव । यत् ।
। तत् । इह । प्रोक्तम् । राजसम् । चलम् । अध्रुवम् ॥ १८ ॥
दार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो तप सत्कारमानपूजाके वासतै दंभकरिकै
ाजावैहै सो तप शिष्टपुरुषोंनैं राजस कह्याहै सो तप इसलोकविषेही फल
ा चलै है तथा अध्रुव है ॥ १८ ॥

टी०–हे अर्जुन ! यह तपस्वी ब्राह्मण बहुतश्रेष्ठ हैं इस प्रकारतैं अविवेकी
करी जा स्तुति है ता स्तुतिका नाम सत्कार है। और अविवेकी पुरुषोंनैं
अभ्युत्थानादिक हैं ताका नाम मान है। और अविवेकी पुरुषोंनैं कऱ्या
का प्रक्षालन है तथा अर्चन है तथा धनादिक पदार्थोंका दान है ताका
ा है ऐसे सत्कारवासतै तथा मानवासतै तथा पूजावासतै केवल दंभकरिकै
कऱ्याजावैहै, आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धाकरिकै जो तप कऱ्याजाता नहीं सो
वित्ता शिष्टपुरुषोंनैं राजस तप कह्या है। सो राजसतप केवल इस लोकके
प्राप्ति करैहै पारलौकिक फलकी प्राप्ति करता नहीं। कैसा है सो राजस
है अर्थात् अत्यंत अल्पकालविषे स्थायीफलका हेतु है। पुनः कैसा है सो
प–अध्रुव है अर्थात तिस फलकी जनकताके नियमतैं रहित है काहेतैं
स तपकूं करणेहारे जितनेक पुरुष हैं तिन सर्वोंकूं नियमकरिकै ते सत्का-
ादिक प्राप्त होते नहीं किंतु किसी किसी पुरुषकूं ही ते सत्कारमानपूजा-
त होवैहैं यातैं इस लोकके फलविषेभी सो राजसतप नियमकरिकै
है ॥ १८ ॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ॥
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

दच्छेदः) मूढग्राहेण । आत्मनः । यत् । पीडया । क्रियते ।
परस्य । उत्सादनार्थम् । वा । तत् । तामसम् । उदाहृतम् ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो तप दुराग्रहकरिकै इस इंद्रियसंघातके पीडाकरिकै करयाजावैहै अथवा अन्यप्राणीके विनाशकरणेवासतै करयाजावै है सो तप शिष्टपुरुषोंनैं तामस कह्याहै ॥ १९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! अविवेककी अतिशयताकारिकै करयाहुआ जो दुराग्रह है तिस दुराग्रहकरिकै देहइंद्रियरूप संघातकी पीडाकरिकै जो तप करयाजावै है अथवा अन्य किसी प्राणीके विनाश करणेवासतै जो तप करयाजावैहै सो तप शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं तामस कह्याहै ॥ १९ ॥

तहां पूर्व (श्रद्धया परया तप्तम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै यथाक्रमतैं तामस, सात्त्विक, राजस, यह तीन प्रकारका तप कथन करया। अब(दातव्यमिति यद्दानम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै यथाक्रमतैं दानके सात्त्विक, राजस, तामस इस तीनप्रकारके भेदकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ॥
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) दातव्यम् । इति । यत् । दानम् । दीयते । अनुपकारिणे । देशे । काले । च । पात्रे । च । तत् । दानम् । सात्त्विकम् । स्मृतम् ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह दान अवश्यकर्त्तव्य है इसप्रकारका निश्चयकरिकै जो दान उत्तमदेशविषे तथा उत्तमकालविषे तथा अनुपकारी पात्रके ताईं दियाजावैहै सो दान सात्त्विक कह्याहै ॥ २० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रनैं यह दान हमारे प्रति विधान कर्याहै यातैं तिस शास्त्रकी आज्ञाके वशतैं यह दान हमारेकूं अवश्य करणेयोग्य है इस प्रकारका निश्चयकरिकै तथा तिस दानके फलकी इच्छातैं रहित होइकै जो सुवर्ण, अन्न, भूमि, गौ इत्यादिक पदार्थोंका दान उत्तमदेशविषे तथा उत्तमकालविषे अनुपकारी पात्रके ताईं दियाजावैहै सो दान शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं सात्त्विक कह्याहै । तहां कुरुक्षेत्रादिक तीर्थभूमिका नाम उत्तम देश है । और सूर्यग्रहणादिक कालोंका नाम उत्तम काल है । और जो पुरुष आपणे ऊपरि कदाचित्भी कोई उपकार नहीं करताहोवै ताका नाम अनुपकारी है । और

विद्या तप दोनोंकरिकै जो पुरुष युक्त होवै ताका नाम पात्र है । अथवा आपणा तथा दातापुरुषका जो रक्षण करणेहारा है ताका नाम पात्र है । तहां शास्त्रवचन— (विद्यातपोभ्यामात्मनो दातुश्च पालनक्षम एव प्रतिगृह्णीयात् ।) अर्थ यह—जो ब्राह्मण विद्याकरिकै तथा तपकरिकै आपणे रक्षा करणेविषे तथा दातापुरुषके रक्षण करणेविषे समर्थ होवै सो ब्राह्मण ही तिस दातापुरुषतैं धनादिक प्रतिग्रहकूं ग्रहण करै । जो ब्राह्मण विद्यातैं रहित है तथा तपतैंभी रहित है सो ब्राह्मण कदाचित्भी प्रतिग्रहकूं लेवै नहीं इति । ऐसे अनुपकारी पात्रके ताईं उत्तम देशकालविषे निष्काम होइकै शास्त्रकी विधिपूर्वक दिया जो सुवर्णादिक पदार्थोंका दान है सो दान सात्त्विक कह्या जावैहै ॥ २० ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ॥
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) यत् । तु । प्रत्युपकारार्थम् । फलम् । उद्दिश्य । वा । पुनः । दीयते । च । परिक्लिष्टम् । तत् । दानम् । राजसम् । स्मृतम् ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो दान प्रतिउपकारवासतै अथवा स्वर्गादिक फलकूं उद्देशकरिकै तथा पश्चात्तापयुक्त दिया जावै है सो दान राजस कह्याहै ॥ २१ ॥

भा॰टी॰—हे अर्जुन ! जो दान प्रतिउपकारवासतै दियाजावै है अर्थात् इस ब्राह्मणके ताईं जो मैं यह दान देवूंगा तौ यह ब्राह्मण किसी कालविषे हमारे ऊपरि कोई उपकार करैगा । इस प्रकारकी बुद्धिकरिकै केवल दृष्टप्रयोजनकी सिद्धिवासतैही जो दान दियाजावै है । अथवा इस दानकरिकै हमारेकूं यह स्वर्गादिकफल प्राप्त होवै इस प्रकारतैं स्वर्गादिक फलका उद्देशकरिकै जो दान दिया जावै है । तथा इतना धन हमनैं काहेवासतै खरच करचा इस प्रकारके पश्चात्तापवाला होइकै जो दान दियाजावै है सो दान शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं राजस दान कह्याहै । इहां (यत्तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द पूर्वउक्त सात्त्विक दानतैं इस राजस दानविषे विलक्षणताके बोधन करणेवासतै है ॥ २१ ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ॥
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) अदेशकाले । यत् । दानम् । अपात्रेभ्यः । च । दीयते । असत्कृतम् । अवज्ञातम् । तत् । तामसम् । उदाहृतम् ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो दान अदेशकालविषे अपात्रोंकेताईं सत्कारतैं रहित तथा अवज्ञापूर्वक दियाजावै है सो दान शिष्टपुरुषोंनैं तामस कह्या है ॥ २२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! स्वभावतैं अथवा दुर्जनपुरुषोंके संबंधतैं पापका हेतुरूप जो अशुचि स्थान है ताका नाम अदेश है । और पुण्यका हेतुरूपकरिकै अप्रसिद्ध जो कोईक काल है ताका नाम अकाल है । अथवा अशौचकालका नाम अकाल है । ऐसे अदेशविषे तथा अकालविषे विद्यातपतैं रहित नटविटादिक अपात्रोंके ताईं जो सुवर्णादिक पदार्थोंका दान दिया जावैहै सो दान शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं तामस कह्या है । और उत्तमदेश, उत्तमकाल, उत्तमपात्र इन तीनोंके प्राप्त हुएभी जो दान असत्कृतदियाजावै है अर्थात् प्रियभाषण, पादोंका प्रक्षालन, चंदन पुष्प अक्षतादिकोंकारिकै पूजन इत्यादिरूप सत्कारतैं रहित जो दान दिया जावैहै तथा जो दान अवज्ञात दिया जावैहै अर्थात् दानके पात्ररूप ब्राह्मणादिकोंका निरादरकारिकै जो दान दियाजावै है सो दानभी शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं तामस ही कह्या है ॥ २२ ॥

तहां पूर्वप्रसंगविषे आहार, यज्ञ, तप, दान इन च्यारोंका सात्त्विक, राजस, तामस यह तीनप्रकारका भेद कथन करिकै ते सात्त्विक आहारादिक अवश्यकरिकै ग्रहण करणेयोग्य हैं । और ते राजस तामस आहारादिक अवश्यकरिकै परित्यागकरणेयोग्य हैं यह अर्थ कथन कऱ्या । तहां आहार तौ केवल क्षुधाकी निवृत्तिरूप दृष्टअर्थकी ही सिद्धि करैहै । धर्मकी उत्पत्तिद्वारा स्वर्गादिरूप अदृष्टअर्थकी सिद्धि करता नहीं यातैं किसी अंगकी विगुणताकरिकै तिस आहारके फलके अभावकी शंका होती नहीं । और धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप अथवा स्वर्गादिरूप अदृष्टअर्थकी प्राप्ति करणेहारे जे यज्ञ, तप, दान यह तीनों हैं तिन यज्ञ, तप, दान तीनोंके तौ किसी मंत्रादिरूप अंगकी विगुणतातैं धर्मरूप

अपूर्वके नहीं उत्पन्नहुए तिस फलका अभाव ही होवैहै इस कारणतैं सात्त्विकभी तिस यज्ञ तप दानविषे निष्फलता ही प्राप्त होवैहै। काहेतैं तिस यज्ञ तप दानके अनुष्ठान करणेहारे जे मनुष्य हैं तिन मनुष्योंविषे प्रमादकी बाहुल्यता होणेतैं तिन यज्ञादिकोंके करतेहुए किसीनकिसी अंगकी विगुणता अवश्यकरिकै होवैहै। इस कारणतैं तिस विगुणताके निवृत्तकरणेवासतै ओं तत्सत् इस भगवत्के नामका उच्चारणरूप सामान्य प्रायश्चित्तकूं परम कृपालु श्रीभगवान् अधिकारीजनोंके प्रति उपदेश करैहैं—

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ॥
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) ओंतत्सत्। इति। निर्देशः। ब्रह्मणः। त्रिविधः। स्मृतः। ब्राह्मणाः। तेन। वेदाः। च। यज्ञाः च। विहिताः। पुरा॥२३॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ओंतत्सत् इसप्रकारका तीन अवयवोंवाला परब्रह्मका नाम स्मरणकऱ्या है तिसनामकरिकैही सृष्टिआदिकालविषे प्रजापतिनैं ब्राह्मणादिककर्त्ता तथा कारणरूप वेद तथा कर्मरूपयज्ञ उत्पन्नकरे हैं ॥ २३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जैसे अकार, उकार, मकार इन तीन अवयवोंवाला एकही प्रणवनाम परब्रह्मका होवैहै तैसे ओं तत् सत् यह तीन हैं अवयव जिसके ऐसा ओंतत्सत् यह एकही नाम परब्रह्मका वेदांतवेत्ता पुरुषोंनैं स्मरण कऱ्याहै। हे अर्जुन ! जिस कारणतैं पूर्व वेदांतवेत्ता महर्षियोंनैंभी ओंतत्सत् यह परब्रह्मका नाम स्मरण कऱ्या है तिस कारणतैं इदानींकालके वेदांतवेत्ता पुरुषोंनैंभी ओंतत्सत् यह परब्रह्मका नाम अवश्यकरिकै स्मरण करणा। ऐसे नामके स्मरण करणेतैं इस अधिकारी पुरुषकूं तिन यज्ञतपदानादिक कर्मोंविषे विगुणतादोषकी प्राप्ति होवै नहीं यह वार्त्ता स्मृतिविषेभी कथन करीहै। तहां स्मृति—(प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादितिश्रुतिः ॥) अर्थ यह—यज्ञादिक कर्मकूं करणेहारे पुरुषका किसी प्रमादके वशतैं तिन यज्ञादिक कर्मोंविषे जो कोई मंत्रादिरूप अंग भंग होइजावै है सो मंत्रादिरूप अंग विष्णुभगवान्के स्मरणतैं ही परिपूर्ण होवै है इस प्रकार श्रुतिभगवती कथन करैहै इति। और वेदवेत्ता शिष्ट पुरुषभी जिस जिस वैदिक कर्मका आरंभ करैं हैं तिस तिस कर्मके आरंभविषे ओंतत्सत् इस

नामकूं स्मरणकरिकै ही तिसतिस कर्मकूं करैं हैं यातैं शिष्टाचाररूप प्रमाणतैंभी तिस नामके स्मरणका विगुणतादोषकी निवृत्तिरूप फल सिद्ध होवै है इति । अब ओंतत्सत् इस नामके स्मरणविषे यज्ञादिककर्मोंके विगुणतादोषकी निवृत्तिकरणेका सामर्थ्य कथन करणेवासतै श्रीभगवान् तिस ब्रह्मके नामकी स्तुति करैं हैं (ब्राह्मणास्तेन इति) इहां ब्राह्मणशब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंका उपलक्षण है यातैं यह अर्थ सिद्धभया—पूर्व सृष्टिके आदिकालविषे प्रजापति ब्रह्मानैं जो ब्राह्मणादिक कर्मोंके कर्त्ता तथा कारणरूप वेद तथा कर्मरूप यज्ञ उत्पन्न करे हैं सो ओंतत्सत् इस ब्रह्मके नामकरिकै ही उत्पन्न करे हैं यातैं यज्ञादिक सृष्टिका हेतु होणेतैं यह महान् प्रभाववाला ब्रह्मका नाम तिस विगुणतादोषके निवृत्त करणेविषे समर्थ ही है ॥ २३ ॥

तहां अकार, उकार, मकार इन तीन अवयवोंके व्याख्यानकरिकै जैसे तिन अकारादिक तीन अवयवोंके समुदायरूप ओंकारका व्याख्यान होवै है । तैसे ॐ, तत्, सत् इन तीन अवयवोंके व्याख्यानकरिकै तिन ओंकारादिक तीन अवयवोंके समुदायरूप ओंतत्सत् इस ब्रह्मके नामकूं श्रीभगवान् च्यारि श्लोकोंकरिकै व्याख्यान करैंहैं । तिस ब्रह्मके नामकी स्तुतिके अतिशयतावासतै तहां प्रथम ओंकारशब्दका व्याख्यान करैंहैं—

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ॥
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । ओम् । इति । उदाहृत्य । यज्ञदानतपःक्रियाः । प्रवर्त्तंते । विधानोक्ताः । सततम् । ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसकारणतैं ॐ ईसप्रकारके शब्दकूं उच्चारणकरिकै ही वेदवेत्तापुरुषोंकी विधिशास्त्रउक्त यज्ञदानतपरूप क्रिया निरंतर प्रवृत्त होवैंहैं ॥ २४ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन ! जिसकारणतैं (ओमिति ब्रह्म) इत्यादिक श्रुतियोंविषे ॐ यह शब्द ब्रह्मका नाम प्रसिद्ध है तिस कारणतैं ॐ इस शब्दका उच्चारणकरिकैही वेदवेत्ता पुरुषोंकी विधिशास्त्रबोधित यज्ञदानतपरूप सर्वक्रिया निरंतर प्रवर्त होवैं हैं अर्थात् वेदवेत्ता पुरुष जिस जिस शास्त्रविहित यज्ञतपदानादिरूप क्रियाकूं

करैं हैं तिस तिस क्रियातैं पूर्व ॐ इस शब्दका उच्चारणकरिकैही पश्चात् तिस तिस क्रियाकूं करैं हैं। तिस ओंकारके उच्चारणके प्रभावतैं तिन वेदवेत्ता पुरुषोंकी ते यज्ञदानादिरूप क्रिया विगुणतादोषतैं रहित होइकै समाप्त होवैं हैं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। जिस ओंतत्सत् इस नामके ॐ इस एक अवयवके उच्चारणतैंभी सर्व विगुणतादोषकी निवृत्ति होवै है तौ संपूर्ण नामके उच्चारणतैं तिस विगुणतादोषकी निवृत्ति होवै है याकेविषे पुनः क्या कहणा है ॥ २४ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे काम्ययज्ञादिककर्मोंविषे तथा निष्कामयज्ञादिक कर्मोंविषे साधारणतारूप करिकै ॐ इस शब्दका उपयोग कथन कऱ्या। अब मुमुक्षुजनकृत केवल निष्काम कर्मविषे तत् इस शब्दके उपयोगकूं कथन करतेहुये श्रीभगवान् तत् इस शब्दका व्याख्यान करैंहैं—

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ॥
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥२५॥

(पदच्छेदः) तत्। इति। अनभिसंधाय। फलम्। यज्ञतपःक्रियाः। दानक्रियाः। च। विविधाः। क्रियंते। मोक्षकांक्षिभिः ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! मोक्षकी इच्छावान् पुरुषोंनैं तत् इसशब्दका उच्चारणकरिकै फलकूं नइच्छाकरिकै नानाप्रकारकी यज्ञतपरूपक्रिया तथा दानरूपक्रिया करीतियां हैं ॥ २५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! तत्त्वमसि इत्यादिक श्रुतियोंविषे प्रसिद्ध जो तत् यह ब्रह्मका नाम है इस तत् नामकूं उच्चारणकरिकै ही फलकी इच्छातैं रहित होइकै मुमुक्षुजनोंनैं आपणे अंतःकरणकी शुद्धिवासतै नानाप्रकारकी यज्ञरूपक्रिया करीहैं। तथा नानाप्रकारकी तपरूप क्रिया करी हैं। तथा नानाप्रकारकी दानरूप क्रिया करी हैं। तिस तत्शब्दके उच्चारणके प्रभावतैं तिन मुमुक्षुजनोंकी ते यज्ञतपदानादिरूप सर्वक्रिया निर्विघ्न समाप्त होवैं हैं यातैं यह तत् शब्दभी अत्यंत श्रेष्ठ है॥ २५॥

अब श्रीभगवान् तीसरे सत् इस शब्दका दो श्लोकोंकरिकै व्याख्यान करैं हैं—

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ॥
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) सद्भावे। साधुभावे। च। सत्। इति। एतत्। प्रयुज्यते। प्रशस्ते। कर्मणि। तथा। सच्छब्दः। पार्थ। युज्यते ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! सद्भावविषे तथा साधुभावविषे शिष्टपुरुषोंनैं सत् इसप्रकारका शब्द उच्चारण करीताहै तथा प्रशस्त कर्मविषेभी सत्‌शब्द उच्चारण-करीताहै ॥ २६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! (सदेव सोम्येदमग्र आसीत्) इत्यादिक श्रुतियोंविषे प्रसिद्ध जो सत् यह ब्रह्मका नाम है सो सत्‌शब्द शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं सद्भावविषे उच्चारण करीता है अर्थात् जिस वस्तुके अविद्यमानपणेकी शंका होवै है तिस वस्तुके विद्यमानपणेविषे सो सत्‌शब्द उच्चारण करीता है। तथा शिष्टपुरुषोंनैं साधु-भावविषेभी सो सत्‌शब्द उच्चारण करीताहै अर्थात् जिस वस्तुके असाधुपणेकी शंका होवैहै तिस वस्तुके साधुपणेविषेभी सो सत्‌शब्द उच्चारण करीताहै यातैं यह सत्‌शब्द विगुणतादोषकी निवृत्तिकरिकै तिन यज्ञादिक कर्मोंके साधुत्व करणेकूं तथा तिन यज्ञादिक कर्मोंके फलकी विद्यमानता करणेकूं समर्थ है। हे अर्जुन ! जैसे सद्भावविषे तथा साधुभावविषे यह सत्‌शब्द उच्चारण करीता है तैसे प्रतिबंधतैं रहित होइकै शीघ्रही सुखके जनक जे विवाहादिक मांगलिक कर्म हैं तिन कर्मों-विषेभी शिष्ट पुरुषोंनैं सो सत् शब्द उच्चारण करीताहै यातैं यह सत्‌शब्द विगुण-तादोषकी निवृत्तिकरिकै तिन यज्ञादिक कर्मोंविषे प्रतिबंधतैं रहित शीघ्रही फलकी जनकता संपादन करणेविषे समर्थ है इस कारणतैं यह सत्‌शब्द अत्यंत श्रेष्ठहै ॥ २६ ॥

किंच–

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ॥
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) यज्ञे । तपसि । दाने । च । स्थितिः । सत् । इति । च । उच्यते । कर्म । च । एव । तदर्थीयम् । सत् । इति । एव । अभिधीयते ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः यज्ञविषे तथा तपविषे तथा दानविषे स्थितिभी सत् इस प्रकार कथन करीती है तथा तदर्थीय कर्म भी सत् इसप्रकार ही कथन करीता है ॥ २७ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! यज्ञविषे तथा तपविषे तथा दानविषे जा स्थिति है अर्थात् तत्परताकरिकै जा अवस्थितिरूप निष्ठा है सा निष्ठारूप स्थितिभी विद्वान

ुरुषोंनैं सत् इस नामकरिकै कथन करीतीहै तथा तदर्थीय जो कर्म है सो कर्मभी
सत् इस नामकारिकै ही कथन करीता है। तहां तिन यज्ञ तप दानरूप अर्थोंविषे
उत्पन्न हुआ जो तिन यज्ञादिकोंके अनुकूल कर्मविशेष है ताका नाम तदर्थीय कर्म
है। अथवा जिस ब्रह्मका यह सत्नाम कथन कऱ्याहै सो ब्रह्म है अर्थ क्या विषय
जिसका ताका नाम तदर्थ है। ऐसा शुद्धब्रह्मविषयक ज्ञान है तिस ब्रह्मज्ञानके
अनुकूल जे कर्म हैं तिन कर्मोंका नाम तदर्थीयकर्म है। अथवा भगवदर्पणबुद्धि-
करिकै कऱ्या जो कर्म है ताका नाम तदर्थीयकर्म है। अथवा परमेश्वरकी प्राप्तिवा-
स्तै कऱ्या जो कर्म है ताका नाम तदर्थीयकर्म है। ऐसा तदर्थीय कर्मभी विद्वान्
पुरुषोंनैं सत् इस नामकरिकै कथन कऱ्या है यातैं सत् यह नाम यज्ञादिक कर्मोंके
विगुणतादोषकी निवृत्ति करणेविषे समर्थ होणेतैं अत्यंतश्रेष्ठ है यातैं यह भावार्थ
सिद्ध भया—जिस ओंतत्सत् इस ब्रह्मके नामका एक एक ओंकारादिकरूप अव-
यवकाभी इस प्रकारका माहात्म्यहै तिस ओंकारादिक तीन अवयवोंका समुदायरूप
ॐ तत्सत् इस नामका अत्यंत अद्भुत माहात्म्य है याकेविषे क्या कहणा है॥ २७॥

हे भगवन्! आलस्यादिक दोषकरिकै शास्त्रीय विधिका परित्यागकरिकै
श्रद्धावान् होइकै केवल वृद्धपुरुषोंके व्यवहारमात्रकरिकै यज्ञतपदानादिक कर्मोंकूं
करणेहारे जे पुरुष हैं तिन पुरुषोंकूं किसी प्रमादके वशतैं तिन कर्मोंविषे विगुण-
तादोषके प्राप्तहुए ओंतत्सत् इस ब्रह्मके नामकरिकै जबी तिस विगुणतादोषकी
निवृत्ति होवैहै तबी श्रद्धातैं रहितपणेकरिकै शास्त्रीय विधिका परित्यागकरिकै
आपणी इच्छामात्रकरिकै यत्किंचित् यज्ञादिक कर्मोंकूं करणेहारे आसुर पुरुषों-
कूंभी ओंतत्सत इस नामकरिकै ही विगुणतादोषकी निवृत्ति होवैगी। यातैं यज्ञा-
दिक कर्मोंके सात्त्विकपणेका हेतुभूत श्रद्धाका कोईभी प्रयोजन नहीं है। ऐसी
अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् श्रद्धातैं विना करेहुए सर्वकर्मोंके निष्फल-
ताकूं कथन करैं हैं—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्॥
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥ २८॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

(पदच्छेदः) अश्रद्धया । हुतम् । दत्तम् । तपः । तप्तम् । कृतम् । च । यत् । असत् । इति । उच्यते । पार्थ । न । च । तत् । प्रेत्य । नो । इह ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! अश्रद्धाकरिकै जो हवन करीताहै तथा जो दान करीता है जो तप करीताहै तथा जो कोई अन्यभी कर्मकरीताहै सो सर्व असत् इस नाम-कारिकै कह्याजावैहै जिसैं कारणतैं सो श्रद्धारहितकर्म परलोकविषेभी नहीं फल देवै है तथा इस लोकविषेभी नहीं फल देवै है ॥ २८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! इस पुरुषनैं अश्रद्धाकरिकै अग्निविषे जो हवन करी-ताहै तथा ब्राह्मणोंके ताई जो सुवर्णादिक पदार्थोंका दान देता है तथा शारीरतप, वाचिकतप, मानसतप यह तीनप्रकारका जो तप करीता है तथा इसतैं अन्यभी जे स्तुति नमस्कारादिक कर्म करीते हैं ते अश्रद्धाकरिकै करेहुए हवनादिक सर्वही कर्म असत् इस प्रकारके नामकारिकै कहेजावैं हैं अर्थात् ते सर्वकर्म असाधु ही कहेजावैं हैं । यातैं श्रद्धातैं विना करे हुए तिन कर्मोंका ओंतत्सत् इस नामकरिकै सो साधुभाव कन्या जाता नहीं । तात्पर्य यह--जैसे पाषाणकी शिलाविषे अंकुरके उत्पत्तिकी योग्यताही होती नहीं तैसे तिन श्रद्धातैं रहित कर्मोंविषे सर्वप्रकारक-रिकै तिस साधुभावकी योग्यताही होती नहीं । ऐसे साधुभावके योग्य तिन कर्मों-विषे ओंतत्सत् इस नामकारिकै सो साधुभाव कदाचित् भी संभवता नहीं इति । शंका–हे भगवन् ! ते श्रद्धातैं रहित कर्म किस हेतुतैं असत् कहेजावैं हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ताकेविषे हेतु कहैं हैं (न च तत्प्रेत्य नो इह इति) हे अर्जुन! जिस कारणतैं अश्रद्धाकारिकै करचा हुआ सो कर्म परलोक-विषेभी फलकी प्राप्ति करता नहीं । काहेतैं ते श्रद्धारहित कर्म विगुणतादोषवाले होणेतैं धर्मरूप अपूर्वके उत्पादक होते नहीं । ता धर्मरूप अपूर्वतैं विना सो स्वर्गादिरूप पारलौकिक फल प्राप्त होतानहीं । तथा सो श्रद्धातैं विना करचाहुआ कर्म इस लोकविषे भी यशरूप फलकी प्राप्ति करता नहीं । जिस कारणतैं श्रद्धाहीन पुरुषकी शिष्टपुरुष स्तुति करते नहीं किंतु निंदाही करतेहैं यातैं श्रद्धातैं रहित होइकै करचा जो यज्ञादिरूप कर्म है सो कर्म इस लोकके फलकी तथा पारलौकिक फलकी प्राप्ति करता नहीं । यातैं अंतःकरणकी शुद्धिवासतै यह अधिकारी पुरुष सात्त्विकी श्रद्धाकरिकैही सात्त्विक यज्ञादिक

कर्मकूं करै ऐसे श्रद्धापूर्वक करेहुए सात्त्विक यज्ञादिकोंविषे जो कदाचित् विगुणतादोषकी शंका प्राप्त होवै तौ यह अधिकारी पुरुष ॐतत्सत् इसप्रकारके ब्रह्मके नामकूं उच्चारण करिकै तिन यज्ञादिक कर्मौंकूं विगुणतादोषतैं रहित करै इति । तहां इस सप्तदश अध्यायविषे यह अर्थ निर्णय कऱ्या—आलस्यादिक दोषकरिकै शास्त्रविधिका परित्याग कऱ्या है जिन्होंनैं तथा श्रद्धापूर्वक पिता पितामहादिक वृद्धपुरुषोंके व्यवहारमात्रकरिकै यज्ञादिक कर्मोंविषे प्रवृत्ति है जिनोंकी । तथा शास्त्रके विधिका परित्यागरूप जो असुरपुरुषोंका धर्म है तथा श्रद्धापूर्वक कर्मोंका अनुष्ठानरूप जो देवोंका धर्म है तिन दोनों धर्मोंकरिकै युक्त होणेतैं ते पुरुष क्या असुर हैं अथवा देव हैं इस प्रकारके अर्जुनके संशयके विषयभूत जे पुरुष हैं तिन पुरुषोंके मध्यविषे जे पुरुष राजसतामसश्रद्धापूर्वक राजसतामसरूप यज्ञादिक कर्मोंकूंही करैंहैं ते पुरुष तौ असुर कहे जावैंहैं । ऐसे असुरपुरुष तौ शास्त्रप्रतिपादित ज्ञानसाधनोंके अधिकारीही हैं । और जे पुरुष सात्त्विक श्रद्धापूर्वक सात्त्विक यज्ञादिकोंकूं करैंहैं ते पुरुष तौ देव कहे जावैंहैं । ते देवपुरुष तौ शास्त्रप्रतिपादित ज्ञानसाधनोंके अधिकारी होवैंहैं । इसप्रकारका निर्णय श्रीभगवान्नैं इस अध्यायविषे सात्त्विक राजस तामस इन तीन प्रकारकी श्रद्धाके प्रतिपादनद्वारा आहारादिकोंके सात्त्विकादिक त्रिविधपणेकरिकै सिद्ध कऱ्या ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशाऽध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व सप्तदश अध्यायविषे श्रद्धाका सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन प्रकारका भेद कथन करिकै तथा आहार, यज्ञ, तप, दान इन च्यारोंका सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन प्रकारका भेद कथन करिकै कर्मीपुरुषोंका सात्त्विक, राजस, तामस यह तीनप्रकारका भेद कथन कऱ्या । सात्त्विकोंके ग्रहण करावणे वास्तै तथा राजस तामसोंके परित्याग करावणेवास्तै अब संन्यासके सात्त्विक, राजस, तामस इस प्रकारके त्रिविधपणेकूं कथन करिकै संन्यासियोंकेभी सात्त्विक, राजस, तामस इस प्रकारके त्रिविधपणेकूं अवश्यकरिकै कह्या चाहिये । तहां आत्मसाक्षात्कारतैं अनंतर करणेयोग्य जो फलभूत सर्वकर्मोंका संन्यास है जिस

संन्यासकूं शास्त्रविषे विद्वत्संन्यास कहेहैं सो फलभूतसंन्यास तौ पूर्व चतुर्दश अध्यायविषे गुणातीतरूपकरिकै व्याख्यान कऱ्या था । यातैं सो फलभूत विद्वत्संन्यास तौ सात्त्विक, राजस, तामस इसप्रकारके त्रिविधभेदके योग्य होवै नहीं । और आत्मसाक्षात्कारतैं पूर्व तिस आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति अर्थ जो सर्वकर्मोंका संन्यास है, जो संन्यास आत्मसाक्षात्कारकी इच्छावान् पुरुषनैं वेदांतवाक्योंके विचारवासतै कऱ्या जावैहै । जिस संन्यासकूं शास्त्रविषे विविदिषासंन्यास कहेहैं सो विविदिषासंन्यासभी (त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व निर्गुणरूपकरिकै व्याख्यान कऱ्याथा । यातैं सो विविदिषासंन्यासभी सात्त्विक, राजस, तामस इस प्रकारके त्रिविधपणेके योग्य है नहीं किंतु फलभूत विद्वत्संन्यास तथा विविदिषासंन्यास यह दोनों संन्यास गुणातीत संन्यास कहे जावैहैं । और जिन पुरुषोंकूं आत्मसाक्षात्कारकी उत्पत्ति हुई नहीं तथा आत्मसाक्षात्कारकी इच्छारूप विविदिषाकीभी उत्पत्ति हुई नहीं ऐसे तत्त्ववेत्तापणेतैं रहित तथा जिज्ञासुपणेतैं रहित पुरुषोंका जो कर्मोंका संन्यास है जो संन्यास (स संन्यासी च योगी च) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व गौणसंन्यासरूपकरिकै व्याख्यान कऱ्याथा तिस संन्यासका सात्त्विक, राजस, तामस यह त्रिविधपणा संभव होइसकैहै । तिसी ही संन्यासके विशेषता जाणनेकी इच्छा करताहुआ अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रति प्रश्न करैहै—

अर्जुन उवाच ।

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ॥
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) संन्यासस्य । महाबाहो । तत्त्वम् । इच्छामि । वेदितुम् । त्यागस्य । च । हृषीकेश । पृथक् । केशिनिषूदन ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे महाबाहु! हे हृषीकेश! हे केशिनिषूदन ! संन्यासके तथा त्यागके स्वरूपकूं मैं अर्जुन पृथक्कूं जानणेकूं चाहताहूं सो कृपाकरिकै कहो ॥ १ ॥

भा० टी०—हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! श्रीभगवन् जिन पुरुषोंकूं आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुई नहीं तथा जिन पुरुषोंकूं आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाभी उत्पन्न हुई नहीं ऐसे जे कर्मोंके अधिकारी पुरुष हैं ऐसे कर्मोंके अधिकारी

पुरुषोंनैं करया जो किंचित्कर्मोंका ग्रहण करिकै किंचित्कर्मोंका परित्याग है सो कर्मोंका परित्याग त्यागअंशरूप गुणके योगतैं गौणीवृत्तितैं संन्यासशब्दकरिकै कह्या जावैहै। इसप्रकारका अंतःकरणकी शुद्धिवासतै अविद्वान् कर्मके अधिकारी पुरुषनैं करया जो संन्यास है जो संन्यास सर्वप्रकारतैं कर्मोंका त्यागरूप है नहीं किंतु किसीकरूपकारिकै कर्मोंका त्यागरूप है इसप्रकारके संन्यासके स्वरूपकूं मैं अर्जुन सात्त्विक राजस तामस इसप्रकारके भेदकरिकै जानणेकी इच्छा करताहूं। तथा त्यागके स्वरूपकूंभी मैं सात्त्विकादिक भेदकरिकै जानणेकी इच्छा करताहूं। तहां संन्यास त्याग यह दोनों शब्द घट पट इन दोनों शब्दोंकी न्याईं भिन्नभिन्न जातिवाले अर्थके वाचक हैं। अथवा घट कलश इन दोनों शब्दोंकी न्याईं एकही जातिवाले अर्थके वाचक हैं। तहां इन दोनों पक्षोंविषे जबी आदिपक्ष अंगीकार होवै तबी त्यागके स्वरूपकूं संन्यासतैं पृथक् करिकै मैं जानणेकी इच्छा करताहूं। और जबी द्वितीयपक्ष अंगीकार होवै तबी संन्यास त्याग इन दोनोंके प्रवृत्तिका निमित्तभूत अवांतरउपाधिका भेदमात्र कह्या चाहिये। संन्यास त्याग इन दोनोंविषे एकके व्याख्यान करिकैही दोनोंका व्याख्यान सिद्ध होवैगा इति। तहां महान् हैं दोनों बाहु जिसकी ताका नाम महाबाहु है। और केशिनामा दैत्यकूं जो नाश करताभयाहै ताका नाम केशिनिषूदन है। इन दोनों संबोधनोंकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्विषे बाह्य उपद्रवोंके निवृत्त करणेका सामर्थ्य सूचन करया। और हृषीक नाम इंद्रियोंका है तिन इंद्रियोंका जो ईश होवै अर्थात् प्रवर्त्तक होवै ताका नाम हृषीकेश है इस संबोधनकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्विषे अंतर कामक्रोधादिक उपद्रवोंके निवृत्त करणेका सामर्थ्य सूचन करया। इहां भगवत्तविषयक अत्यंत अनुरागतैं अर्जुननैं भगवान्के तीन संबोधन करेहैं इति। तहां इस श्लोकविषे अर्जुनके दो प्रश्न सिद्ध हुए। तहां कर्मके अधिकारी अविद्वान् पुरुषोंनैं करया जो संन्यास है तिस संन्यासविषे पूर्वउक्त यज्ञादिक कर्मोंका साधर्म्यभी रहैहै तथा पूर्वउक्त गुणातीतरूप दोप्रकारके संन्यासका साधर्म्यभी रहैहै। तहां जैसे पूर्वउक्त यज्ञादिक कर्म कर्मके अधिकारी पुरुषनैंही करीतेहैं तैसे यह संन्यासभी कर्मके अधिकारी पुरुषनैंही करयाहै यहही इस संन्यासविषे पूर्वउक्त यज्ञादिक कर्मोंका समानधर्म है। और जैसे पूर्वउक्त गुणातीतनामा दोप्रकारका संन्यास संन्यासशब्दकरिकै प्रतिपादन करया

All this explanation the commentary

जावैहै तैसे यह संन्यासभी संन्यासशब्दकरिकै प्रतिपादन करयाजावै है यहही इस संन्यासविषे पूर्वउक्त गुणातीतनामा दोप्रकारके संन्यासका समानधर्म है। इसप्रकार यज्ञादिकोंके समानधर्मकरिकै तथा गुणातीतनामा दोनों संन्यासोंके समानधर्मकरिकै जो इस संन्यासविषे त्रिगुणताके संभव असंभव दोनोंकरिकै संशय होवैहै सो संशय तौ प्रथमप्रश्नका बीजरूप है और संन्यास त्याग इन दोनों शब्दों-कूं घट कलश इन दोनों शब्दोंकी न्याई पर्यायरूपता होणेतैं कर्मोंके त्यागरूपकरिकै तथा कर्मफलके त्यागरूपकरिकै तिन दोनोंके विलक्षणताके कथनतैं उत्पन्न हुआ जो संशय है सो संशय तौ द्वितीयप्रश्नका बीजरूप है ॥ १ ॥

तहां सूचीकटाहन्यायकरिकै अंत्यप्रश्नके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् उत्तरकूं कथन करैंहैं । तहां जैसे लुहारपुरुष बहुतप्रयत्नसाध्य कटाहकूं छोडिकै प्रथम अल्पप्रयत्नसाध्य सूचीकूं बनाइदेवैहै, तैसे बहुत विस्तारतैं प्रतिपादन करणेयोग्य अर्थकूं छोडिकै प्रथम थोडेमें प्रतिपादन करणेयोग्य अर्थका कथन करणा याकूं सूचीकटाहन्याय कहैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ॥
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) काम्यानाम् । कर्मणाम् । न्यासम् । संन्यासम् । कवयः । विदुः । सर्वकर्मफलत्यागम् । प्राहुः । त्यागम् । विचक्षणाः ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! काम्य कर्मोंके त्यागकूं सूक्ष्मदर्शीपुरुष संन्यास जानैं हैं तथा विचारविषे कुशलपुरुष सर्वकर्मोंके फलके त्यागकूं त्याग कहैं हैं ॥ २ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! (स्वर्गकामो यजेत । पुत्रकामो यजेत । पशुकामो यजेत ।) इत्यादिक विधिवचनोंनैं स्वर्गादिफलकी कामनावाले पुरुषके प्रति विधान करे जे ज्योतिष्टोमादिक काम्यकर्म हैं जे काम्यकर्म अंतःकरणकी शुद्धिविषे किंचित्मात्रभी उपयोग करते नहीं ऐसे काम्यकर्मोंका जो त्याग हैं तिस त्यागकूं केईक सूक्ष्मदर्शी पुरुष संन्यासरूप जानैं हैं । काहेतैं (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ।) इस श्रुतिनैं नित्य-

कर्मोंकाही प्रतिबंधकपापोंकी निवृत्तिद्वारा आत्मज्ञानविषे उपयोग कथन कऱ्या है। तहां इस श्रुतिविषे वेदानुवचनशब्द ब्रह्मचारीके सर्वधर्मोंका उपलक्षण है। और यज्ञ दान यह दोनों शब्द गृहस्थके सर्वधर्मोंके उपलक्षण हैं और तप अनाशक यह दोनों शब्द वानप्रस्थके सर्वधर्मोंके उपलक्षण हैं इति। और (ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः।) इत्यादिक वचनोंनैंभी प्रतिबंधकपापकी निवृत्तिद्वारा नित्यकर्मोंकाही आत्मज्ञानकी उत्पत्तिविषे उपयोग कथन कऱ्याहै। यातैं नित्यकर्मोंकाही आत्मविषे अथवा आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाविषे उपयोग है। काम्यकर्मोंका आत्मज्ञानविषे तथा विविदिषाविषे किंचित्मात्रभी उपयोग नहीं है। यातैं अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक तथा विविदिषाकी उत्पत्तिपूर्वक आत्मज्ञानके प्राप्तिकी इच्छावान् पुरुषनैं भगवदर्पणबुद्धिकरिकै नित्यकर्मोंकाही अनुष्ठान करणा। और काम्यकर्म तौ तिसतिस फलसहित सर्वही परित्याग करणे यह एकमत कथन कऱ्या। अब द्वितीयमतका कथन करैंहैं (सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः। इति) हे अर्जुन ! सर्व काम्यकर्मोंके तथा सर्व नित्यकर्मोंके फलका जो त्याग है अर्थात् अंतःकरणके शुद्धिकी इच्छाकरिकै विविदिषाकी प्राप्तिवास्तै जो तिन काम्यरूप नित्य सर्वकर्मोंका अनुष्ठान है तिस सर्वकर्मके फलके त्यागकूं विचारविषे कुशल पुरुष त्यागरूप कहैंहैं। यद्यपि (स्वर्गकामो यजेत। पुत्रकामो यजेत। पशुकामो यजेत।) इत्यादिक वचनोंनैं ज्योतिष्टोमादिक काम्यकर्मोंके स्वर्ग, पुत्र, पशु इत्यादिक भिन्नभिन्न फलही कथन करेहैं तथापि इस अधिकारी पुरुषनैं तिसतिस स्वर्गादिक फलकी नहीं इच्छा करिकै ते काम्यकर्मभी अंतःकरणकी शुद्धिवास्तैही करणे। काहेतैं अग्निहोत्रादिक कर्मोंविषे स्वभावतैं तौ नित्यपणा अथवा काम्यपणा होता नहीं किंतु कर्त्तापुरुषके अभिप्रायविशेषकरिकै ही तिन अग्निहोत्रादिक कर्मोंविषे नित्यपणा अथवा काम्यपणा सिद्ध होवैहै। तहां जो अग्निहोत्र स्वर्गादिकफलकी इच्छापूर्वक कऱ्या जावै है तिस अग्निहोत्रविषे तौ काम्यपणा होवैहै। और जो अग्निहोत्र स्वर्गादि फलकी इच्छातैं रहित होइकै केवल भगवदर्पणबुद्धिकरिकै कऱ्या जावै है तिस अग्निहोत्रविषे नित्यपणा होवैहै। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाविषे केवल नित्यकर्मोंकाही उपयोग होवैहै। तिस विविदिषाविषे काम्यकर्मोंका किंचित्मात्रभी उपयोग होवै नहीं। यातैं इन मुमुक्षुजनोंनैं तिन

काम्यकर्मोंका तिस तिस फलसहित स्वरूपतैंही परित्याग करणा। यह तौ इस श्लोकके पूर्वार्धका अर्थ सिद्ध होवैहै। और तिस विविदिषाविषे जैसे नित्यकर्मोंका उपयोग होवैहै तैसे तिस तिस फलकी इच्छातैं रहित काम्यकर्मोंकाभी उपयोग होवैहै। यातैं तिस विविदिषाकी प्राप्तिवासतै तिन काम्यकर्मोंका तथा नित्यकर्मोंका स्वरूपतैं अनुष्ठान कियेहुएभी इस अधिकारी पुरुषनैं तिस तिस कर्मके तिस तिस फलकी इच्छमात्रका परित्याग करणा। यह श्लोकके उत्तरार्धका अर्थ सिद्ध होवैहै। इस कहणेकरिकै यह अर्थ सिद्ध भया–फलसहित काम्यकर्ममात्रका जो त्याग है सो त्याग तौ संन्यासशब्दका अर्थ है। और नित्यकाम्यरूप सर्व कर्मोंके फलकी इच्छामात्रका जो परित्याग है सो त्याग त्यागशब्दका अर्थ है। यातैं जैसे घट पट इन दोनों शब्दोंका भिन्नभिन्न जातिवाला अर्थ होवैहै, तैसे संन्यास त्याग इन दोनों शब्दोंका भिन्नभिन्न जातिवाला अर्थ नहींहै किंतु अंतःकरणकी शुद्धिवासतै स्वरूपतैं कर्मोंके अनुष्ठान हुएभी तिस तिस कर्मके तिस तिस फलकी इच्छाका परित्यागरूप एकही अर्थ तिन दोनों शब्दोंका सिद्ध होवैहै। इसप्रकारतैं इस श्लोककारिकै एक प्रश्नका निर्णय सिद्ध भया॥ २॥

अब द्वितीयप्रश्नके उत्तर कहणेवासतै संन्यासशब्दके अर्थविषे तथा त्यागशब्दके अर्थविषे त्रिविधपणेके निरूपण करणेवासतै प्रथम तिस अर्थविषे वादियोंके विप्रतिपत्तिकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः॥
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे॥ ३॥

(पदच्छेदः) त्याज्यम्। दोषवत्। इति। एके। कर्म। प्राहुः। मनीषिणः। यज्ञदानतपःकर्म। न। त्याज्यम्। इति। च। अपरे॥ ३॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! रागद्वेषादिक दोषकी न्याईं कर्मभी परित्यागकरणेयोग्य हैं इसप्रकार केईक बुद्धिमान् पुरुष कहतेहैं तथा यज्ञदानतपरूप कर्म नहीं त्यागकरणेयोग्य हैं इसप्रकार दूसरे बुद्धिमान् पुरुष कहतेहैं॥ ३॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! नित्य, नैमित्तिक, काम्य, प्रायश्चित्त इत्यादिक सर्वही कर्म इस पुरुषके बंधके हेतु होणेतैं दोषवत् हैं अर्थात् ते सर्वकर्म दोषवाले हैं। यातैं अंतःकरणकी शुद्धितैं रहित कर्मके अधिकारी पुरुषोंनैंभी ते सर्वही कर्म परित्याग

ही करणेयोग्य हैं इसप्रकार केईक बुद्धिमान् पुरुष कहैं हैं । अथवा इस वचनका यह दूसरा अर्थ करणा– जैसे रागद्वेषादिक दोष इस अधिकारी पुरुषनैं परित्याग करणेयोग्य हैं तैसे नहीं उत्पन्नहुआ है आत्मज्ञान जिन्होंकूं तथा नहीं उत्पन्न हुई है विविदिषा जिन्होंकूं ऐसे कर्मोंके अधिकारी पुरुषोंनैंभी आपणे बंधका हेतु जानिकै ते सर्व कर्म परित्यागही करणेयोग्य हैं। यह श्लोकके पूर्वार्धकरिकै एक पक्ष सिद्धभया । अब श्लोकके उत्तरार्धकरिकै द्वितीयपक्ष कथन करैं हैं (यज्ञदानतपःकर्म इति ।) हे अर्जुन ! अंतःकरणकी शुद्धितैं रहित कर्मोंके अधिकारी पुरुषोंनैं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा विविदिषाकी उत्पत्तिवासतै यज्ञदानतपरूप कर्म कदाचित्भी नहीं परित्याग करणे। इसप्रकार केईक दूसरे बुद्धिमान् पुरुष कहैहैं ॥ ३॥

इसप्रकार कर्मोंके परित्यागविषे वादियोंकी विप्रतिपत्तिकूं कथन कारिकै अब श्रीभगवान् आपणे निश्चयकूं कथन करैं हैं–

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ॥
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) निश्चयम् । शृणु । मे । तत्र । त्यागे । भरतसत्तम । त्यागः । हि । पुरुषव्याघ्र । त्रिविधः । संप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे भरतकुलविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! तिस कर्मत्यागविषे हमारे निश्चयकूं तूं श्रवणकर हे सर्वपुरुषोंविषे श्रेष्ठ अर्जुन जिसकारणतैं सो त्याग तीनप्रकारका कथनकऱ्याहै ॥ ४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! अंतःकरणकी शुद्धितैं रहित जो कर्मोंका अधिकारी पुरुष है सो कर्मोंका अधिकारी पुरुष है कर्त्ता जिसका तथा संन्यास त्याग इन दोनों शब्दोंकरिकै प्रतिपादन कऱ्याहुआ ऐसा जो फलकी इच्छापूर्वक कर्मोंका परित्याग है जिस त्यागका स्वरूप पूर्व तुमनैं हमारेसैं पूछा है तिस त्यागविषे पूर्व आचार्योंनैं कऱ्या जो निश्चय है तिस निश्चयकूं तूं अर्जुन मैं परमेश्वरके वचनतैं श्रवण कर । शंका–हे भगवन् ! तिस त्यागविषे ऐसी क्या दुर्विज्ञेयता है जिसकूं मैं आपके वचनतैं श्रवण करूं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस त्यागकी दुर्विज्ञेयताकूं कथन करैं हैं (त्यागो हि इति।) हे अर्जुन ! कर्मोंका अधिकारी पुरुष है कर्त्ता जिसका ऐसा जो फलकी इच्छापूर्वक कर्मोंका त्याग है सो

त्याग जिसकारणतैं वेदवेत्ता पुरुषोंनैं तीनप्रकारका कथन कर्याहै अर्थात् तामस, राजस, सात्त्विक इस भेदकरिकै सो त्याग तीनप्रकारका कथन कर्याहै । अथवा (त्रिविधः संप्रकीर्तितः ।) इस वचनका यह अर्थ करणा—फलकी इच्छारूप विशेषणकरिकै विशिष्ट जो कर्म है तिस इच्छाविशिष्ट कर्मका जो त्याग है सो विशिष्टाभावरूप त्याग विशेषणके अभावतैं अथवा विशेष्यके अभावतैं अथवा विशेषण विशेष्य दोनोंके अभावतैं तीनप्रकारका कथन कर्याहै सो प्रकार दिखावैं हैं । और कहां तौ विशेषणके अभावतैं विशिष्टका अभाव होवैहै । और कहां तौ विशेष्यके अभावतैं विशिष्टका अभाव होवैहै । और कहां तौ विशेषण विशेष्य दोनोंके अभावतैं विशिष्टका अभाव होवै है ।जैसे दंडरूप विशेषणकरिकै विशिष्ट दंडी पुरुषका जो अभाव है सो विशिष्टाभाव कह्या जावै है सो विशिष्टाभाव विशेषणके अभावतैं अथवा विशेष्यके अभावतैं अथवा विशेषण विशेष्य दोनोंके अभावतैं होवै है । तहां जहां पुरुषरूप विशेष्यके विद्यमान हुएभी दंडरूप विशेषणका अभाव होवै है तहांभी दंडीपुरुष नहीं है या प्रकारकी विशिष्टाभावविषयक प्रतीति होवै है । इहां दंडरूप विशेषणके अभावतैं दंडविशिष्टपुरुषका अभाव होवै है । और जहां दंडरूप विशेषणके विद्यमान हुएभी पुरुषरूप विशेष्यका अभाव होवै है तहांभी दंडी पुरुष नहीं है या प्रकारकी विशिष्टाभावविषयक प्रतीति होवै है । इहां पुरुषरूप विशेष्यके अभावतैं दंडविशिष्ट पुरुषका अभाव होवै है । और जहां दंडरूप विशेषणकाभी अभाव होवै है तथा पुरुषरूप विशेष्यकाभी अभाव होवै है तहांभी दंडी पुरुष नहीं है या प्रकारकी विशिष्टाभावविषयक प्रतीति होवै है । इहां दंडरूप विशेषणके तथा पुरुषरूप विशेष्यके दोनोंके अभावतैं दंडविशिष्ट पुरुषका अभाव होवै है । तैसे इहां प्रसंगविषे फलकी इच्छारूप विशेषणकरिकै विशिष्ट जो कर्म है तिस विशिष्ट कर्मका त्यागरूप विशिष्टाभावभी इच्छारूप विशेषणके अभावतैं अथवा कर्मरूप विशेष्यके अभावतैं अथवा इच्छारूप विशेषणके तथा कर्मरूप विशेष्यके दोनोंके अभावतैं तीन प्रकारका होवै है। तहां कर्मरूप विशेष्यके विद्यमान हुएभी फलकी इच्छारूप विशेषणके परित्यागतैं जो इच्छाविशिष्ट कर्मका त्याग है सो इच्छारूप विशेषणके अभावतैं इच्छाविशिष्टकर्मका अभावरूप त्याग है । यह प्रथमत्याग है । और फलकी इच्छारूप विशेषणके विद्यमान हुएभी कर्मरूप विशेष्यका जो परित्याग है सो कर्मरूप विशेष्यके अभावतैं इच्छाविशिष्ट कर्मका अभावरूप त्याग

है। यह दूसरा त्याग है। और फलकी इच्छारूप विशेषणके तथा कर्मरूप विशेष्यके दोनोंके परित्यागतैं जो इच्छाविशिष्ट कर्मका परित्याग है सो विशेषण विशेष्य दोनोंके अभावतैं इच्छाविशिष्टकर्मका अभावरूप त्याग है। यह तीसरा त्याग है। तहां प्रथम कर्मका त्याग तौ सात्त्विक होणेतैं ग्रहण करणेयोग्य है। और दूसरा त्याग तौ राजस, तामस इस भेदकरिकै दो प्रकारका होवै है। सो दोनों प्रकारकाही दूसरा त्याग परित्याग करणे योग्य है। तहां दुःखबुद्धिकरिकै करया हुआ सो कर्मोंका त्याग राजस कह्या जावै है और भ्रांतिरूप विपर्यासकरिकै करया हुआ सो कर्मोंका त्याग तामस कह्या जावै है। इसप्रकारका कर्मके अधिकारी पुरुषनैं करया जो कर्मोंका त्याग है सो त्यागही इहां अर्जुनके प्रश्नका विषय है। और शुद्ध अंतःकरणवाला होणेतैं कर्मोंका अनधिकारी जो पुरुष है सो कर्मोंका अनधिकारी पुरुष है कर्त्ता जिसका ऐसा जो तीसरा गुणातीतनामा त्याग है सो त्याग इहां अर्जुनके प्रश्नका विषय है नहीं। सो गुणातीतनामा कर्मोंका त्यागभी दो प्रकारका होवै है। एकतौ साधनरूप होवै है और दूसरा फलरूप होवै है। तहां फलकी इच्छाके त्यागपूर्वक कर्मोंका अनुष्ठानरूप जो सात्त्विक त्याग है तिस सात्त्विक त्यागकरिकै शुद्ध हुआ है अंतःकरण जिसका तथा उत्पन्नहुई है आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषा जिसकूं तथा आत्मज्ञानके साधनभूत श्रवणमननरूप वेदांतविचारके वासतै स्वर्गादिक सर्व फलोंकी इच्छातैं रहित ऐसा जो अधिकारी पुरुष है ऐसे अधिकारी पुरुषनैं अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर कऱ्या जो तिन शुद्धिके साधनभूत सर्व कर्मोंका परित्याग है सो कर्मोंका परित्याग तौ प्रथम साधनरूप त्याग कह्या जावै है। इसी साधनरूप त्यागकूं शास्त्रवेत्ता पुरुष विविदिषासंन्यास कहैं हैं। इसी साधनरूप विविदिषा संन्यासकूं श्रीभगवान् आगे (नैष्कर्म्यसिद्धिं परमाम्) इस वचनकरिकै कथन करैंगे। और जन्मांतरोंविषे कऱ्या जो श्रवणादिक साधनोंका अभ्यास है तिस अभ्यासके परिपाकतैं इस जन्मविषे प्रथम ही उत्पन्नहुआ है आत्मसाक्षात्कार जिसकूं ऐसा जो कृतकृत्य विद्वान् पुरुष है ऐसे विद्वान् पुरुषनैं स्वतः ही कऱ्या जो फलकी इच्छाका तथा कर्मोंका परित्याग है सो कर्मोंका परित्याग दूसरा फलरूप त्याग कह्या जावै है। इसी फलरूप त्यागकूं शास्त्रवेत्ता पुरुष विद्वत्संन्यास कहैं हैं। सो फलभूत विद्वत्संन्यास श्रीभगवाननैं (यस्त्वात्मरतिरेव स्यात्) इत्यादिक दो श्लोकोंकरिकै पूर्व व्याख्यान कऱ्या। तथा स्थितप्रज्ञ

पुरुषके लक्षणादिकोंकरिकैभी पूर्व बहुत विस्तारतैं कथन करयाहै इति । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं इस पूर्वउक्त रीतितैं त्यागका स्वरूप अत्यंत दुर्विज्ञेय है । और तुमनैं (त्यागस्य तत्त्वं वेदितुमिच्छामि) इस वचनकरिकै पूर्व त्यागके स्वरूप जानणेकी प्रार्थना करी है । तिस कारणतैं मैं सर्वज्ञपरमेश्वरके वचनतैं ही तिस त्यागके यथार्थ स्वरूपकूं तूं अर्जुन निश्चय कर इति । इहां (हे भरतसत्तम हे पुरुषव्याघ्र) इन दो संबोधनोंकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे यथाक्रमतैं कुलनिमित्तक उत्कर्ष तथा स्वपौरुषनिमित्तक उत्कर्ष कथन कऱ्या ताकरिकै तिस अर्जुनविषे तिस त्यागके स्वरूपनिश्चय करणेकी योग्यता सूचन करी ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! (त्याज्यं दोषवदित्येके) इस श्लोकविषे कथन करी जा वादियोंकी विप्रतिपत्ति है तिस विप्रतिपत्तिके कोटिभूत दोनों पक्षोंविषे कौन आपका निश्चय है ? क्या प्रथमपक्ष आपका निश्चय है अथवा द्वितीयपक्ष आपका निश्चय है । अथवा इन दोनों पक्षोंतैं भिन्न कोई तीसरा ही पक्ष आपका निश्चय है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए (यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ।) इस वचन करिकै कथन कऱ्या जो द्वितीयपक्ष है सो द्वितीयपक्ष ही हमारा निश्चय है । इस प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै कथन करैंहैं-

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ॥
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) यज्ञदानतपःकर्म । न । त्याज्यम् । कार्यम् । एवं तत् । यज्ञः । दानम् । तपः । च । एव । पावनानि । मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यज्ञदानतपरूप कर्म नहीं त्यागकरणे योग्य है किंतु सो कर्म करणेयोग्य ही है जिसकारणतैं यज्ञ दान तप यह तीनों फलकी इच्छातैं रहित पुरुषोंकूं पावनकरणेहारे ही हैं ॥ ५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! श्रौतस्मार्त्तरूप जो अग्निहोत्रादिरूप यज्ञ है । तथा उत्तम देशकालविषे सुपात्रके ताईं शास्त्रके विधिप्रमाण जो गौ, सुवर्ण, अन्नादिक पदार्थोंका दान है । तथा कृच्छ्रचांद्रायणादिरूप जो तप है । इहां यज्ञ, दान, तप यह तीनों कर्म ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ इन तीनों आश्रमोंके शास्त्रविहित सर्व कर्मोंके उपलक्षण हैं ऐसे यज्ञदानतपरूप कर्म तिन यज्ञादिक कर्मोंके स्वर्गादिक फलकी इच्छातैं

रहित पुरुषोंकूं पावन करणेहारे हैं। अर्थात् ते यज्ञदानतपरूप कर्म ज्ञानके प्रतिबंधक पापरूप मलकी निवृत्तिकरिकै तथा ज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यतारूप पुण्यगुणका आधानकरिकै फलकी इच्छातैं रहित पुरुषोंके शोधक ही होवैं हैं। इहां अंतःकरणरूप उपाधिकी शुद्धिकरिकै ही तिस अंतःकरणउपहित पुरुषोंकी शुद्धि भगवान्कूं अभिप्रेत है। हे अर्जुन ! जिस कारणतैं ते यज्ञदानतपरूप कर्म फलकी इच्छातैं रहित पुरुषके अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे हैं तिस कारणतैं अंतःकरणके शुद्धिकी इच्छावान् कर्मके अधिकारी पुरुषनैं फलकी इच्छातैं रहित यज्ञदानतपरूप कर्म कदाचित्भी परित्याग करणे नहीं। किंतु ते यज्ञदानतपरूप कर्म अवश्यकरिकै करणे। यद्यपि (न त्याज्यम्) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं यज्ञदानतपरूप कर्मका अत्यागपणा कथन कऱ्या। ता अत्यागपणेकरिकै ही अर्थतैं तिन यज्ञदानादिक कर्मोंकी कर्तव्यता प्राप्त होवै है। यातैं पुनः (कार्यमेव तत्) इस वचनकरिकै तिन यज्ञदानादिक कर्मोंकी कर्त्तव्यता कथन करणी संभवती नहीं। तथापि तिस यज्ञदानादिरूप कर्मोंकी कर्त्तव्यताके अत्यंत आदरवासतै श्रीभगवान्नैं पुनः (कार्यमेव तत्) यह वचन कथन कऱ्या है। अथवा (यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्) इस वचनका या प्रकारतैं अर्थ करणा— जिस कारणतैं यज्ञदानतपरूप कर्म कार्य है अर्थात् कर्त्तव्यतारूपकरिकै वेदनैं विधान कऱ्या है। तिस कारणतैं सो यज्ञदानतपरूप कर्म इस अधिकारी पुरुषनैं कदाचित्भी नहीं त्याग करणा ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! यज्ञदानतपरूप कर्मोंका जो कदाचित् अंतःकरणकी शुद्धि करणेविषे सामर्थ्य होवै तौ स्वर्गादिक फलकी इच्छाकरिकै करेहुएभी ते यज्ञदानतपरूप कर्म तिस अंतःकरणके शोधक होवैंगे। यातैं फलकी इच्छाका परित्याग करणा व्यर्थही है। ऐसी अर्जुनकी शंका हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ॥
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) एतानि[1]। अपि[2]। तु[3]। कर्माणि[4]। संगम्[5]। त्यक्त्वा[6]। फलानि[7]। च[8]। कर्तव्यानि[9]। इति[10]। मे[12]। पार्थ[11]। निश्चितम्[13]। मतम्[14]। उत्तमम्[15] ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! पुनः यहपूर्वउक्त यज्ञदानादिक कर्म भी कर्तृत्वअभिमानकूं तथा स्वर्गादिक फलोंकूं परित्यागकरिकै करणेयोग्य हैं इस प्रकारका मैं परमेश्वरका निश्चित श्रेष्ठ मतहै ॥ ६ ॥

भा० टी०–इहां (एतान्यपि तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वउक्त शंकाके निवृत्त करणेवास्तै है। हे अर्जुन ! यद्यपि काम्यकर्मभी आपणे धर्मस्वभावतैं इस पुरुषके अंतःकरणकी शुद्धि करैंहैं तथापि सा काम्यकर्मजन्य अंतःकरणकी शुद्धि तिन काम्यकर्मोंके सुखरूप फलके भोगमात्रविषेही उपयोगी होवै है। सा अंतःकरणकी शुद्धि आत्मज्ञानविषे किंचित्मात्रभी उपयोगी होवै नहीं। यह वार्त्ता वार्त्तिकग्रंथके कर्त्ता श्रीसुरेश्वराचार्यनैंभी कथन करीहै। तहां श्लोक–(काम्येपि शुद्धिरस्त्येव भोगसिद्ध्यर्थमेव सा। विड्वराहादिदेहेन न ह्यैंद्रं भुज्यते फलम् ॥) अर्थ यह–काम्यकर्मोंके कियेहुएभी अंतःकरणकी शुद्धि तौ होवैहै परंतु सा काम्यकर्मजन्य अंतःकरणकी शुद्धि केवल भोगकी सिद्धिवास्तै ही होवैहै ज्ञानकी उत्पत्तिवास्तै होवै नहीं। जिस कारणतैं इंद्रसंबंधी सुखरूप फल मलिन अंतःकरणवाले विड्वराहादिक देहकरिकै भोग्या जाता नहीं किंतु शुद्ध अंतःकरणवाले देवदेहकरिकै ही सो फल भोग्याजावै है इति। और जे यज्ञदानतपादिक कर्म ज्ञानविषे उपयोगी अंतःकरणकी शुद्धिकूं करैं हैं ते यज्ञदानादि कर्म स्वर्गादिकफलकी इच्छापूर्वक करे हुए बंधके हेतुरूप हुएभी फलकी इच्छातैं विना करेहुए ते यज्ञदानादिक कर्म बंधके हेतुरूप होवैं नहीं। यातैं मुमुक्षुजनोंनैं फलकी इच्छापूर्वक ते यज्ञदानादिक कर्म करणे नहीं किंतु मुमुक्षुजनोंनैं संगकूं तथा फलोंकूं परित्याग करिकै ही ते कर्म करणे योग्य हैं। तहां यौवनादिक अवस्था तथा ब्राह्मणादिक वर्ण तथा गृहस्थादिक आश्रम इत्यादिक हैं निमित्त जिसविषे ऐसा जो मैं इन कर्मोंका कर्त्ता हूं मैंने यह कर्म अवश्य करणेयोग्य है, या प्रकारका कर्तृत्व अभिमान है ताका नाम संग है। और कामनाके विषयभूत जे तिस तिस कर्मकरिकै प्राप्तहोणेहारे स्वर्गादिक पदार्थ हैं तिनोंका नाम फल है। ऐसे संगकूं तथा फलोंकूं परित्यागकरिकै इस अधिकारी पुरुषनैं अंतःकरणकी शुद्धिवास्तैंही ते यज्ञदानादिक कर्म करणे योग्य हैं। इस प्रकारका मैं भगवान्का निश्चित मत है। इसी कारणतैं ही हे पार्थ ! कर्मके अधिकारी पुरुषोंनैं ते यज्ञदानादिक कर्म त्यागकरणे योग्य हैं अथवा नहीं त्यागकरणे योग्य हैं इन दोनों

मतोंविषे ते कर्म नहीं त्याग करणे योग्य हैं इस प्रकारका मैं भगवान्का मत अत्यंत श्रेष्ठ है। तहां श्रीभगवान्नैं पूर्व (निश्चयं शृणु मे तत्र) इस वचनकरिकै जो आपणा निश्चय कथन कऱ्याथा सो आपणा निश्चय इस श्लोकविषे उपसंहार कऱ्या ॥ ६ ॥

तहां (यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं पूर्व कथन कऱ्या जो आपणा पक्ष था सो आपणा पक्ष इतनेपर्यंत स्थापन कऱ्या। अब (त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।) इस वचनकरिकै पूर्व कथन कऱ्या जो परपक्ष था तिस परपक्षके पूर्वउक्त त्यागके त्रिविधपणेके व्याख्यानकरिकै निषेधकरणेका आरंभ करैं हैं–

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते॥
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः॥ ७॥

(पदच्छेदः) नियतस्य। तु। संन्यासः। कर्मणः। न। उपपद्यते। मोहात्। तस्य। परित्यागः। तामसः। परिकीर्तितः॥ ७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः कर्मका त्याग नहीं संभवैहै तिस नित्यकर्मका मोहतैं परित्याग तामसत्याग कथन कऱ्या है॥ ७॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! स्वर्गादिक फलकी इच्छापूर्वक करे जे काम्यकर्म हैं ते काम्यकर्म अंतःकरणकी शुद्धिके हेतु होवैं नहीं उलटा ते काम्यकर्म इस पुरुषके बंधके ही हेतु होवैं हैं। यातैं ते काम्यकर्म दोषवाले ही हैं। इसी कारणतैं ही बंधकी निवृत्तिका कारणरूप जो आत्मज्ञान है तिस आत्मज्ञानकी इच्छावान् पुरुषनैं कऱ्याहुआ जो तिन काम्यकर्मोंका त्याग है सो त्याग तौ शास्त्रकरिकै तथा युक्तिकरिकै संभवताही है परंतु अंतःकरणकी शुद्धिके हेतु होणेतैं दोषतैं रहित ऐसे जे श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रविहित अग्निहोत्रसंध्योपासनादिक नित्यकर्म हैं ऐसे नित्यकर्मोंका त्याग करणा अंतःकरणके शुद्धिकी इच्छावान् मुमुक्षुजनोंकूं शास्त्रकरिकै तथा युक्तिकरिकै संभवता नहीं। किंतु अंतःकरणकी शुद्धिवासतै मुमुक्षुजनोंनैं तिन नित्यकर्मोंका अवश्यकरिकै अनुष्ठान करणा। यह अर्थ (आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।) इस वचनकरिकै पूर्वभी प्रतिपादन करिआये हैं। हे अर्जुन ! ऐसे अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे नित्यकर्मोंका जो मोहके वश-

तैं परित्याग है सो परित्याग तामसत्याग कह्या जावै है। तहां वेदविहित तिन नित्यकर्मविषे जो निषिद्धपणेका ज्ञान है। तथा अनर्थके हेतुरूप तिन कर्मोंविषे जो अनर्थके हेतुपणेका ज्ञान है तथा धर्मरूप तिन कर्मोंविषे जो अधर्मपणेका ज्ञान हैं। तथा अनुष्ठान करणेयोग्य तिन कर्मोंविषे जो नहीं अनुष्ठानपणेका ज्ञान है इसप्रकारका भ्रांतिज्ञानरूप जो विपर्यास है ताका नाम मोह है। ऐसे मोहके वशतैं जो तिन नित्यकर्मोंका परित्याग है सो परित्याग तामसत्याग कह्या जावैहै इति। सो इसप्रकारका विपर्यासरूप मोह सांख्यशास्त्रवाले पुरुषोंकूं होवैहै। तहां तिन सांख्ययोंका यह अभिप्राय है। जैसे काम्यकर्म दोषवाले होवैं हैं तैसे अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, ज्योतिष्टोम इत्यादिक नित्यकर्मभी दोषवाले ही होवैं हैं। काहेतैं तिन नित्यकर्मोंविषेभी व्रीहिआदिकोंके कूटणेकरिकै तथा यज्ञ-शालाके मार्जनकरिकै तथा अग्निविषे होम करणेकरिकै जीवोंकी हिंसा होवैहै तथा पशुवोंकी हिंसा होवैहै यातैं ते नित्यकर्मभी हिंसारूप दोषवाले होणेतैं काम्यकर्मोंकी न्याईं दुष्ट ही हैं। और (न हिंस्यात्सर्वाभूतानि) इस श्रुतिनैं सर्वभूतोंकी हिंसाका निषेध कऱ्या है। यातैं यज्ञविषे जो पशुकी हिंसा है सा हिं-साभी निषिद्ध ही है। और अंतःकरणकी शुद्धि तौ तिन हिंसाप्रधान नित्यकर्मों-तैं विना गायत्री आदिक मंत्रोंके जपकरिकै ही होइसकै है। यह वार्त्ता महाभा-रतविषेभी कथन करीहै। तहां श्लोक-(जपस्तु सर्वधर्मेभ्यः परमो धर्म उच्यते। अहिंसया हि भूतानां जपयज्ञः प्रवर्त्तते।) अर्थ यह-गायत्रीमंत्रादिकोंका जो जप है सो जप तौ सर्वधर्मोंतैं परमधर्म कह्याजावैहै। काहेतैं जपयज्ञतैं भिन्न जितनेक ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ हैं ते सर्व यज्ञ भूतोंकी हिंसाकरिकै ही प्रवृत्त होवैं हैं। और यह जपयज्ञ तौ भूतोंकी अहिंसाकरिकै ही प्रवृत्त होवै है। इस कारण-तैं यह जपयज्ञ सर्वधर्मोंतैं परमधर्म कह्याजावैहै इति। यह वार्त्ता मनुनैंभी कथन करी है। तहां श्लोक-(जाप्येनैव तु संसिद्धयेद्ब्राह्मणो नात्र संशयः। कुर्यादन्य-न्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते॥) अर्थ यह-गायत्रीमंत्रादिकोंके जपकरिकै ही ब्राह्मण अंतःकरणके शुद्धिकूं प्राप्त होवै है। इस अर्थविषे किंचित्‌मात्रभी संशय नहीं है। तिस अंतःकरणकी शुद्धिवासतै यह अधिकारी पुरुष दूसरे किसी कर्मकूं करे अथवा नहीं करै। और अहिंसारूप मैत्रीवाला पुरुष ही ब्राह्मण कह्या जावै है इति। इत्यादिक शास्त्रके वचनोंनैं हिंसादोषवाले नित्यकर्मोंका

निषेधकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिवासतै गायत्रीमंत्रादिकोंके जपकाही विधान कऱ्या है । यातैं अंतःकरणकी शुद्धितें रहित कर्मके अधिकारी पुरुषोंनैंभी ते यज्ञादिक नित्यकर्म परित्यागही करणे इति । सो यह सांख्यियोंका कहणा अत्यंत विरुद्ध है । काहेतैं यज्ञविषे जो पशुआदिकोंकी हिंसा है सा हिंसा इस पुरुषके अनर्थका हेतु नहीं है किंतु यज्ञतैं विना जो पशुआदिकोंकी हिंसा है सा हिंसा ही इस पुरुषके अनर्थका हेतु होवै है । और (न हिंस्यात्सर्वाभूतानि) यह श्रुतिवचन जो भूतोंकी हिंसाका निषेध करैहै सोभी यज्ञ युद्धादिकोंतैं विना जीवोंके हिंसाका निषेध करैहै । जो कदाचित् (न हिंस्यात्सर्वाभूतानि) यह वचन सर्वहिंसामात्रका निषेध करता होवै तो (अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) इत्यादिक वेदके वचन जे यज्ञविषे पशुहिंसाका विधान करैं हैं ते सर्व वचन व्यर्थ होवैंगे सो वेदके वचनोंकूं व्यर्थ कहणा अत्यंत विरुद्ध है । यातैं तिन दोनोंप्रकारके वचनका परस्पर उत्सर्ग अपवादभाव मानिकै व्यवस्था करणी ही उचित है । (न हिंस्यात्सर्वाभूतानि) यह वचन तौ उत्सर्ग है । और (अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) यह वचन ता उत्सर्गका अपवाद है ता अपवादस्थलकूं छोडिकै ही अन्यत्र ता उत्सर्गवचनकी प्रवृत्ति होवै है अर्थात् यज्ञयुद्धादिकोंतैं विना इस पुरुषनैं किसी जीवकी हिंसा नहीं करणी इस प्रकारका तिस उत्सर्गवचनका अर्थ सिद्ध होवै है । यातैं शास्त्रविहित यज्ञसंबंधी हिंसा दोषरूप नहीं है । और पूर्वउक्त महाभारतका वचन तथा मनुका वचन तौ केवल जपयज्ञकी स्तुतिपर है कोई सो वचन यज्ञसंबंधी हिंसाविषे अधर्मपणेकूं बोधन करता नहीं । काहेतैं यह यज्ञसंबंधी हिंसा अधर्मरूप है इस अर्थविषे तिस वचनका तात्पर्य है नहीं किंतु केवल जपकी स्तुतिविषे ही तिस वचनका तात्पर्य है । और जिस वचनका जिस अर्थविषे तात्पर्य होवै है तिस वचनका सोईही अर्थ होवै है। यातैं सांख्यियोंकूं वेदविहित अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य इत्यादिक नित्यकर्मोंविषे जो निषिद्धपणेका ज्ञान है। तथा अनर्थके अहेतुरूप तिन कर्मोंविषे जो अनर्थके हेतुपणेका ज्ञानहै । तथा धर्मरूप तिन कर्मोंविषे जो अधर्मपणेका ज्ञान है। तथा अनुष्ठानकरणे योग्य तिन कर्मोंविषे जो नहीं अनुष्ठान करणेका ज्ञान है सो यह सर्वविपर्यासरूप ज्ञान मोहरूप ही है ऐसे मोहके वशतैं जो नित्यकर्मोंका परित्याग है सो परित्याग तामसत्याग कह्याजावै है । जिस कारणतैं मोहतमरूप ही है ॥ ७ ॥

इस प्रकार तामसत्यागके स्वरूपकूं कथन करिकै अब श्रीभगवान् राजसत्यागके स्वरूपकूं कथन करैं हैं–

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ॥
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) दुःखम् । इति । एव । यत् । कर्म । कायक्लेशभयात् । त्यजेत् । सः । कृत्वा । राजसम् । त्यागम् । न । एव । त्यागफलम् । लभेत् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह कर्म दुःखरूप ही है इसप्रकारमानिकै शरीरके क्लेशके भयतैं नित्यकर्मकूं त्यागकरणा ऐसा जो त्याग सो त्याग राजस है ऐसे राजस त्यागकूं करिकै सोपुरुष त्यागके फलकूं कदाचितभी नहीं प्राप्त होता ॥ ८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्वउक्त मोहके अभाव हुएभी जिस पुरुषका अंतःकरण शुद्ध नहीं हुआ ऐसा जो कर्मोंका अधिकारी पुरुष है सो कर्मोंका अधिकारी पुरुष यह अग्निहोत्र संध्याउपासनादिक सर्व नित्यकर्म दुःखरूप ही हैं, या प्रकारतैं तिन नित्यकर्मोंकूं दुःखरूप मानिकै तथा तिन नित्यकर्मोंके करणेकरिकै जो शरीरविषे क्लेश होवैहै तिस क्लेशके भयतैं तिन नित्यकर्मोंका जो परित्याग करैहै सो कर्मोंका त्याग राजसत्याग कह्या जावैहै । जिस कारणतैं सो दुःख रजोगुणरूपही होवैहै । इस कारणतैं पूर्वउक्त मोहतैं रहित हुआभी सो राजस पुरुष तिस राजसत्यागकूं करिकै त्यागके फलकूं प्राप्त होता नहीं अर्थात् वक्ष्यमाण सात्त्विक त्यागका जो ज्ञाननिष्ठारूप फल है तिस फलकूं सो राजसत्यागवाला पुरुष प्राप्त होता नहीं ॥ ८ ॥

तहां पूर्व दो श्लोकोंकरिकै नित्यकर्मोंका तामसत्याग तथा राजसत्याग परित्याज्यतारूप करिकै दिखाया । यातैं तिस तामस राजस त्यागका परित्यागकरिकै इस अधिकारी पुरुषनैं कौन कर्मोंका त्याग अंगीकार करणेयोग्य है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए इस अधिकारी पुरुषनैं सात्त्विकत्याग ही ग्रहण करणेयोग्य है । इस अर्थकूं कथन करतेहुये श्रीभगवान् ता सात्त्विकत्यागके स्वरूपकूं कथन करैं हैं–

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ॥
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) कार्यम्। इति। एव। यत्। कर्म। नियतम्। क्रियते। अर्जुन। संगम्। त्यक्त्वा। फलम्। च। एव। सः। त्यागः। सात्त्विकः। मतः॥ ९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! यह कर्म करणेयोग्य ही है इसप्रकारमानिकै जो नित्य कर्म संगकूं तथा फलकूं त्यागकरिकै ही करीताहै सो त्याग शिष्टपुरुषोंनैं सात्त्विक मान्या है॥ ९॥

भा०टी०-हे अर्जुन! अग्निहोत्र संध्याउपासना इत्यादिक नित्यकर्मोंका विधान करणेहारे जे (अग्निहोत्रं जुहोति अहरहः संध्यामुपासीत।) इत्यादिक वचन हैं तिन वचनोंविषे यद्यपि तिन नित्यकर्मोंका फल कथन कन्या नहीं तथापि वेदविहित होणेतैं यह नित्यकर्म हमारेकूं अवश्यकरिकै करणेयोग्य हैं, इस प्रकारका निश्चयकरिकै तिन नित्यकर्मोंके कर्तृत्वअभिनिवेशरूप संगकूं तथा स्वर्गादिक फलकूं परित्यागकरिकै इस अधिकारीपुरुषनैं आपणे अंतःकरणकी शुद्धिपर्यंत जो अग्निहोत्र संध्याउपासनादिक नित्यकर्म करीता है सो त्याग शिष्टपुरुषोंनैं सात्त्विक ही मान्या है अर्थात् फलकी इच्छाके त्यागपूर्वक तथा कर्तृत्वअभिमानके त्यागपूर्वक सो नित्यकर्मोंका अनुष्ठानरूप सात्त्विक त्याग शिष्टपुरुषोंकूं अंतःकरणकी शुद्धिवासतै ग्राह्यतारूपकरिकै अभिमत है। पूर्वउक्त राजस तामस त्यागकी न्याईं परित्याज्यतारूपकरिकै अभिमत नहीं है। शंका-(स्वर्गकामो यजेत। पुत्रकामो यजेत। पशुकामो यजेत।) इत्यादिक वचनोंनैं जैसे स्वर्गपुत्रपशुआदिक फलोंका उद्देशकरिकै काम्यकर्मोंका विधान कन्या है तैसे नित्यकर्मोंके विधान करणेहारे वचनोंनैं स्वर्गादिक फलोंका उद्देशकरिकै तिन नित्यकर्मोंका विधान कन्या नहीं यातैं यह जान्याजावैहै। तिन नित्यकर्मोंका कोई फलही है नहीं यातैं (फलं त्यक्त्वा) या प्रकारका वचन भगवान्नैं कैसे कह्या है। समाधान-यद्यपि नित्यकर्मोंके विधान करणेहारे वचनोंनैं स्वर्गादिक फलोंका उद्देशकरिकै तिन नित्यकर्मोंका विधान कन्या नहीं तथापि तिन नित्यकर्मोंका कोई फल अवश्य अंगीकार कन्या चाहिये। जो नित्यकर्मोंका फल नहीं अंगीकार करिये तौ (फलं त्यक्त्वा) यह भगवान्का वचन ही असंगत होवैगा। काहेतैं प्राप्तवास्तुकाही निषेध होवै है अप्राप्तवस्तुका निषेध होता नहीं। जो कदाचित् नित्यकर्मोंका कोई फल नहीं होता तौ (फलं त्यक्त्वा) इस वचनकरिकै श्रीभगवान् तिन नित्यकर्मोंके फलका

निषेध नहीं करते यातैं तिन नित्यकर्मोंकाभी कोई फल है यह अर्थ (फलं त्यक्त्वा) इस भगवान्के वचनतैं ही जान्या जावै है । किंवा शास्त्रकारोंनैं या प्रकारका न्याय कथन कऱ्या है । (प्रयोजनमनुद्दिश्य न मंदोपि प्रवर्त्तते ।) अर्थ यह—फलरूप प्रयोजनका नहीं उद्देशकरिकै मूढपुरुषभी किसी कार्यविषे प्रवृत्त होता नहीं तौ बुद्धिमान् पुरुष तिस प्रयोजनके उद्देशतैं विना कार्यविषे कैसे प्रवृत्त होवैगा किंतु नहीं प्रवृत्त होवैगा इति । यातैं तिन नित्यकर्मोंका जो कोईभी फल नहीं अंगीकार करिये तौ तिन निष्फल नित्यकर्मोंविषे कोईभी पुरुष प्रवृत्त होवैगा नहीं । या कारणतैंभी तिन नित्यकर्मोंका कोई फल अंगीकार कऱ्या चाहिये । किंवा आपस्तंब ऋषिनैंभी तिन नित्यकर्मोंका फल कथन कऱ्या है । तहां ऋषिवचन—(तद्यथाम्रे फलार्थे निर्मिते छायागंध इत्यनूत्पद्यते । एवं धर्मचर्यमाणमर्था अनूत्पद्यन्ते) अर्थ यह—जैसे जिस पुरुषनैं आम्रफलोंकी प्राप्तिवासतै आम्रका वृक्ष लगायाहै तिस पुरुषकूं तिस आम्रवृक्षके छायासुगंधरूप आनुषंगिक फल अवश्यकरिकै प्राप्त होवैं हैं । तैसे जिस पुरुषनैं स्वधर्म जानिकै नित्यकर्मोंका अनुष्ठान कऱ्या है तिस पुरुषकूं तिन नित्यकर्मोंके स्वर्गादिरूप आनुषंगिक फल अवश्यकरिकै प्राप्त होवैं हैं । तहां महान् फलकी प्राप्तितैं पूर्व इच्छातैं विनाही जो फल प्राप्त होवै है ताकूं आनुषंगिकफल कहैं हैं । तहां अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानकी प्राप्तिकरिकै जो मोक्षकी प्राप्ति है यह ही तिन नित्यकर्मोंका महान् फल है सो महान् फल जबपर्यंत इस पुरुषकूं नहीं प्राप्त होवै है तबपर्यंत इस पुरुषकूं तिन नित्यकर्मोंके वशतैं स्वर्गादिक आनुषंगिक फल अवश्यकरिकै प्राप्त होवैं हैं इति । इस आपस्तंबऋषिके वचनतैंभी तिन नित्यकर्मोंका फल सिद्ध होवै है । किंवा जिन अग्निहोत्र संध्याउपासनाआदिक नित्यकर्मोंके नहीं करणेकरिकै जे प्रत्यवाय उत्पन्न होवैं हैं तिन नित्यकर्मोंके करणेकरिकै ते प्रत्यवाय उत्पन्न होवैं नहीं । यातैं प्रत्यवायकी निवृत्तिभी तिन नित्यकर्मोंकाही फल है । तहां नित्यकर्मोंके नहीं करणेकरिकै इस कधिकारी पुरुषकूं प्रत्यवायकी प्राप्ति श्रुतिविषे तथा स्मृतिविषे कथन करी है । तहां श्रुति—(अकृत्वा वैदिकं नित्यं प्रत्यवायी भवेन्नरः ।) अर्थ यह—वेदप्रतिपादित अग्निहोत्र संध्याउपासनादिक नित्यकर्मोंकूं न करिकै यह अधिकारी पुरुष पापरूप प्रत्यवायकूं प्राप्त होवैहै इति । तहां स्मृतिवचन-(श्रौतं चापि तथा स्मार्तं कर्मालंब्य वसेद्विजः । तद्विहीनः पतत्येव ह्यालंब-

रहितांधवत् ॥) अर्थ यह—श्रौतनित्यकर्मोंकूं तथा स्मार्त्तनित्यकर्मोंकूं आश्रयण करिकैही यह द्विज स्थित होवै । तिन श्रौतस्मार्त्तकर्मोंतैं रहित हुआ यह द्विज अवश्यकरिकै अधःपतन होवै। जैसे यष्टिकादिक आलंबनतैं रहित अंधपुरुष गर्तविषे पतन होवैहै इति । अन्य स्मृति—(एकाहं जपहीनस्तु संध्याहीनो दिनत्रयम् । द्वादशाहमनग्निश्च शूद्र एव न संशयः ॥) अर्थ यह— जो अधिकारी ब्राह्मण एकदिनपर्यंत जपतैं रहित है तथा तीन दिनपर्यंत संध्यातैं रहित है तथा द्वादशदिनपर्यंत अग्निहोत्रतैं रहित है सो ब्राह्मण शूद्रही जानणा । इस अर्थविषे किंचित्मात्रभी संशय नहीं है इति। अन्य स्मृति—(त्र्यहं संध्याविरहितो द्वादशाहं निरग्निकः । चतुर्वेदधरो विप्रः शूद्र एव न संशयः ॥) अर्थ यह—जो ब्राह्मण तीनदिनपर्यंत संध्योपासनतैं रहित है तथा द्वादशदिनपर्यंत अग्निहोत्रतैं रहित है सो ब्राह्मण च्यारिवेदोंका पाठक हुआभी शूद्रही जानणा । इस अर्थविषे किंचित्मात्रभी संशय नहीं है इति । अन्य स्मृति—(तस्मान्न लंघयेत्संध्यां सायंप्रातः समाहितः । उल्लंघयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ॥) अर्थ यह—जिस कारणतैं संध्याके उल्लंघन करणेतैं इस ब्राह्मणविषे शूद्रभावकी प्राप्ति होवै है, तिस कारणतैं यह अधिकारी ब्राह्मण तिस संध्याकूं कदाचित्भी उल्लंघन नहीं करै किंतु सायंकालविषे तथा प्रातःकालविषे यह ब्राह्मण सावधान होइकै तिन संध्याकूं करै। जो ब्राह्मण प्रमादके वशतैं तिस संध्याका परित्याग करैहै सो ब्राह्मण निश्चयकरिकै नरककूं प्राप्त होवै है इति । इत्यादिक श्रुतिस्मृतिवचनोंनैं अग्निहोत्र संध्योपासनादिक नित्यकर्मोंके नहीं करणेतैं इस अधिकारी पुरुषकूं प्रत्यवायकी प्राप्ति कथन करीहै । और (धर्मेण पापमपनुदति तस्माद्धर्मं परमं वदंति । अर्थ यह—यह अधिकारी पुरुष अग्निहोत्रादिक नित्यधर्मकरिकै प्रतिबंधकपापोंकू निवृत्त करैहै, तिस कारणतैं वेदवेत्ता पुरुष इस नित्यधर्मकूं परमधर्म कहैहैं इति। इत्यादिक श्रुतिवचनोंनैं ज्ञानके प्रतिबंधकपापोंकी निवृत्तिरूप तथा ज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यतारूप पुण्यकी उत्पत्तिरूप आत्मसंस्कारही तिन नित्यकर्मोंका फल कथन कऱ्या है। और किसी शास्त्रविषे तौ संध्योपासनरूप नित्यकर्मका ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप फल कथन कऱ्या है । तहां श्लोक—(संध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः । विधूतपापास्ते यांति ब्रह्मलोकमनामयम् ।) अर्थ यह—जे अधिकारी पुरुष दृढव्रतवाले हुए संध्याकूं उपासना करैहैं ते पुरुष सर्वपापोंतैं रहित होइकै ब्रह्म-

लोककूं प्राप्त होवैंहैं इति। इस प्रकारतैं श्रुतिस्मृति आदिक शास्त्रोंविषे तिन नित्यकर्मोंका भी फल कथन कऱ्याहै। तिस फलकी इच्छाका परित्याग करिकैही इस अधिकारी पुरुषनैं ते नित्यकर्म करणे इसी अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान्नैं इहां (फलं त्यक्त्वा) इस वचनकरिकै तिन नित्यकर्मोंके फलका परित्याग कथन कऱ्या है। यातैं श्रीभगवान्के वचनविषे किंचित्मात्रभी विरोधकी शंका संभवती नहीं इति। किंवा त्याग संन्यास यह दोनों शब्द घट पट इन दोनों शब्दोंकी न्याईं भिन्न भिन्न जातिवाले अर्थके वाचक नहींहैं किंतु फलकी इच्छापूर्वक जे कर्म हैं तिन कर्मोंका त्यागही तिन दोनों शब्दोंका अर्थ है। यह जो अर्थ पूर्व कथन कऱ्याथा तिस अर्थकाभी इहां विस्मरण करणा नहीं। तहां फलकी इच्छाके विद्यमान हुएभी पूर्वउक्त मोहके वशतैं अथवा शरीरके क्लेशके भयतैं जो नित्यकर्मोंका परित्याग है सो त्याग तौ कर्मरूप विशेष्यके अभावकृत विशिष्टाभावरूप है सो विशेष्याभावप्रयुक्त विशिष्टाभावरूप त्याग तामसपणेकरिकै तथा राजसपणेकरिकै पूर्व निंदन कऱ्याथा और नित्यकर्मोंके विद्यमान हुएभी तिन कर्मोंके फलकी इच्छाका जो परित्याग है सो त्याग फलकी इच्छारूप विशेषणके अभावकृत विशिष्टाभावरूप है। सो विशेषणाभावप्रयुक्त विशिष्टाभावरूप त्याग सात्त्विकपणेकरिकै स्तुति कऱ्या जावै है। इसप्रकार विशेष्यके अभावकृत विशिष्टाभावविषे तथा विशेषणके अभावकृत विशिष्टाभावविषे विशिष्टाभावपणा तुल्यही है यातैं श्रीभगवान्के पूर्व अपरवचनोंका विरोध होवैनहीं। और फलकी इच्छारूप विशेषणके तथा कर्मरूप विशेष्यके दोनोंके अभावकृत जो विशिष्टाभावरूप कर्मोंका त्याग है सो त्याग तौ सत्त्वादिक तीन गुणोंतैं रहित होणेतैं निर्गुणरूपही है। यातैं सो निर्गुण त्याग सात्त्विक, राजस, तामस इन तीनप्रकारके त्यागविषे गण्या जावैनहीं इति। इतने कहणेकरिकै इसप्रकारके दोषकीभी निवृत्ति करी। सो दोष यह है--तहां (त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः।) इस वचनकरिकै प्रथम तीन प्रकारके त्यागकी प्रतिज्ञा करिकै तिसतैं अनंतर दो प्रकारके कर्मत्यागकूं कथन करिकै पश्चात् तिस प्रतिज्ञाके प्रतिकूल कर्मके अनुष्ठानरूप तीसरे प्रकारकूं श्रीभगवान् कथन करताभया है। यातैं श्रीभगवान्कूं प्रगटही अकुशलतारूप दोष प्राप्त होवैहै। जैसे कोई पुरुष तीन ब्राह्मणोंको भोजन करावणा या प्रकारका वचन प्रथम कहै तिसतैं अनंतर यह वचन कहै दो तौ कठकौंडिन्यनामा ब्राह्मण तीसरा क्षत्रिय। इस प्रकारके वचन कहणे-

द्वारे पुरुषकूं प्रगटही अकुशलतादोषकी प्राप्ति होवैहै । काहेतैं प्रथम तीन ब्राह्मणोंके भोजन करावणेकी प्रतिज्ञा करिकै पश्चात् दो तौ ब्राह्मण कहणे तीसरा क्षत्रिय कहणा । यह वार्त्ता पूर्वप्रतिज्ञाकी विस्मृतिरूप अकुशलतादोषतैं होवैहै । तैसे प्रथम तीनप्रकारके त्यागकी प्रतिज्ञा करिकै पश्चात् दोप्रकारका तौ कर्मोंका त्याग कहणा और तीसरा कर्मोंका अनुष्ठान कहणा यह वार्त्ता अकुशलतादोषतैं होवैहै इति । सो यह दोष संभवता नहीं । काहेतैं तिन तीनों प्रकारोंविषे विशिष्टाभावरूप त्याग सामान्यपणेकरिकै एकजातीयपणा पूर्व विस्तारतैं प्रतिपादन करिआये हैं यातैं श्रीभगवान्‌विषे अकुशलताका कथन करणा यहही तिन पुरुषोंविषे महान् अकुशलता है ॥ ९ ॥

अब पूर्वउक्त सात्त्विकत्यागके ग्रहण करावणेवासतै श्रीभगवान् तिस सात्त्विकत्यागके अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञाननिष्ठारूप फलकूं कथन करैं हैं—

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ॥
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) न । द्वेष्टि । अकुशलम् । कर्म । कुशले । न । अनुषज्जते । त्यागी । सत्त्वसमाविष्टः । मेधावी । छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो पूर्वउक्त सात्त्विकत्यागवाला पुरुष जबी सत्त्वकरिकै व्याप्तहोवै है तबी तत्त्वज्ञानवाला होवै है तथा सर्वसंशयोंतैं रहित होवै है तबी अशोभन कर्मकूं नहीं प्रतिकूलमानै है तथा शोभनकर्मविषे नहीं प्रीतिकरै है ॥ १० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो त्यागीपुरुष सात्त्विक त्यागकरिकै युक्त है अर्थात् पूर्वश्लोक उक्तप्रकारकरिकै कर्तृत्व अभिनिवेशकूं तथा स्वर्गादिक फलकी इच्छाकूं परित्यागकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिवासतै वेदविहित नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करै है सो त्यागी पुरुष तिस कालविषे सत्त्वकरिकै सम्यक् आविष्ट होवै है । तहां आत्मअनात्मविवेकज्ञानका हेतुभूत जो चित्तविषे स्थित सम्यक्‌ज्ञानका प्रतिबंधक रजतमरूप मलका राहित्यरूप अतिशयता है ताका नाम सत्त्व है । ता सत्त्वकरिकै सम्यक् व्याप्त होवै है । इहां उक्त सत्त्वकी व्याप्तिविषे जो नियमकरिकै आत्मज्ञानरूप फलका जनकपणा है यहही सम्यक्‌पणा है अर्थात् भगवदर्पित नित्यक-

र्मोंके अनुष्ठानतैं पापरूप मलका अपकर्षरूप संस्कारकरिकै तथा ज्ञानके उत्प-त्तिकी योग्यतारूप पुण्यगुणका आधानरूप संस्कारकरिकै संस्कृत जबी अंतःक-रण होवै है तबी सो त्यागी पुरुष मेधावी होवै है । तहां विवेक, वैराग्य, शमद-मादि षट्संपत्, मुमुक्षुता तथा सर्वकर्मोंका विधिवत् परित्याग तथा ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप गमन इत्यादिक साधनोंकरिकै तथा तिस ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रके श्रवण, मनन, निदिध्यासन इन तीन साधनोंकरिकै उत्पन्न हुआ तथा तत्त्वमसि आदिक वेदांतमहावाक्य हैं करण जिसका तथा निवृत्त हुई है सर्व अप्रामाण्य शंका जिसतैं तथा अखंड अद्वितीय चैतन्यवस्तुकूं नहीं विषय करणेहारा ऐसा जो अहंब्रह्मास्मि या प्रकारका ब्रह्मात्म ऐक्यज्ञान है ताका नाम मेधा है । ऐसी मेधा-करिकै जो पुरुष नित्यही युक्त होवै ताका नाम मेधावी है। ऐसा मेधावी सो पुरुष होवै है अर्थात् स्थितप्रज्ञ होवै है। और तिस स्थितप्रज्ञताकालविषे सो पुरुष छिन्नसंशय होवै है । तहां आत्मसाक्षात्कारकरिकै छिन्न हुए हैं क्या निवृत्त हुए हैं सर्व संशय जिसके ताका नाम छिन्नसंशय है। तात्पर्य यह—अहं ब्रह्मास्मि इस प्रकारकी ब्रह्मविद्यारूप मेधाकरिकै तिस पुरुषकी अविद्या नि-वृत्त होइजावै है और सा अविद्याही सर्व संशयोंकी उत्पत्तिविषे कारण है। यातैं ता कारणरूप अविद्याके निवृत्त हुएतैं अनंतर ता अविद्याके कार्यरूप सर्व संशयोंतैं तथा विपर्ययोंतैं सो तत्त्वेत्ता पुरुष रहित होवै है इति । तहां आत्मसा-क्षात्कारकरिकै अविद्याकी निवृत्तिद्वारा जिन संशयोंकी निवृत्ति होवै है ते संशय यह हैं—संचित, आगामि, वर्त्तमान इन तीन प्रकारके कर्मोंकरिकै हमारेकूं कोई लेप है अथवा नहीं है । और कर्तृत्व भोक्तृत्व आदिक संसार आत्माकूं होवै है अथवा अंतःकरणादिक अनात्माकूं होवै है । और मोक्षका हेतु योग है अथवा उपासना है अथवा कर्म है अथवा आत्मसाक्षात्कार है । और सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य यहही मोक्ष है अथवा इसी जन्मविषे ब्रह्मात्मरूपकरिकै स्थिति मोक्ष है इति । इन सर्वसंशयोंविषे अंत्यकी कोटि सिद्धांतरूप जानणी । और आदिकी कोटि पूर्वपक्षरूप जानणी । इत्यादिक सर्वसंशयोंतैं तथा देहादिकोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप सर्व विपर्ययोंतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष रहित होवै है । तिसकाल-विषे सर्वकर्मोंतैं रहित होणेतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष अकुशलकर्मोंविषे द्वेष नहीं करै है अर्थात् अज्ञानी पुरुषोंके बंधनका हेतु होणेतैं अशोभनरूप जे काम्यकर्म हैं अ-

थवा निषिद्ध कर्म हैं तिन काम्यकर्मोंकूं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष प्रतिकूलतारूपकारिकै मानता नहीं। और अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानका हेतु होणेतैं शोभनरूप जे नित्यकर्म हैं तिन नित्यकर्मोंविषेभी सो तत्त्ववेत्ता पुरुष प्रीति करता नहीं। जिसकारणतैं कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमानतैं रहित होणेतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष कृतकृत्यही है। ऐसे कृतकृत्य तत्त्ववेत्तापुरुषका किसी कर्मविषे द्वेष तथा किसी कर्मविषे प्रीति संभवै नहीं। यह सर्व अर्थ श्रुतिविषेभी कथन करया है। तहां श्रुति—(भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः। क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।) अर्थ यह—मैं ब्रह्मरूप हूं इसप्रकारके ब्रह्मसाक्षात्कारके प्राप्त हुए इस तत्त्वेत्ता पुरुषकी चिज्जडग्रंथि भेदन होवै है। तथा पूर्वउक्त सर्वसंशयभी छेदन होवैं हैं। तथा पुण्यपाप सर्व कर्मभी क्षय होवैं हैं इति। हे अर्जुन! जिसकारणतैं तिस सात्त्विकत्यागका इस प्रकारका महान् फल है तिसकारणतैं इस अधिकारी पुरुषनैं महान् प्रयत्नकारिकैभी सो सात्त्विक त्यागही संपादन करणा ॥ १० ॥

तहां कर्मविषे प्रवृत्तिका हेतुभूत जे रागद्वेषादिक हैं ते रागद्वेषादिक ज्ञानवान् पुरुषविषे हैं नहीं। यातैं तिस ज्ञानवान् पुरुषविषे तौ सो सर्व कर्मोंका परित्याग संभव होइसकै है। यह अर्थ पूर्वश्लोकविषे कथन कऱ्या। अब ज्ञानीपुरुषविषे सो सर्व कर्मोंका परित्याग संभवता नहीं इस अर्थविषे श्रीभगवान् हेतु कहैंहैं—

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ॥
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) न। हि। देहभृता। शक्यम्। त्यक्तुम्। कर्माणि। अशेषतः। यः। तु। कर्मफलत्यागी। सः। त्यागी। इति। अभिधीयते ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जिसकारणतैं देहाभिमानी पुरुषनैं निःशेषतैं कर्म त्यागणेकूं नहीं शक्यहैं तिसकारणतैं जो अज्ञानीपुरुष कर्मोंके फलका त्यागीहै सो अज्ञानी पुरुषभी त्यागी इसनामकरिकै कह्याजावै है ॥ ११ ॥

भा० टी०—मैं मनुष्य हूं मैं ब्राह्मण हूं मैं गृहस्थ हूं इसप्रकारके अबाधित अभिमानकरिकै जो पुरुष देहकूं धारण करै है अथवा पोषण करै है ताका नाम देहभृत् है अर्थात् कर्मके अधिकारका हेतुभूत जे ब्राह्मणादिक वर्ण हैं तथा गृहस्थादिक आश्रम हैं तिन वर्णआश्रमोंका आश्रयरूप तथा कर्तृत्व भोक्तृत्व आदिकोंका आश्रयरूप

ऐसा जो स्थूल सूक्ष्म शरीरइंद्रियादिकोंका संघातरूप देह है जो देह अनादिअविद्यावासनावोंके वशतैं व्यवहारके योग्यतारूपकारिकै कल्पित होणेतैं असत्य है । ऐसे असत्यदेहकूं सत्यरूपकारिकै देखताहुआ तथा आपणेतैं भिन्नभी तिस देहकूं आपणेतैं अभिन्नकारिकै देखताहुआ जो पुरुष पूर्वउक्त अभिमानकारिकै तिस देहकूं धारण करैहै अथवा पोषण करैहै ताका नाम देहभृत् है । तात्पर्य यह—नहीं निवृत्त हुआहै कर्मके अधिकारका हेतुभूत देहाभिमान जिसका ताका नाम देहभृत है । कैसा है सो देहभृत् पुरुष—कर्मोंविषे प्रवृत्तिके हेतुभूत जे रागद्वेषादिक हैं तिन रागद्वेषादिकोंकी बाहुल्यताकारिकै निरंतर तिन कर्मोंविषे प्रवर्त्तमान है । ऐसे विवेकज्ञानतैं शून्य देहाभिमानी पुरुषनैं तत्त्ववेत्ता पुरुषकी न्याईं ते कर्म निःशेषतैं परित्याग नहीं कारिसकीते । काहेतैं जबपर्यंत कारणसामग्री विद्यमान होवैहै तबपर्यंत निःशेषतैं कार्यका परित्याग कर्‌या जाता नहीं । सा रागद्वेषादिरूप कारणसामग्री तिस अज्ञानी पुरुषविषे विद्यमान है । यातैं जो अज्ञानी अधिकारी अंतःकरणकी शुद्धिवासतै तिन कर्मोंकूं करता हुआभी परमेश्वरकी कृपाके वशतैं तिन कर्मोंके फलका परित्याग करै है सो अधिकारी पुरुषभी त्यागी इस नामकारिकै कह्या जावैहै । अर्थात् सो कर्मकर्त्ता अज्ञानी पुरुष वास्तवतैं अत्यागी हुआभी स्तुतिके वासतै त्यागशब्दकी गौणी वृत्तिकारिकै त्यागी इस नामकारिकै कह्या जावैहै । और सो निःशेषतैं सर्वकर्मोंका परित्याग तौ देहाभिमानतैं रहित परमार्थदर्शी पुरुषनैंही कारिसकीता है । यातैं सो परमार्थदर्शी तत्त्ववेत्ता पुरुषही त्यागशब्दकी मुख्यवृत्तिकारिकै त्यागी इस नामकारिकै कह्या जावैहै । इहां (यस्तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द तिस कर्मफलत्यागी पुरुषके दुर्लभताके बोधन करणेवासतै है । अर्थात् फलकी इच्छाका परित्याग कारिकै अंतःकरणकी शुद्धिवासतै तिन नित्यकर्मोंकूं करणेहारा पुरुषभी दुर्लभही है ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! देहाभिमानवाला तथा परमात्मज्ञानतैं रहित ऐसा जो कर्मीपुरुष है सो कर्मीपुरुषभी फलकी इच्छाके परित्यागमात्रतैं गौणसंन्यासी कह्या जावैहै । और देहाभिमानतैं रहित तथा परमात्मज्ञानवाला ऐसा जो फलसहित सर्वकर्मोंके त्यागवाला तत्त्ववेत्ता पुरुष है सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तौ मुख्यसंन्यासी कह्या

यह अर्थ पूर्वश्लोकविषे आपनैं कथन कऱ्या। तहां गौणसंन्यासीके फल- मुख्यसंन्यासीके फलविषे क्या विशेष है। जिसविशेषके अलाभकरिकै यासीविषे तौ गौणपणा होवैहै और जिस विशेषके लाभकरिकै दूसरे षे मुख्यपणा होवैहै। और कर्मके फलका त्यागीपणा तौ तिन दोनोंविषे। यातैं ताकरिकै भी विशेषता संभवै नहीं किंतु इसतैं कोई अन्यही विशेष हिये। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं–

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्॥
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्॥१२॥

च्छेदः) अनिष्टम्। इष्टम्। मिश्रम्। च। त्रिविधम्। कर्मणः। भवति। अत्यागिनाम्। प्रेत्य। न। तु। संन्यासिनाम्। ॥ १२ ॥

र्थः) हे अर्जुन! तिन गौणसंन्यासियोंकूं तौ मरणतैं अनंतर कर्मोंका तथा मिश्र यह तीनप्रकारका फल प्राप्तहोवैहै और मुख्यसंन्या- कवीभी सो त्रिविधफल नहीं प्राप्तहोवैहै ॥ १२ ॥

टी०–हे अर्जुन! कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंके त्यागवाले हुएभी कर्मोंका करणेहारे, जे आत्मज्ञानकरणेहारे और जे आत्मज्ञानतैं रहित गौणसं- तिनोंका नाम अत्यागी है। जे अत्यागी पुरुष आत्मज्ञानकी इच्छा- देशाकी उत्पत्तिपर्यंत अंतःकरणकी शुद्धिकूं नहीं संपादनकरिकै तिसतैं गकूं प्राप्त हुएहैं ऐसे अत्यागी पुरुषोंकूं मरणतैं अनंतर पूर्व करेहुए कर्मोंका ग्रहणरूप फल अवश्यकरिकै प्राप्त होवैहै। इहां (कर्मणः) इस पदकरिकै ही कर्म कथन कऱ्याहै तथापि एक कर्मविषे तीन प्रकारके फलकी संभवती नहीं। यातैं (कर्मणः) यह पद कर्मत्वजातिविशिष्ट पुण्य पाप तीनप्रकारकेही कर्मोंका वाचक है। सो शरीरका ग्रहणरूप कर्मका गरूप कर्मोंके त्रिविधपणेकरिकै अनिष्ट, इष्ट, मिश्र इन तीनप्रकारकाही हां पापकर्मका तौ अनिष्टफल होवैहै और पुण्यकर्मका इष्टफल होवैहै पाप दोनों कर्मोंका मिश्रफल होवैहै। तहां यह शरीर हमारेकूं मत ाप्रकारके प्रतिकूलताज्ञानके विषय जे नारकीय तिर्यक् शरीर हैं तिन

शरीरोंकी प्राप्ति अनिष्टफल कह्या जावैहै। और यह शरीर हमारेकूं प्राप्त होवै याप्रकारके अनुकूलताज्ञानके विषय जे देवादिक शरीर हैं तिन शरीरोंकी प्राप्ति इष्टफल कह्या जावैहै। और पापकर्मके फलयुक्त तथा पुण्यकर्मके फलयुक्त जे मनुष्यशरीरहैं तिन शरीरोंकी प्राप्ति मिश्रफल कह्याजावै। है यद्यपि (अनिष्टमिष्टं मिश्रं च) इस वचनकरिकैही तिस कर्मके फलविषे त्रिविधपणा सिद्ध होइसकैहै। यातैं पुनः (त्रिविधम्) यह वचन कहणा असंगत है। तथापि (त्रिविधम्) इस वचनकरिकै जो पुनः तिस फलके त्रिविधपणेका अनुवाद कऱ्याहै सो तिस त्रिविधफलके परित्याग करावणेवासतै कऱ्या है अर्थात् मुमुक्षुजननैं इन तीनों प्रकारके फलका परित्याग करणा इति। इतने करिकै तिन गौण संन्यासियोंकूं मरणतैं अनंतर कर्मके वशतैं शरीरकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवैहै यह अर्थ कथन कऱ्या। अब तिन मुख्यसंन्यासियोंकूं तौ ब्रह्मसाक्षात्कारकरिकै कार्यसहित अविद्याके निवृत्तहुए विदेहकैवल्यरूप मोक्ष ही प्राप्त होवैहै। इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं (न तु संन्यासिनां क्वचित् इति) हे अर्जुन! विधिवत् सर्व कर्मोंका परित्याग कऱ्याहै जिनोंनैं तथा मैं ब्रह्मरूप हूं इसप्रकारके परमात्मसाक्षात्कार करिकै युक्त ऐसे जे परमहंस परिव्राजक मुख्यसंन्यासी हैं तिन मुख्यसंन्यासियोंकूं तौ मरणतैं अनंतर तिन कर्मोंका शरीरका ग्रहणरूप अनिष्टफल अथवा इष्टफल अथवा मिश्रफल किसीभी देशविषे तथा किसीभी कालविषे प्राप्त होतानहीं। काहेतैं तिन ब्रह्मवेत्ता मुख्यसंन्यासियोंका आत्मसाक्षात्कारकरिकै अज्ञान निवृत्त होइगयाहै। ता अज्ञानरूप कारणके निवृत्तहुए ता अज्ञानके कार्यरूप सर्वकर्मभी तिनोंके निवृत्त होइगये हैं। और जन्मकी प्राप्तिविषे अज्ञान तथा अज्ञानजन्यकर्मही कारण हैं। तिनोंके निवृत्तहुए तिन तत्त्ववेत्ता मुख्यसंन्यासियोंकूं पुनः जन्मकी प्राप्ति होती नहीं। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति—(भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः। क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।) अर्थ यह—मैं ब्रह्मरूप हूं इसप्रकारतैं परमात्मादेवके साक्षात्कार हुए इस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी चित् जडग्रंथि भेदन होवैहै। तथा सर्वसंशय छेदन होवैं हैं। तथा सर्वकर्म क्षय होवैंहैं इति। यह वार्त्ता ब्रह्मसूत्रोंविषे श्रीव्यासभगवान्नैंभी कथन करीहै। तहां सूत्र-(तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्।) अर्थ यह—प्रत्यक् अभिन्नब्रह्मके साक्षात्कार हुए इस तत्त्ववेत्तापुरुषके पूर्वले संचितकर्म तौ विनाश होइजावैं हैं और

त्त्वसाक्षात्कारतें उत्तर करेहुए कर्मोंका तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं स्पर्शही नहीं होवै । इसप्रकारका अर्थ श्रुतिस्मृतिविषे कथन करयाहै इति । इत्यादिक श्रुतिसूत्रवचन परमात्माके ज्ञानतैंही सर्वकर्मोंके नाशकूं कथन करैं हैं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—पूर्वउक्त गौणसंन्यासियोंकूं तौ पूर्वले पुण्यपापकर्मके वशतैं पुनः शरीरका ग्रहणरूप संसार अवश्यकरिकै प्राप्त होवैहै । और तत्त्ववेत्ता मुख्यसंन्यासियोंकूं तौ अविद्याकर्मादिकोंके अभावतैं पुनः सो संसार प्राप्त होवै नहीं किंतु मोक्षही प्राप्त होवैहै । इसप्रकारका तिन दोनोंके फलविषे विशेष है इति । तहां केईक वादी इसप्रकार कहैं हैं—(अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः । स संन्यासी) इत्यादिक वचनोंविषे कर्मोंके फलका त्याग करिकै कर्मोंकूं करणेहारे कर्मीपुरुषोंविषे भी संन्यासी इस शब्दका प्रयोग करयाहै । यातैं (न तु संन्यासिनां क्वचित् ।) इस वचनविषेभी संन्यासीशब्दकरिकै कर्मफलके त्याग करणेहारे कर्मीपुरुषही ग्रहण करणे । और (न तु संन्यासिनां क्वचित् ।) इस वचनविषे जो पूर्वउक्त अनिष्ट, इष्ट, मिश्र इस तीनप्रकारके फलका संन्यासियोंविषे निषेध कर्याहै सोभी तिन सात्त्विक कर्मीपुरुषोंविषे संभव होइसकैहै । काहेतैं जिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंके नहीं करणेकरिकै तथा निषिद्धकर्मोंके करणेकरिकै इन पुरुषोंविषे जा पापकी उत्पत्ति होवैहै सा पापकी उत्पत्ति तिन सात्त्विक कर्मीपुरुषोंविषे तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंके करणेकरिकै तथा निषिद्धकर्मोंके परित्याग करिकै होवै नहीं । यातैं तिन कर्मीपुरुषोंकूं अनिष्टफलकी प्राप्ति होवै नहीं । और ते कर्मीपुरुष काम्यकर्मोंकूं करते नहीं । तथा ईश्वरअर्पणबुद्धिकरिकै तिन कर्मीपुरुषोंनैं स्वर्गादिफलोंका परित्याग कर्याहै । यातैं तिन कर्मीपुरुषोंकूं इष्टफलकी प्राप्तिभी होवै नहीं । इसीकारणतैंही तिन कर्मीपुरुषोंकूं मिश्रफलकी प्राप्तिभी होवै नहीं । इसरीतिसैं तिन सात्त्विक कर्मीपुरुषोंविषे अनिष्ट, इष्ट, मिश्र यह तीनप्रकारकाही फल संभवता नहीं । इसीकारणतैंही शास्त्रविषे यह वचन कह्याहै । तहाँ श्लोक— (मोक्षार्थी न प्रवर्त्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः। नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिहासया ॥) अर्थ यह—मोक्षकी इच्छावान् अधिकारी पुरुष तिन काम्यकर्मोंविषे तथा निषिद्धकर्मोंविषे नहीं प्रवृत्त होवै किंतु जिन नित्य नैमित्तिक कर्मोंके नहीं करणेतैं जो प्रत्यवाय प्राप्त होवैहै तिस प्रत्यवायके परित्यागकी इच्छा करिकै यह मोक्षार्थी पुरुष तिन नित्यनैमित्तिक

कर्मोंकूंही करै । इतनेमात्रकरिकैही इस अधिकारी पुरुषकूं संसारका अभाव होवैहै इति । इसप्रकार एकभविकवादकी रीतिसै भगवान्‌के वचनका व्याख्यान करणेहारे वादियोंके प्रति यह वचन कह्या चाहिये । शब्दकी मर्यादा तथा अर्थकी मर्यादा तुमोंनैं निर्णय करी नहीं । इसकारणतैंही श्रीभगवान्‌के वचनका तुम इस प्रकारका व्याख्यान करतेहो–तहां गौण अर्थ तथा मुख्य अर्थ इन दोनों अर्थोंके मध्यविषे किसी बाधकके अविद्यमान हुए मुख्य अर्थविषेही शब्दबोधकूं उत्पन्न करै है । यह तौ शब्दकी मर्यादा है । सो इहां प्रसंगविषे फलसहित सर्वकर्मोंका त्यागीपुरुष तौ ता संन्यासीशब्दका मुख्य अर्थ है । और जैसे मुख्यसंन्यासीविषे कर्मोंके फलका त्यागीपणा रहै है तैसे निष्कामकर्मीपुरुषविषेभी सो फलका त्यागीपणा रहैहै । यातैं फलत्यागित्वरूप समानगुणकूं लैके सो संन्यासीशब्द तिस कर्मी पुरुषविषेभी प्रवृत्त होवैहै । यातैं सो कर्मीपुरुष तिस संन्यासीब्दका गौण अर्थ है । और (न तु संन्यासिनां क्वचित् ।) इस वचनविषे स्थित संन्यासी इस शब्दके मुख्य अर्थके ग्रहण करणेविषे कोई बाधक है नहीं । यातैं तिस मुख्य अर्थकाही इहां संन्यासी इस शब्दकरिकै ग्रहण करणा उचित है । यह अर्थ शब्दकी मर्यादातैं सिद्ध होवैहै इति । और कारणसामग्रीके विद्यमान हुए कार्यकी उत्पत्ति अवश्यकरिकै होवैहै । यह अर्थमार्यादा कहीजावैहै । तिस अर्थमर्यादाकरिकै भी सो पूर्वउक्त अर्थही सिद्ध होवै सो प्रकार दिखावैंहैं--जिस पुरुषनैं ईश्वरार्पणबुद्धिकरिकै कर्मोंके फलका परित्याग कन्याहै तथा जो पुरुष अंतःकरणकी शुद्धिवासतै नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करै है सो पुरुष अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञाननिष्ठाकूं नहीं प्राप्त होइकै जबी मध्यविषेही मरणकूं प्राप्त होवैहै तिस पुरुषकूं पूर्वले पुण्यपापकर्मोंके वशतैं तीनप्रकारके शरीरका ग्रहणरूप संसारकी प्राप्ति किस पुरुषनैं निवृत्त करिसकीती है किंतु कोईभी पुरुष तिसके निवृत्तकरणेविषे समर्थ नहीं है । तिस पुण्यपापरूप कारणके विद्यमान हुए शरीरका ग्रहणरूप कार्य अवश्यकरिकै उत्पन्न होवैगा । तहां आत्मज्ञानतैं रहित पुरुष पुण्यपापकर्मके वशतैं अवश्यकरिकै जन्मकूं प्राप्त होवै है । यह वार्त्ता श्रुतिविषे कथन करी है । तहां श्रुति–(यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः ।) अर्थ यह–हे गार्गि ! जो पुरुष इस अक्षरब्रह्मकूं न जानिकै इस मनुष्यलोकतैं गमन करै है सो पुरुष कृपणही जानणा इति । यातैं अंतःकरणकी शुद्धिका फलभूत जो आत्मज्ञान है ता ज्ञानकी

उत्पत्तिवासतै तिस निष्काम कर्मीपुरुषकूं अधिकारी शरीरकी प्राप्ति अवश्यकरिकै अंगीकार करणी होवैगी। इसी कारणतैंही पूर्व षष्ठअध्यायविषे (शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै यह अर्थ निर्णय कऱ्याथा। अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर शास्त्रकी विधिपूर्वक फलसहित सर्वकर्मोंका परित्याग कऱ्या है जिसनैं तथा ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै तिस ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकूं करता हुआ जो पुरुष आत्मज्ञानकूं न प्राप्त होइकै मध्यविषेही मरणकूं प्राप्त हुआ है ऐसा योगभ्रष्ट विविदिषासंन्यासी भोगइच्छाके विद्यमान हुए तिस मरणतैं अनंतर पवित्र श्रीमान् पुरुषोंके गृहविषे जाइकै जन्मकूं प्राप्त होवै है। और भोगइच्छाके अविद्यमान हुए सो योगभ्रष्टपुरुष ब्रह्मवेत्ता योगी पुरुषोंके गृहविषे जाइकै जन्मकूं प्राप्त होवै है इति। यह सर्व अर्थ पूर्व षष्ठअध्यायविषे कथन कऱ्याथा। इस कहणेकरिकै यह कैमुतिकन्याय सिद्ध होवै है। जबी आत्मज्ञानतैं रहित सर्वकर्मोंके त्यागी विविदिषासंन्यासीकूंभी शरीरका ग्रहण अवश्यकरिकै होवै है तबी आत्मज्ञानतैं रहित कर्मीपुरुषकूं सो शरीरका ग्रहण अवश्यकरिकै होवै है याके विषे क्या कहणा है इति। यातैं अज्ञानीपुरुषकूं पूर्वले कर्मके वशतैं शरीरका ग्रहण अवश्यकरिकै होवै है। यह अर्थ अर्थकी मर्यादाकरिकै सिद्ध भया। यातैं (न तु संन्यासिनां क्वचित्) इस वचनविषे स्थित संन्यासीशब्दकरिकै निष्काम कर्मीपुरुषोंका ही ग्रहण करणा। यह एकभविकवादियोंका व्याख्यान अत्यंत असंगत है किंतु पूर्वउक्त भाष्यकारोंका व्याख्यानही समीचीन है इति। तहां इस श्लोकविषे श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है। अकर्त्ता, अभोक्ता, परमानंद, अद्वितीय, सत्य, स्वप्रकाश ऐसा जो ब्रह्म है सो ब्रह्म मैं हूं, इसप्रकारका जो ब्रह्मात्मसाक्षात्कार है सो साक्षात्कार निर्विकल्प है। तथा वेदांतमहावाक्यकरिकै जन्य है। तथा विचारकरिकै निश्चित कऱ्या है प्रामाण्य जिसका तथा सर्वप्रकारतैं अप्रामाण्यशंकातैं रहित है ऐसे ब्रह्मात्मसाक्षात्कारकरिकै तिस ब्रह्मात्माके अज्ञानकी निवृत्ति हुएतैं अनंतर तिस अविद्याके कार्यरूप कर्तृत्वभोक्तृत्वादिक अभिमानतैं रहित ऐसा जो वास्तव मुख्यसंन्यासी है सो संन्यसी तौ अविद्यासहित सर्वकर्मोंके नाशतैं केवल शुद्धस्वरूप हुआ अविद्याकर्मादिनिमित्तक पुनः शरीरके ग्रहणकूं कदाचित्भी अनुभव करता नहीं। जिसकारणतैं तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके सर्वभ्रमोंका अविद्यारूप कारणके नाशकरिकै नाश होइगयाहै। और जो

पुरुष अविद्यावाला है तथा कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमानवाला है तथा देहभृत है सो अविद्यावान् देहभृत् पुरुष तौ तीनप्रकारका होवै है । तहां रागद्वेषादिक दोषोंकी प्रबलतातैं आपणी इच्छामात्रतैं काम्यकर्मोंकूं तथा निषिद्धकर्मोंकूं करणे-हारा ऐसा जो मोक्षशास्त्रका अनधिकारी पुरुष है सो तौ प्रथम है। और पूर्व करेहुए पुण्यकर्मके वशतैं किंचितमात्र नष्ट हुएहैं रागादिक दोष जिसके तथा विधिपूर्वक सर्वकर्मोंके परित्याग करणेविषे असमर्थ हुआभी जो पुरुष निषिद्ध-कर्मोंका तथा काम्यकर्मोंका परित्याग करिकै अंतःकरणकी शुद्धिवासतै फलकी इच्छाका परित्याग करिकै नित्यकर्मोंकूं तथा नैमित्तिक कर्मोंकूंही करै है ऐसा जो मोक्षशास्त्रका अधिकारी गौणसंन्यासी है सो गौणसंन्यासी दूसरा है। और नित्यनैमित्तिक कर्मोंके अनुष्ठानकारिकै अंतःकरणकी शुद्धिहुएतैं अनंतर उत्पन्नहुई है आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषा जिसकूं तथा श्रवणादिक साधनोंकरिकै मोक्षके साधनरूप आत्मज्ञानके संपादन करणेकी इच्छावान् तथा शास्त्रकी विधिपूर्वक सर्वकर्मोंका परित्याग करिकै वेदांतशास्त्रके विचारवासतै श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठगुरुके शरणकूं प्राप्तहुआ ऐसा जो विविदिषासंन्यासी है सो विविदिषासंन्या-सी तीसरा है । तहां प्रथमपुरुषकूं तौ सो शरीरका ग्रहणरूप संसारीपणा सर्वकूं प्रसिद्धही है । और दूसरे पुरुषकूं तौ सो संसारीपणा (अनिष्टमिष्टं मिश्रं च) इस वचनकारिकै कथन कऱ्याहै । और तीसरे पुरुषकूं तौ सो संसारीपणा षष्ठअध्यायविषे (अयतिः श्रद्धयोपेतः ।) इत्यादिक वचनोंनैं प्रश्नका उत्थापन करिकै निर्णय कऱ्या है । यातैं अविद्याकर्मादिक कारणसामग्रीके विद्यमान हुए अज्ञानी पुरुषकूं सो संसारीपणा अवश्यकारिकै प्राप्त होवै है । तहां किसी अज्ञानी पुरुषकूं तौ ज्ञानके प्रतिकूल शरीरकी प्राप्ति होवै है । और किसी अज्ञानी पुरुषकूं ज्ञानके अनुकूल शरीरकी प्राप्ति होवै है । इतनी तिनोंविषे विशेषता है । और तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं तौ अविद्याकर्मादिक संसारके कारणका अभाव होणेतैं स्वतःही कैवल्य-मोक्षकी प्राप्ति होवै है । इसप्रकारतैं श्रीभगवान्नैं इस श्लोकविषे दो पदार्थ सूचन करे हैं ॥ १२ ॥

तहां आत्मज्ञानतैं रहित अज्ञानी पुरुषके संसारीपणेविषे कर्मोंके परित्या-गका असंभवरूप हेतु (न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।) इस वचनकारिकै पूर्व कथन कऱ्या । तहां तिस अज्ञानीपुरुषकूं कर्मोंके त्यागके

असंभवविषे कौन हेतु है अर्थात् किस हेतुतैं सो अज्ञानी पुरुष कर्मोंकूं नहीं त्यागसकै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए कर्मके हेतुरूप जे अधिष्ठानादिक पंच हैं तिन पांचोंविषे जो अज्ञानीपुरुषोंका तादात्म्य अभिमान है सो तादात्म्य-अभिमानही तिस कर्मत्यागके असंभवविषे हेतु है । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् च्यारि श्लोकोंकरिकै वर्णन करैं हैं । तहां ते अधिष्ठानादिक पांचों वेदांतशास्त्ररूप प्रमाणमूलक हैं । ऐसे अधिष्ठानादिक पांचों परित्याग करणेवासतै इस अधिकारी पुरुषनैं अवश्यकरिकै जानणेयोग्य हैं । इस अर्थकूं श्रीभगवान् प्रथमश्लोककरिकै कथन करैं हैं–

पंचेमानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ॥
सांख्ये कृतांते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) पंच । इमानि । महाबाहो । कारणानि । निबोध । मे । सांख्ये । कृतांते । प्रोक्तानि । सिद्धये । सर्वकर्मणाम् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे महान्बाहुवाला अर्जुन ! सर्वकर्मोंकी सिद्धिवासतै इन वक्ष्यमाण अधिष्ठानादिक पंचकारणोंकूं तूं हमारे वचनतैं निश्चयकर जे पंचकारण सर्वकर्मोंकी समाप्तिवाले वेदांतशास्त्रविषे कथनकरे हैं ॥ १३ ॥

भा० टी०–हे महान्बाहुवाला अर्जुन ! लौकिक वैदिक जितनेक कर्म हैं तिन सर्वकर्मोंकी सिद्धिवासतै इन वक्ष्यमाण अधिष्ठानादिक पंचकारणोंकूं मैं सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वरके वचनतैं तूं निश्चय कर । अर्थात् तिन अधिष्ठानादिक पांचोंके स्वरूप जानणेवासतै तूं सावधान होउ । तहां यह अधिष्ठानादिक पंचकारण कोई अत्यंत दुर्विज्ञेय नहीं हैं किंतु सावधानचित्तवाले पुरुषनैं यह अधिष्ठानादिक पंच-कारण जानिसकीते हैं । इसप्रकार तिन पांचों कारणोंके ज्ञानवासतै चित्तके समाधानके विधान करिकै श्रीभगवान् तिन अधिष्ठानादिक पंचकारणोंकी स्तुति करताभयाहै । और (हे महाबाहो) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं तिन पंचकारणोंकी स्तुतिवासतै यह अर्थ सूचन कऱ्या–इन अधिष्ठानादिक पंचकारणोंके जानणेविषे महान् पराक्रमवाले श्रेष्ठपुरुषही समर्थ होवैं हैं अश्रेष्ठपुरुष समर्थ होवैं नहीं । ऐसा महान् पराक्रमवाला श्रेष्ठपुरुष तूं अर्जुनभी है सो तूं अर्जुनभी इन पांचोंकारणोंके जानणेविषे समर्थ है इति । शंका–हे भगवन् ! जे अधिष्ठानादिक

पंचकारण आपके वचनतैं जानणेयोग्य हैं ते अधिष्ठानादिक: पंचकारण किसी अन्यप्रमाणकरिकै भी सिद्ध हैं । अथवा केवल आपके वचनमात्रतैंही सिद्ध हैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके प्राप्त हुए, श्रीभगवान् तिस आपणे वचनविषे अर्जुनके विश्वास करावणेवासतै तिन पंचकारणोंकी सिद्धिविषे वेदांतशास्त्ररूप प्रमाणकूं कथन करैं हैं-(सांख्ये कृतांते प्रोक्तानि इति ।) हे अर्जुन! ते अधिष्ठानादिक पंचकारण कृतांतरूप सांख्यशास्त्रविषे कथन करे हैं। तहां ब्रह्मानंदरूप निरतिशय पुरुषार्थकी प्राप्तिवासतै तथा जन्ममरणादिक सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिवासतै इस अधिकारी पुरुषनैं जानणे योग्य जे जीव ब्रह्म तिन दोनोंकी एकता है ता एकता बोधके उपयोगी श्रवणमननादिक साधन इत्यादिक पदार्थ हैं ते सर्व पदार्थ प्रतिपादन करेंहैं जिस शास्त्रविषे ता शास्त्रका नाम सांख्य है। ऐसा सांख्यनामवाला उपनिषद्रूप वेदांतशास्त्र है ऐसे सांख्यनामा वेदांतशास्त्रविषे ते अधिष्ठानादिक पंचकारण प्रतिपादन करेंहैं। शंका-हे भगवन् ! केवल आत्मवस्तुमात्रका प्रतिपादक जो वेदांतशास्त्र है तिस वेदांतशास्त्रविषे यह लोकप्रसिद्ध अनात्मरूप तथा अवस्तुरूप पंचकर्मके कारण किसवासतै प्रतिपादन करेंहैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए, श्रीभगवान् तिस वेदांतशास्त्रके विशेषणकूं कथन करेंहैं । (कृतांते इति) तहां (क्रियते इति कृतम् ।) अर्थ यह-इस पुरुषनै प्रयत्नकारिकै जो करीता है ताका नाम कृत है। इस प्रकारकी व्युत्पत्तिकरिकै कृत यह शब्द सर्व कर्मोंका वाचक है। तिन सर्व कर्मोंका अंत है क्या परिसमाप्ति है आत्मज्ञानकी उत्पत्तिकारिकै जिसविषे ता शास्त्रका नाम कृतांत है। अथवा (निष्कलं निष्क्रियं शांतम्) इत्यादिक वचनोंकारिकै कृत कहिये स्पष्ट कऱ्या है अंत क्या आत्म अनात्म दोनोंका तत्त्वनिश्चय जिस शास्त्रविषे ता शास्त्रका नाम कृतांत है। अथवा वेदप्रतिपादित नित्यनैमित्तिक कर्मोंका नाम कृत है। तिन कर्मोंका अंत है क्या परित्याग है जिस शास्त्रके श्रवणवासतै ता शास्त्रका नाम कृतांत है । तहां (संन्यस्य श्रवणं कुर्यात) इस श्रुतिनैं वेदांतशास्त्रके श्रवणकरणेवासतै सर्व नित्यनैमित्तिक कर्मोंका संन्यास कथन कऱ्या है । ऐसे कृतांतरूप वेदांतशास्त्रविषे ते अधिष्ठानादिक पंचकारण कथन करेंहैं अर्थात् लोकविषे प्रसिद्ध तथा अनात्मरूप ऐसे जे ते अधिष्ठानादिक पंचकारण हैं ते पांचोंही कारण मिथ्याज्ञानकृत अध्यारोपकारिकै लोकोंनैं आत्मारूपकारिकै ग्रहण करे हैं । ऐसे पंचका

णोंकूं आत्मतत्त्वज्ञानकरिकै बाध करणेवासतै परित्याज्यरूप करिकै वेदांतशास्त्र-विषे कथन कऱ्या है। कोई तिन कारणोंके कथन करणेविषे तिस वेदांतशास्त्रका तात्पर्य है नहीं किंतु अद्वितीय आत्माके प्रतिपादनविषेही वा वेदांतशास्त्रका तात्पर्य है। इहां यह अभिप्राय है–देहादिक अनात्मपदार्थोंका धर्मरूप जो कर्म है सो कर्म ही असंग आत्माविषे अविद्याकरिकै अध्यारोपित हुआहै वास्तवतैं आत्माविषे सो कर्म है नहीं। इस प्रकारतैं जबी वेदांतशास्त्रनैं आत्माका वास्तव-स्वरूप प्रतिपादन करीता है तबी शुद्धआत्माके ज्ञानकरिकै तिस अध्यारोपित कर्मका बाध होणेतैं तिन सर्व कर्मोंका अंत कऱ्या जावैहै। तिस अधिष्ठान आत्माके ज्ञान-तैं विना दूसरे किसीभी उपायकरिकै तिन कर्मोंका अंत कऱ्याजाता नहीं। इस कारणतैं असंग आत्माविषे तिन कर्मोंके असंबंधके प्रतिपादन करणेवासतै ते मायाकल्पित अनात्मभूत पंचकर्मोंके कारण वेदांतशास्त्रविषे अनुवाद करैहैं। कोई तिन पंचकारणोंके प्रतिपादन करणेविषे वेदांतशास्त्रका तात्पर्य है नहीं। यातैं अद्वैत आत्ममात्रविषे जो वेदांतशास्त्रका तात्पर्य है तिस तात्पर्यकी इहां हानि होवै नहीं इति। यातैं (कृतांते) इस विशेषणकरिकै श्रीभगवान्‌नैं वेदांतशास्त्रविषे जो पूर्व कर्मोंका अंतपणा कथन कऱ्या है सो युक्त है। इसी अर्थकूं श्रीभगवान् (सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।) इस वचनकरिकैभी कथन करता भया है इति। इहां कितनेक मूलपुस्तकोंविषे (पंचेमानि) इसप्रकारका पाठ है और कितनेक मूल-पुस्तकोंविषे (पंचैतानि) इसप्रकारका पाठ है। परंतु श्रीभाष्यकारोंनैं तथा श्रीमधुसूदननैं तथा नीलकंठ पंडितनैं (पंचेमानि) इसप्रकारका पाठ अंगीकार करिकै व्याख्यान कऱ्या है। यातैं इस पुस्तकविषेभी (पंचेमानि) इस प्रकारका ही पाठ राख्या है ॥ १३ ॥

तहां वेदांतशास्त्र है प्रमाण जिनोंविषे ऐसे जे कर्मके पंचकारण हैं ते पंचका-रण आत्माके अकर्त्तापणेकी सिद्धिवासतै परित्याज्यरूप करिकै जानणे योग्य हैं यह अर्थ पूर्व कथन कऱ्या। तहां ते पंचकारण कौन हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् द्वितीय श्लोककरिकै तिन पांचोंके स्वरूपकूं कथन करैहैं–

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् ॥
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) अधिष्ठानम् । तथा । कर्त्ता । करणम् । च । पृथग्विधम् । विविधाः । च । पृथक् । चेष्टाः । दैवम् । च । एव । अत्र । पंचमम् ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अधिष्ठान तथा कर्त्ता तथा नानाप्रकारका करण तथा नानाप्रकारकी भिन्नभिन्न चेष्टा तथा इन कारणोंविषे पांचमा दैव यह पांचों कर्मके कारण हैं ॥ १४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, चेतना इत्यादिक धर्मोंके अभिव्यक्तिका आश्रयरूप जो यह पंचीकृत पंचभूतोंका कार्यरूप स्थूल शरीर है ता शरीरका नाम अधिष्ठान है । और मैं कर्त्ताहूं इसप्रकारके अभिमानवाला तथा ज्ञानशक्तिप्रधान अपंचीकृत पंचमहाभूतोंका कार्यरूप ऐसा जो अहंकार है जो अहंकार अंतःकरण, बुद्धि, विज्ञान इत्यादिक नामोंकरिकै कथन कऱ्या जावै है तथा जो अहंकार आत्माके साथि तादात्म्य अध्यासकरिकै स्वनिष्ठ कर्तृत्वादिक धर्मोंकूं आत्माविषे आरोपण करणेहारा है ता अहंकारका नाम कर्त्ता है । इहां (तथा कर्त्ता) इस वचनविषे स्थित जो तथा यह शब्द है तिस तथा शब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं तिस अहंकाररूप कर्त्ताविषे पूर्वउक्त शरीररूप अधिष्ठानकी सदृशता कथन करीहै अर्थात् जैसे सो शरीररूप अधिष्ठान अनात्मारूप है तथा आकाशादिक पंचमहाभूतोंका कार्यरूप है । तथा स्वप्नके पदार्थोंकी न्याईं मायाकरिकै कल्पित है । तैसे यह अहंकाररूप कर्त्ताभी अनात्मारूप है । तथा भूतोंका कार्यरूप है । तथा स्वप्नपदार्थोंकी न्याईं कल्पित है । इहां यह तात्पर्य है–इस स्थूलशरीरकूं यद्यपि लोकायातिक पुरुषोंनैं आत्मारूप करिकै ग्रहण कऱ्या है तथापि अन्यशास्त्रवेत्ता पुरुषोंनैं तिस स्थूल शरीरकूं अनात्मारूप करिकै ही निश्चय कऱ्या है ऐसे स्थूलशरीरकूं जबी कर्त्ताविषे दृष्टांतरूप करिकै कथन कऱ्या तबी तार्किक पुरुषोंनैं आत्मारूपकरिकै ग्रहण कऱ्या जो कर्त्ता है तिस कर्त्ताविषे अनात्मरूपताका निश्चय अत्यंत सुगम होवैहै इति । और अपंचीकृत पंचमहाभूतोंतैं उत्पन्न हुए तथा शब्दादिक विषयोंके उपलब्धिका साधनरूप ऐसे जे श्रोत्रादिक इंद्रिय हैं तिन इंद्रियोंका नाम करण है । कैसा है सो करण–पृथग्विध है अर्थात श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइंद्रिय तथा वागादिक पंच कर्मइंद्रिय तथा मन बुद्धि इस द्वादश भेदकरिकै नानाप्रकारका है । यद्यपि शास्त्रविषे मन, बुद्धि

चित्त, अहंकार यह च्यारोंही अंतःकरणके भेद कथन करेहैं तथापि इहां करणवर्गविषे स्थित मन बुद्धि यह दोनों तिस अंतःकरणरूप अहंकारके वृत्तिविशेष लेणे। और तिन वृत्तियोंवाला जो अहंकार है सो अहंकार तौ केवल कर्त्तारूपही है करणरूप है नहीं । और चेतनका आभास तौ सर्वत्र तुल्यही है। तहां अंतःकरणरूप अहंकारविषे कर्त्तापणा (विज्ञानं यज्ञं तनुते ।) इत्यादिक श्रुतियोंविषे प्रसिद्धही है। इहां (करणं च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार पूर्ववचनविषे स्थित तथा इस शब्दकी अनुवृत्तिकरणेवासतै है अर्थात जैसे पूर्वउक्त शरीररूप अधिष्ठान तथा अहंकाररूप अधिष्ठान तथा अहंकाररूप कर्त्ता अनात्मारूप है तथा भौतिक है तथा कल्पित है तैसे यह द्वादश प्रकारका करणभी अनात्मारूप है तथा भौतिकरूप है तथा कल्पित है इति। और क्रियाशक्ति है प्रधान जिनोंविषे ऐसे जे अपंचीकृत पंचमहाभूत हैं तिन पंचमहाभूतोंका कार्यरूप तथा क्रियाप्रधानत्वरूप करिकै तथा वायवीयत्वरूप करिकै कथन करे हुए ऐसे जे क्रियारूप प्राणादिक हैं तिन क्रियारूप प्राणादिकोंका नाम चेष्टा है। कैसी है सा चेष्टा—विविधा है अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इस भेदकरिकै तौ पंचप्रकारकी है। अथवा नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय इन पांचोंकूं मिलाइकै दशप्रकारकी है। तहां यह नागादिक पंचप्राणादिक पांचोंके अंतर्भूत ही हैं। यातैं बहुत स्थलोंविषे पंचही प्राण कथन करे हैं। पुनः कैसी है ते प्राणरूपचेष्टा—पृथक् है अर्थात् स्थानके भेदतैं तथा कार्यके भेदतैं भिन्न भिन्न है। इहां (विविधाश्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार पूर्ववचनविषे स्थित तथा इस शब्दकी अनुवृत्तिकरणेवासतैहै अर्थात् जैसे पूर्वउक्त अधिष्ठान, कर्त्ता, करण यह तीनों अनात्मारूप हैं तथा भौतिकरूप हैं तथा मायाकरिकै कल्पित हैं तैसे यह प्राणरूप चेष्टाभी अनात्मारूप है तथा भौतिकरूप है तथा मायाकरिकै कल्पित है इति। इहां केईक विद्वान् पुरुष तौ यह कहैं हैं—सुषुप्तिअवस्थाविषे कर्त्तारूप अंतःकरणके लय हुएभी प्राणका व्यापार देखणेविषे आवैहै । और जहांतहां प्राणकूं अंतःकरणतैं भिन्नकरिकै कथन कऱ्याहै । यातैं सो प्राण अंतःकरणतैं अत्यंतभिन्नकी न्याईं है इति। और केईक सूक्ष्मदर्शी विद्वान् पुरुष तौ यह कहैं हैं—क्रियाशक्तिवाला तथा ज्ञानशक्तिवाला एकही अपंचीकृत पंचमहाभूतोंका कार्य चेतनके जीवपणेका उपाधि है। सो जीवपणेका उपाधिरूप एकही कार्य

क्रियाशक्तिकी प्रधानताकरिकै तौ प्राण इस नामकारिकै कह्याजावैहै। और ज्ञान शक्तिकी प्रधानताकारिकै अंतःकरण इस नामकारिकै कह्या जावैहै। काहेतैं (स ईक्षांचक्रे कस्मिन्वाहमुत्क्रांते उत्क्रांतो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठां यास्यामीति स प्राणमसृजत।) इस श्रुतिविषे उत्क्रांति स्थिति आदिकोंका उपाधिपणा प्राणविषे कथन कऱ्याहै। और (सधीः स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति मृत्यो रूपाणि ध्यायतीव लेलायतीव।) इत्यादिक श्रुतियोंविषे तिन उत्क्रांति आदिकोंका उपाधिपणा अंतःकरणरूप बुद्धिविषे कथन कऱ्या है। इहां जो कदाचित् प्राण अंतःकरण इन दोनों उपाधियोंका स्वतंत्रही भेद अंगीकार करिये तौ जीवात्माकेभी भेदकी प्राप्ति होवैगी। सो जीवका भेद सिद्धांतविषे अंगीकृत नहीं है। यातैं अंतःकरण प्राण इन दोनोंकू एकरूपकारिकै ही उत्क्रांति आदिककोंका उपाधिपणा युक्त है। और प्राण, अंतःकरण इन दोनोंका जो भेद कथन कऱ्याहै सो भेद तौ तिनोंके एकभावविषेभी क्रियाशक्ति ज्ञानशक्तियोंके भेदकारिकै संभव होइसकैहै। और सुषुप्तिअवस्थाविषे ज्ञानशक्तिभागके लय हुएभी क्रियाशक्तिभागका जो दर्शन है सो दर्शन तौ प्राण अंतःकरणके एकभावविषेभी विरुद्ध नहीं है। और दृष्टि सृष्टि लयविषे सर्वके लयहुएभी सो प्राणव्यापारवाला सुषुप्तपुरुषका शरीर अन्यपुरुषोंनैं यह सोयाहुआ है इसप्रकारतैं कल्पना करीता है। यातैं दोनों प्रकारतैंभी प्राण अंतःकरण इन दोनोंके भेदका कथन संभव होइसकै है इति। और पूर्व उक्त शरीररूप अधिष्ठान तथा अहंकाररूप कर्त्ता तथा द्वादश प्रकारका करण तथा प्राणादिरूप चेष्टा इन सर्वोंके ऊपरि यथाक्रमतैं अनुग्रह करणेहारे जे देवता हैं तिन देवतावोंका नाम दैव है सो दैव इहां कारणवर्गविषे पंचम है अर्थात् पंचत्वसंख्याके पूर्णकरणेहारा है। इहां (दैवं च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार पूर्व वचनविषे स्थित तथा इसशब्दकी अनुवृत्ति करावणेवासतै है अर्थात् पूर्वउक्त अधिष्ठानादिकोंकी न्याईं यह दैवभी अनात्मारूप है तथा भौतिक है तथा मायाकारिकै कल्पित है इति। तहां कर्त्ता, करण, चेष्टा इन तीनोंका अधिष्ठान जो शरीर है तिस शरीररूप अधिष्ठानका तौ पृथिवी देवता है काहेतैं (यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्याग्निं वागप्येति वातं प्राणश्चक्षुरादित्यं मनश्चंद्रं दिशः श्रोत्रं पृथिवीं शरीरम्।) इस श्रुतिविषे वाक्आदिकोंके अधिष्ठाता अग्निआदिकोंके साथि शरीरका अधिष्ठातारूपकारिकै पृथिवीका पठन कऱ्याहै। यातैं इस श्रुतिप्रमाणतैं शरीररूप

अधिष्ठानका पृथिवीही देवता सिद्ध होवैहै । और कर्त्तारूप अहंकारका रुद्रदेवता है सो पुराणादिकोंविषे प्रसिद्ध है । इस प्रकार श्रोत्रादिक करणोंके अधिष्ठाता देवताभी प्रसिद्धही हैं । तहां श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण इन पंच ज्ञानइंद्रियोंके यथाक्रमतैं दिक्, वात, अर्क, प्रचेता, अश्विनी यह पंच देवता हैं । और वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ इन पंच कर्मइंद्रियोंके यथाक्रमतैं वह्नि, इन्द्र, उपेंद्र, मित्र, प्रजापति यह पंच देवता हैं । और मन, बुद्धि इन दोनोंके यथाक्रमतैं चंद्र बृहस्पति यह दोनों देवता हैं । और प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इन चेष्टारूप पंचप्राणोंके तौ यथाक्रमतैं सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, ईशान यह पंच देवता हैं ते पुराणादिकोंविषे प्रसिद्धही हैं । और किसी टीकाविषे तौ दैवशब्दकरिकै धर्म अधर्मका ग्रहण कऱ्याहै ॥ १४ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे तिन अधिष्ठानादिक पंचकारणोंका स्वरूप कथन कऱ्या। अब इस तृतीय श्लोककरिकै श्रीभगवान् तिन पांचोंविषे सर्वकर्मोंके कारणपणेकूं कथन करैं हैं–

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ॥
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) शरीरवाङ्मनोभिः । यत् । कर्म । प्रारभते । नरः । न्याय्यम् । वा । विपरीतम् । वा । पंच । एते । तस्य । हेतवः ॥१५॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह पुरुष शरीरवाङ्मन इन तीनोंकरिकै जिस धर्मरूप अथवा अधर्मरूप कर्मकूं प्रारंभ करैहै तिन सर्वकर्मोंके यह अधिष्ठानादिक पंचही कारणरूप हैं ॥ १५ ॥

भा० टी०–तहां शारीर, वाचिक, मानसिक यह विधिनिषेधरूप तीनप्रकारकाही कर्म धर्मशास्त्रविषे प्रसिद्ध है। तथा (प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारंभः) इस वचनकरिकै अक्षपादनैंभी सो तीनप्रकारकाही कर्म कथन कऱ्याहै। यातैं प्रधानताके अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान् कहैं हैं । हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष शरीरकरिकै अथवा वाक्करिकै अथवा मनकरिकै जिस न्यायरूप कर्मकूं अथवा विपरीतरूप कर्मकूं प्रारंभ करैहै तिस सर्वही कर्मके यह पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पंचही कारणरूप हैं । तहां श्रुति-

स्मृतिरूप शास्त्रकरिकै विहित जे अग्निहोत्रादिक धर्म हैं ताकूं न्याय्य कहैं हैं। और तिस श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै निषिद्ध जे हिंसादिक अधर्महैं ताकूं विपरीत कहैं हैं। तहां जीवनके हेतुभूत जे उच्छ्वास, निःश्वास, निमेष, उन्मेष, क्षुत, जृंभण इत्यादिक स्वाभाविक कर्म हैं तथा अन्यभी जे केई विहित प्रतिषिद्धके समान कर्म हैं ते सर्व कर्म पूर्व करेहुए धर्मअधर्म दोनोंके ही कार्यरूप हैं। यातैं ते सर्व कर्म न्याय्य विपरीत इन दोनों कर्मोंविषे ही अंतर्भूत हैं यातैं श्रीभगवान्‌के वचनविषे न्यूनतादोषकी प्राप्ति संभवै नहीं। और शास्त्रका तथा शास्त्रउक्त कर्मका मनुष्य ही अधिकारी होवै है, इस अर्थके बोधन करणेवासतै श्रीभगवान्‌नैं मनुष्यका वाचक (नरः) यह शब्द कथन कऱ्या है इति। और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्या है। शंका—शरीर, वाक्, मन इनोंकरिकै जो कर्म प्रारंभ कऱ्या जावै है इस प्रकारका वचनकरिकै पश्चात् तिस सर्वकर्मके अधिष्ठानादिक पंच कारण हैं यह वचन कहणा अत्यंत विरुद्ध है। समाधान—इहां (शरीर) इस पदकरिकै अधिष्ठानका ग्रहण करणा। और (नरः) इस पदकरिकै कर्त्ताका ग्रहण करणा। और (वाङ्मनः) इस पदकरिकै करणका ग्रहण करणा। और (प्रारभते) इस पदकरिकै चेष्टाका ग्रहण करणा। और (न्याय्यं वा विपरीतं वा) इस वचनकरिकै धर्मअधर्मरूप दैवका ग्रहण करणा। यद्यपि सर्व कर्मोंविषे अधिष्ठानादिक पांचों कारणोंका उपयोग समान है तिन पांचोंतैं विना कोईभी कर्म सिद्ध होता नहीं तथापि श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रविषे विधि प्रतिषेधरूप शारीर, वाचिक, मानसिक यह तीनप्रकारकाही कर्म प्रसिद्ध है। यातैं यह कर्म शारीर है, यह कर्म वाचिक है, यह कर्म मानस है इस प्रकारका जो कथन है सो कथन तिसतिस कर्मविषे तिसतिस शरीरादिकोंकी प्रधानताकी अपेक्षाकरिकै है। कोई सो कथन तिन शरीरादिक कर्मोंविषे अधिष्ठानादिक पांचोंकी हेतुताकूं निवृत्त करता नहीं। यातैं किंचितमात्र भी इहां विरोध होवै नहीं ॥ १५ ॥

तहां इन पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पांचोंकूंही सर्वकर्मोंका कर्त्तापणा होणेतैं असंग आत्माकूं तिन कर्मोंका कर्त्तापणा है नहीं । इसप्रकरका जो आत्माविषे अकर्त्तापणेका ज्ञान है तथा तिन अधिष्ठानादिक पाचोंविषे कर्त्तापणेका ज्ञान है सो ज्ञान ही तिन अधिष्ठानादिक पाचोंके निरूपणका फल है। ऐसे फलकूं अब

श्रीभगवान् आत्माकूं कर्त्ता मानणेहारे मूढपुरुषोंकी निंदापूर्वक इस चतुर्थश्लोककरिकै कथन करैं हैं–

तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानं केवलं तु यः ॥
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) तत्र । एवंसति । कर्त्तारम् । आत्मानम् । केवलम् । तु । यः । पश्यति । अकृतबुद्धित्वात् । न । सः । पश्यति । दुर्मतिः ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिन सर्वकर्मोंविषे अधिष्ठानादिक पांचोंकारिकै जन्यताके हुएभी जो मूढपुरुष असंग उदासीनरूपही आत्माकूं कर्त्तारूप देखताहै सो दुर्मति पुरुष शास्त्रजन्य विवेकबुद्धितैं रहितहोणेतैं नहीं देखताहै ॥ १६ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! पूर्व कथनकरे जे धर्म अधर्मरूप सर्व कर्म हैं तिन सर्वकर्मोंविषे पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पंचकारणोंकरिकै जन्यताके सिद्ध हुएभी वास्तवतैं असंग उदासीनरूपही आत्माकूं जो मूढपुरुष कर्त्तारूप देखता है अर्थात् जो आत्मादेव सर्व जडप्रपंचका प्रकाशक है तथा सत्तास्फूर्त्तिरूप है तथा स्वप्रकाश परमानंदघन है तथा बाधतैं रहित है तथा असंग उदासीन है तथा अकर्त्ता है तथा अविक्रिय है तथा अद्वितीय है वास्तवतैं इस प्रकारका असंग उदासीन अकर्त्तारूप हुआभी जो आत्मादेव अविद्याकारिकै पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पांचों कारणोंविषे प्रतिबिंबित होवै है। जैसे सूर्य जलविषे प्रतिबिंबित होवै है। तहां जलादिकोंकूं प्रकाश करणेहारा सो सूर्य यद्यपि तिन जलादिकोंतैं भिन्न है तथापि तिस जलके साथि तिस सूर्यका तादात्म्यभाव कल्पनाकरिकै मूढपुरुष जैसे तिस जलके चलनकरिकै तिस सूर्यकूं चलायमान हुआ मानता है तैसे तिन अधिष्ठानादिकोंकूं प्रकाश करणेहारे असंग अद्वितीय आत्माका तिन अधिष्ठानादिकोंके साथि तादात्म्यभावकूं कल्पनाकरिकै तिन अधिष्ठानादिकोंके कर्मोंका असंग आत्माविषे आरोपण करिकै जो पुरुष मैंही कर्मोंका कर्त्ता हूं इस प्रकारतैं सर्वके साक्षीरूपभी आत्माकूं क्रियाका आश्रयरूप देखता है। तात्पर्य यह–जैसे रज्जुके वास्तवस्वरूपकूं नहीं जानणेहारा पुरुष तिस रज्जुकूं भुजंगरूपकरिकै कल्पना करै है तैसे आत्माके असंग अकर्त्तारूप वास्तवस्वरूपकूं नहीं जानताहुआ जो पुरुष अविद्याकारिकै तिस असंग आत्माकूं तिन

देहादिकोंके कर्मका आश्रयरूपकारिकै मानै है सो भ्रांतपुरुष इस प्रकारतैं आत्माकूं देखताहुआभी नहीं देखता है। जैसे रज्जुकूं सर्परूपकारिकै देखताहुआभी भ्रांतपुरुष तिस रज्जुकूं नहीं देखे है तैसे वास्तवतैं असंग उदासीन अकर्त्ता आत्माकूं कर्त्तारूप करिकै देखताहुआभी सो भ्रांतपुरुष तिस आत्माकूं नहीं देखै है। शंका—हे भगवन् ! सो मूढपुरुष भ्रांतिकरिकै आत्माकूं विपरीतही देखै है। आत्माके वास्तवस्वरूपकूं देखता नहीं इसविषे कौन हेतु है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस विपरीतदर्शनविषे हेतु कहैंहैं (अकृतबुद्धित्वात् इति)तहां गुरुशास्त्रके उपदेशकरिकै नहीं उत्पन्नकरी है विवेकबुद्धि जिसनैं ताका नाम अकृतबुद्धि है। ऐसा अकृतबुद्धि होणेतैं सो पुरुष आत्माकूं विपरीत ही देखै है अर्थात् वास्तवतैं असंग उदासीन अकर्त्तारूपभी आत्माकूं सो भ्रांतपुरुष कर्त्तारूप ही देखै है। तात्पर्य यह—जैसे इस पुरुषकूं जबपर्यंत रज्जुके वास्तवस्वरूपका साक्षात्कार नहींहुआ तबपर्यंत यह पुरुष सर्पभ्रमकूं किसीभी उपायकरिकै निवृत्त करिसकता नहीं तैसे इस पुरुषकूं जबपर्यंत सत्य, ज्ञान, अनंत, अकर्त्ता, अभोक्ता, परमानंद, तीन अवस्थावोंतैं रहित, असंग, उदासीन ऐसा ब्रह्म मैं हूं इस प्रकारका ब्रह्मात्मसाक्षात्कार गुरुशास्त्रके उपदेशकरिकै नहीं उत्पन्नहुआ है तबपर्यंत यह पुरुष तिस कर्तृत्वभ्रमकूं किसीभी उपायकरिकै निवृत्त करिसकता नहीं इति। शंका—हे भगवन् ! सो पुरुष ब्रह्मवेत्तागुरुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंके विचारकरिकै इसप्रकारके ब्रह्मात्मसाक्षात्कारकूं किसवासतै नहीं उत्पन्नकरता ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताकेविषे हेतु कहैं हैं—(दुर्मतिः इति) तहां विवेकके प्रतिबंधक पापकर्मोंकरिकै मलिनहुई है मति जिसकी ताका नाम दुर्मति है ऐसा दुर्मति होणेतैं ही सो भ्रांतपुरुष ब्रह्मवेत्तागुरुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंका विचार करता नहीं। तात्पर्य यह—पापकर्मोंकरिकै अशुद्धबुद्धिवाला होणेतैं नित्यअनित्य वस्तुविवेकादिकोंतैं रहितपणेकरिकै ब्रह्मात्मज्ञानके अयोग्य होणेतैं सो भ्रांतपुरुष अविद्याकरिकै अकर्त्तारूप भी आत्माकूं कर्त्तारूप कल्पना करता हुआ तथा केवलरूप भी आत्माकूं अकेवलरूप कल्पना करताहुआ तथा कर्मके कर्त्तारूप अधिष्ठानादिक पांचोंविषे तादात्म्य अभिमानतैं कर्मोंके त्यागकरणेविषे असमर्थ हुआ इसी कारणतैं ही संसारी कर्मका अधिकारी देहभृत् अकृतबुद्धि इत्यादिक संज्ञाकूं प्राप्तहुआ सर्वप्रकारतैं जन्ममरणकी प्राप्तिकरिकै अनिष्ट,

इष्ट, मिश्र इस तीनप्रकारके कर्मके फलकूं ही अनुभव करैंहै । इतनेकारिकै जो तार्किक देहादिकोंतैं व्यतिरिक्त आत्माकूं ही केवल कर्त्ता देखै है सो तार्किकभी अकृतबुद्धिही जानणा यह अर्थ बोधन कऱ्या इति । और केईक वादी तौ (तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानं केवलं तु यः ।) इस श्लोकका यह अर्थ करैं हैं— आत्मा केवल कर्त्ता नहीं है किंतु पूर्वउक्त अधिष्ठानादिकोंके साथि मिल्याहुआ आत्मा कर्त्ता होवैहै । इसप्रकार वास्तवतैं तिन अधिष्ठानादिकोंके साथि मिलिकै कर्त्ताभावकूं प्राप्तहुए आत्माकूं जो पुरुष केवल कर्त्ता देखै है अर्थात् तिन अधिष्ठानादिकोंके संबंधतैं विना केवल एक आत्माकूं ही कर्त्ता देखता है सो पुरुष दुर्मति है । इस प्रकारका अर्थ (केवलम्) इस शब्दके प्रयोगतैं सिद्ध होवैहै इति । सो यह वादियोंका अर्थ समीचीन नहीं । काहेतैं सर्वक्रियावोंतैं रहित असंग आत्माका तिन अधिष्ठानादिकोंके साथि मिलनाही संभवता नहीं । और जलसूर्यकी न्याईं तिन अधिष्ठानादिकोंके साथि असंग आत्माका जो आविद्यक मिलना अंगीकार करिये तौ तिस आविद्यक मिलनेकारिकै आत्माविषे सो कर्तृत्वभी आविद्यकही होवैगा । और ते अधिष्ठानादिक भी सर्व आविद्यक ही हैं । ऐसे कल्पित अधिष्ठानादिकोंके साथि आत्माका वास्तव संबद्धपणा संभवता नहीं । और (केवलम्) यह शब्द तौ स्वभावतैं सिद्ध ही आत्माके असंग अद्विती यरूपकूं अनुवाद करैंहै । आत्माकूं कर्त्ता मानणेहारे पुरुषोंविषे दुर्मतिपणा बोधन करणेवासतै । यातैं (केवलम्) इस शब्दतैं सो वादीका अर्थ सिद्ध होइसकै नहीं ॥ १६ ॥

तहां (पंचेमानि महाबाहो) इत्यादिक च्यारि श्लोकोंकारिकै (अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् । भवत्यत्यागिनां प्रेत्य) इन पूर्वउक्त श्लोकके तीन चरणोंका व्याख्यान कऱ्या । अब (न तु संन्यासिनां क्वचित) इस चतुर्थ-चरणका श्रीभगवान् एकश्लोककारिकै व्याख्यान करैंहैं—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ॥
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) यस्य । न । अहंकृतः । भावः । बुद्धिः । यस्य । न । लिप्यते । हत्वा । अपि । सः । इमान् । लोकान् । न । हंति । न । निबध्यते ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसे विद्वान् पुरुषकी मैं कर्त्ताहूं इस प्रकारकी वृत्ति नहीं होवैहै तथा जिसे विद्वान् पुरुषकी बुद्धि नहीं लिपायमान होवैहै सो विद्वान् पुरुष इन लोकोंकूं हनन करिकै भी नहीं हननकरै है तथा नहीं बंधाय-मान होवैहै ॥ १७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्वश्लोकविषे कथन कऱ्या जो दुर्मति पुरुष है तिस दुर्मतिपुरुषतैं अत्यंत विलक्षण जो अधिकारी पुरुष है जो अधिकारी पुरुष पूर्वले पुण्यकर्मोंकरिकै विवेकके विरोधी पापकर्मोंके क्षय हुए विवेक, वैराग्य, शमादि षट्संपत्, मुमुक्षुता इन च्यारि साधनोंकूं प्राप्तहुआ है तथा गुरुशास्त्रके उपदेशतै उत्पन्नहुआ है अकर्त्ता, अभोक्ता, स्वप्रकाश, परमानंद, अद्वितीय ब्रह्म मैं हूं या प्रकारका ब्रह्मात्मसाक्षात्कार जिसकूं ऐसे जिस विद्वान् पुरुषका अहंकृतभाव नष्ट होइगया है अर्थात् तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै कार्यसहित अज्ञानके बाधितहुए जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी मैं कर्ता हूं इस प्रकारकी वृत्ति कदाचित्भी नहीं होवैहै । अथवा (यस्य नाहंकृतो भावः) इस वचका यह दूसरा अर्थ करणा–जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषका भाव कहिये सद्भाव अहंकृत कहिये अहं इस प्रकारके कथन योग्य नहीं है । काहेतैं तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै अहंकारके बाधहुए तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषका शुद्धस्वरूपमात्र ही परिशेषतैं रहै है। तिस शुद्धस्वरूपविषे मनवाणीकी विषयता है नहीं। अथवा (यस्य नाहंकृतो भावः)इस वचनका यह तीसरा अर्थ करणा–जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं अहंकृतः कहिये--अहंकारका भाव कहि-ये तादात्म्य अध्यास नहीं है। काहेतैं तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषका सो तादात्म्य अध्यास विवेककरिकै निवृत्त होइगया है । यद्यपि व्यवहारकालविषे तिस तत्त्व-वेत्ता पुरुषविषेभी बाधितानुवृत्तिकरिकै सो कर्त्तापणा प्रतीत होवैहै तथापि सो तत्त्ववेत्ता पुरुष इसप्रकारका विचारकरिकै आपणे आत्माविषे सो कर्त्तापणा मानता नहीं किंतु पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पांचोंविषे ही सो कर्त्तापणा मानता है सो विचार दिखावैं हैं । सर्वात्मारूप मेरेविषे मायाकरिकै कल्पित जो पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पंच हैं जे अधिष्ठानादिक पंच कल्पित संबं-धकरिकै मैं स्वप्रकाश असंग चैतन्यनैं प्रकाश करीते हैं। ते अधिष्ठानादिक पंचही सर्वकर्मोंके कर्त्ता हैं । मैं असंग आत्मा कदाचित्भी तिन कर्मोंका कर्त्ता नहीं हूं । किंतु मैं आत्मादेव तौ तिन अधिष्ठानादिक पंच कर्त्तावोंका तथा

तिनोंके व्यापारोंका साक्षीभूत हूं। तथा क्रियाशक्तिवाले प्राणरूप उपाधितैं तथा ज्ञानशक्तिवाले अंतःकरणरूप उपाधितैं मैं रहित हूं। तथा मैं शुद्ध हूं। तथा सर्वकार्यकारणोंके संबंधतैं मैं रहित हूं। तथा मैं कूटस्थ नित्य हूं। तथा मैं सर्व द्वैततैं रहित हूं। तथा जन्ममरणादिक सर्वविकारोंतैं मैं रहित हूं। इसी प्रकारके हमारे स्वरूपकूं (असंगो ह्ययं पुरुषः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च। अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥ अज आत्मा महान् ध्रुवः सलिल एको द्रष्टा-द्वैतः। अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणः। निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनम् ॥) इत्यादिक श्रुतियांभी प्रतिपादन करैं हैं। तथा इसी प्रकारके हमारे स्वरूपकूं (अविकार्योयमुच्यते। प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहंकार-विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। तत्त्ववित्तु न सज्जते। शरीरस्थोपि कौंतेय न करोति न लिप्यते ॥) इत्यादिक स्मृतियांभी प्रतिपादन करैं हैं। यातैं मैं असंग आत्मा तिन कर्मोंका कर्त्ता नहीं हूं। इसप्रकारका विचारकरिकै जो तत्त्ववेत्ता पुरुष असंग आत्माकूं कर्त्ता मानता नहीं किंतु पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पांचोंकूं ही सर्व कर्मोंका कर्ता मानै है इति। इसी कारणतैं ही जिस तत्त्वेत्ता पुरुषकी अंतः-करणरूप बुद्धि नहीं लिपायमान होवै है अर्थात् जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी बुद्धि अनुशयवाली होती नहीं। तहां इस कर्मकूं मैं करूंगा तथा इस कर्मके फलकूं मैं भोगौंगा इस प्रकारका जो अनुसंधान है जो अनुसंधान कर्त्ताभोक्तापणेकी वासना-रूप निमित्तकरिकै जन्य है तिस अनुसंधानरूप लेपका नाम अनुशय है सो लेप-रूप अनुशय पुण्यकर्मविषे तौ हर्षरूप होवै है और पापकर्मविषे पश्चात्तापरूप होवै है। इस प्रकारके दोनोंप्रकारके लेप करिकै जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी बुद्धि युक्त नहीं होवैहै। काहेतैं अकर्त्ता अभोक्ता आत्माके साक्षात्कारकरिकै तिस तत्त्व-वेत्ता पुरुषका कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमान निवृत्त होइगया है। याकारणतैं तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी बुद्धि तिस अनुशयरूप लेपयुक्त होती नहीं। यह: वार्त्ता श्रुति-विषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति—(नैनं कृताकृते तपतः। एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्द्धते कर्मणा नो कनीयान्। तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणापाप-केन। यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यंत एवमेवं विदि पापकर्म न श्लिष्यते।) अर्थ यह—जैसे अज्ञानी पुरुषकूं कऱ्याहुआ पापकर्म तथा नहीं कऱ्याहुआ पुण्य-कर्म तपायमान करैहै तैसे इस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषकूं कऱ्याहुआ पापकर्म तथा

नहीं कन्याहुआ पुण्यकर्म तपायमान करता नहीं । और इस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषका यह महान् प्रभाव है । जो पुण्यकर्मकरिकै तौ हर्षकूं नहीं प्राप्त होता तथा पापकर्मकरिकै परितापकूं नहीं प्राप्त होता । और मैं ब्रह्मरूप हूं इस प्रकारतैं प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं साक्षात्कारकरिकै यह तत्त्ववेत्ता पुरुष पुण्यपापकर्मोंकरिकै लिपायमान होता नहीं। और जैसे जलविषे स्थित कमलके पत्रकूं जल स्पर्श करते नहीं तैसे इस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं पुण्यपाप कर्म स्पर्श करता नहीं इति । इतने कहणेकरिकै यह अर्थ सिद्ध भया—जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं अहंकृतभाव नहीं है, तथा जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी बुद्धि लिपायमान नहीं होवैहै सो पूर्वउक्त दुर्मति पुरुषतैं विलक्षण सुमति परमार्थदर्शी तत्त्ववेत्ता पुरुष आत्माकूं केवल अकर्त्ता ही देखै है कदाचित् भी आत्माकूं कर्त्ता मानता नहीं । ऐसा तत्त्ववेत्ता पुरुष कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमानके अभावतैं अनिष्ट, इष्ट, मिश्र इस तीन प्रकारके कर्मके फलकूं कदाचित्भी प्राप्त होता नहीं । इतनाही इस गीताशास्त्रका अर्थ है इति । अब श्रीभगवान् तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी स्तुति करणेवासतै तिस पूर्वउक्त अहंकारके अभावकूं तथा बुद्धिलेपके अभावकूं कथन करैहैं (हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते इति ।) हे अर्जुन ! ऐसा तत्त्ववेत्ता पुरुष इन सर्व प्राणियोंकूं हनन करिकैभी नहीं हनन करैहै । अर्थात् मैं असंग आत्मा सर्वदा अकर्ता हूं इस प्रकारके अकर्त्ता स्वरूपके साक्षात्कारतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिस हननरूप क्रियाका कर्ता होवै नहीं । इसी कारणतैं ही सो तत्त्ववेत्ता पुरुष बंधायमानभी होता नहीं अर्थात् तिस हननरूप क्रियाके कार्यरूप अधर्मफलके साथिभी सो तत्त्ववेत्ता पुरुष संबंधकूं प्राप्त होता नहीं । इहां (यस्य नाहंकृतो भावः) इस वचनके अर्थका तौ (न हंति) इस वचनका अर्थ फलरूप है । और (बुद्धिर्यस्य न लिप्यते) इस वचनके अर्थका तौ (न निबध्यते) इस वचनका अर्थ फलरूप है । इहां (हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते ।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं तत्त्वसाक्षात्कारका महत्त्व कथन करया है । कोई तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्व प्राणियोंका हनन करै इस अर्थविषे भगवान्‌का तात्पर्य है नहीं । और सर्वात्मदर्शी तत्त्ववेत्ता पुरुषविषे सर्वप्राणियोंका हनन करणा संभवता नहीं । और (हत्वापि स इमाँल्लोकान्) इस वचनकरिकै तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषविषे जो हननक्रियाका कर्त्तापणा कथन करया है सो लौकिक बाधिक कर्तृत्वदृष्टिकरिकै कथन करयाहै । और

(न हंति) इस वचनकरिकै तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषविषे जो कर्तृत्वका निषेध कऱ्याहै सो शास्त्रीयपारमार्थिक दृष्टिकरिकै निषेध कऱ्या है यातैं (हत्वा न हंति) इन दोनों वचनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं इति। तहां इस गीताशास्त्रके आदिविषे (नायं हंति न हन्यते) इस वचनकरिकै आत्माविषे सर्वकर्मोंका अस्पर्शीपणा प्रतिज्ञाकरिकै (न जायते म्रियते) इत्यादिक हेतुरूप वचनोंकरिकै तिस प्रतिज्ञातअर्थकी सिद्धिकरिकै (वेदाविनाशिनं नित्यम् ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै विद्वान् पुरुषकूं सर्वकर्मोंके अधिकारकी निवृत्ति संक्षेपकरिकै कथन करीथी और सोई ही सर्वकर्मोंके अधिकारकी निवृत्ति मध्यविषे तिस तिस प्रसंगकरिकै विस्तारतैं प्रतिपादन करीथी। और इहां इतनाही इस गीताशास्त्रका अर्थ है, इस प्रकारतैं शास्त्रअर्थके एकतावत्व दिखावणेवासतै (न हंति न निबध्यते) इस वचनकरिकै सा सर्वकर्मोंके अधिकारकी निवृत्ति उपसंहार करी है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—अविद्याकरिकै कल्पित तथा अधिष्ठानादिक पंच अनात्मपदार्थोंकरिकै करे हुए ऐसे जे विहित निषिद्ध कर्म हैं तिन सर्वकर्मोंका अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारकी आत्मविद्याकरिकै मूलसहित उच्छेद होइजावै है। याकारणतैं परमार्थसंन्यासी पुरुषोंकूं अनिष्ट, इष्ट, मिश्र यह तीन प्रकारका कर्मका फल नहीं प्राप्त होवैहै। यह जो अर्थ पूर्व कथन कऱ्याथा सो युक्तही है। तहां मैं आत्मा अकर्त्ताहूं तथा अभोक्ता हूं इस प्रकारका जो अकार्त्ता आत्माका साक्षात्कार है इसीका नाम परमार्थसंन्यास है। इस प्रकारका परमार्थसंन्यास जनक अजातशत्रु आदिक तत्त्ववेत्ता गृहस्थ पुरुषोंविषेभी विद्यमान है। यातैं ते जनकादिक तत्त्ववेत्ता पुरुषभी तिस परमार्थसंन्यासवाले ही हैं। यद्यपि जनकादिक गृहस्थज्ञानियोंविषे आपणे वर्णआश्रमके कर्म देखणेविषे आवैं हैं तथापि जैसे तत्त्ववेत्ता परमहंस संन्यासियोंविषे प्रारब्धकर्मके वशतैं बाधितानुवृत्तिकरिकै अथवा अन्यपुरुषोंकी कल्पनाकरिकै भिक्षा अटनादिक कर्म प्रतीत होवैं हैं तैसे प्रबल प्रारब्धकर्मके वशतैं बाधितानुवृत्तिकरिकै अथवा अन्य पुरुषोंकी कल्पनाकरीकै तिन जनकादिकोंविषे सो कर्मोंका दर्शन विरुद्ध नहीं है। इसी कारणतैं ही आत्मज्ञानका फलभूत विद्वत्संन्यास कह्या जावैहै। और साधनभूत जो विविदिषा संन्यास है सो विविदिषा संन्यास तौ प्रथम इसप्रकारका नहीं हुआभी ज्ञानकी उत्पत्तितैं अनंतर इसी प्रकारका ही होवैहै ॥ १७ ॥

तहां पूर्व अधिष्ठानादिक पांचोंकूं सर्वकर्मोंका हेतुरूप कथन करिकै आत्माकूं तिन सर्वकर्मोंके स्पर्शतैं रहित कथन कऱ्या । अब तिस पूर्वउक्त अर्थकूं ही ज्ञान-ज्ञेयादिक प्रक्रियाकी रचनाकरिकै तथा त्रैगुण्यभेदके व्याख्यानकरिकै पूर्वतैं विलक्षण रीतितैं वर्णन करैहैं–

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ॥
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) ज्ञानम् । ज्ञेयम् । परिज्ञाता । त्रिविधा । कर्मचोदना । करणम् । कर्म । कर्त्ता । इति । त्रिविधः । कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ज्ञान ज्ञेय परिज्ञाता यह तीनों कर्मके प्रवर्तकहैं तथा करण कर्म कर्त्ता यह तीनों कर्मका आश्रय है ॥ १८ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! जिसतैं वस्तुका यथार्थस्वरूप प्रकाशमान करीता है ताका नाम ज्ञान है अर्थात् प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकरिकै जन्य जो घटादिक विषयोंका प्रकाशरूप क्रिया है ताका नाम ज्ञान है । और तिस ज्ञानरूपक्रियाके कर्मभूत जे घटादिक पदार्थ हैं तिन्होंका नाम ज्ञेय है । और तिस ज्ञानरूप क्रिया-का आश्रयभूत तथा अंतःकरणरूप उपाधिकरिकै परिकल्पित ऐसा जो भोक्ता है ताका नाम परिज्ञाता है । यह ज्ञान, ज्ञेय, परिज्ञाता समुच्चयभावकूं प्राप्त होइकै ही इष्ट अनिष्टरूप सर्वकर्मोंका आरंभ करैहै । इन तीनोंके समुच्चयतैं विना किसी-भी कर्मका आरंभ होवै नहीं । काहेतैं ज्ञेयके तथा ज्ञाताके विद्यमान हुएभी ज्ञा-नके अभावहुए इस पुरुषकी प्रवृत्ति होती नहीं । यातैं प्रवृत्तिविषे तिस ज्ञानकूं अव-श्य हेतु मान्या चाहिये । और ज्ञानके तथा ज्ञाताके विद्यमान हुएभी देशकालकरिकै ज्ञेयके व्यवहित हुए इसपुरुषकी प्रवृत्ति होतीनहीं यातैं तिस प्रवृत्तिविषे ज्ञेयकूंभी अवश्य हेतु मान्याचाहिये । और सुषुप्तिअवस्थाविषे संस्काररूप ज्ञानज्ञेयके विद्यमानहुएभी ज्ञाताके अभावतैं इस पुरुषकी प्रवृत्ति होती नहीं । यातैं तिस प्रवृत्तिविषे परि-ज्ञाताकूंभी अवश्य हेतु मान्या चाहिये । यातैं ज्ञान, ज्ञेय, परिज्ञाता यह तीनों परस्पर समुच्चयभावकूं प्राप्त होइकै ही सर्वकर्मोंके आरंभक होवैं हैं । इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैहैं । (त्रिविधा कर्मचोदना इति) इहां चोदना नाम प्रवर्त्तकका है अर्थात् ज्ञान, ज्ञेय, परिज्ञाता यह समुचितहुए तीनोंही कर्मके प्रवर्त्तक हैं ।

द्यपि पूर्वमीमांसाविषे क्रियाविषे प्रवर्त्तक वचनकूं ही चोदना कह्या है तथापि
हां ज्ञानादिकोंविषे वचनरूपता संभवती नहीं । यातैं वचनपणेका परित्याग-
करिकै क्रियाके प्रवर्तकमात्रविषे इहां चोदनाशब्दकी लक्षणा करणी । यातैं यह
र्थ सिद्ध भया । अनात्मपदार्थोंविषे ही प्रेरणीयत्व है तथा प्रेरकत्व है ।
संग आत्माविषे सो प्रेरणीयत्व तथा प्रेरकत्व है नहीं इति । इतने करिकै (ज्ञानं
यं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।) इस पूर्वार्द्धका अर्थ अथन कर्या । अब
करणं कर्म कर्त्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ।) इस उत्तरार्द्धका अर्थ वर्णन करैहैं ।
हां जिसके व्यापारतैं अनंतर क्रियाकी सिद्धि होवैहै ताका नाम करण है ।
ो करण बाह्य, अंतर भेदकारिकै दोप्रकारका होवैहै । तहां श्रोत्रादिक इंद्रिय तौ
ाह्यकरण है । और मनबुद्धि आदिक अंतःकरण है । और कर्त्तापुरुषकूं क्रिया-
करिकै प्राप्तहोणेकूं इष्ट जो कारक है ताका नाम कर्म है सो कर्म उत्पाद्य, आप्य,
स्कार्य, विकार्य्य इस भेदकारिकै च्यारि प्रकारका होवैहै । तहां जो वस्तु उत्प-
नेके योग्य होवैहै ताकूं उत्पाद्य कहैहैं । अथवा जो वस्तु पूर्व न होइकै पश्चात
त्पन्न होवै ताकूं उत्पाद्य कहैहैं । और जो वस्तु पूर्व सिद्ध हुआही प्राप्त होवैहै
ाकूं आप्य कहैहैं । और गुणाधान मलापकर्षरूप संस्कारके योग्य जो वस्तु है
ाकूं संस्कार्य कहैहैं । और पूर्वअवस्थाका परित्यागकरिकै अवस्थांतरकी जा
ाप्ति है ताका नाम विकार है ता विकारकूं जो वस्तु प्राप्त होवै ताकूं विकार्य
हैहैं इति । और जो इतर कारकोंकरिकै अप्रयोज्य होवै तथा सकलकारकोंका
योजक होवै ताका नाम कर्त्ता है सो कर्त्ता इहां चित्अचितकी ग्रंथिरूप लेणा ।
ह करण, कर्म, कर्त्ता तीनोंही परस्पर समुच्चयभावकूं प्राप्त होइकै कर्मसंग्रह
अर्थात् कर्मोंका आश्रयरूप है । तहां (करणं कर्म कर्त्तेति) इस वचनके
ंतविषे स्थित जो इति यह शब्द है तिस इतिशब्दतैं संप्रदान, अपादान, अधिक-
ण इन तीन कारकोंकाभी करणादिक तीन कारकोंविषे ही अंतर्भाव ग्रहण
रणा । तहां सम्यक् श्रेयबुद्धिकरिकै जिसके ताईं वस्तु दईजावै है ताकूं
प्रदान कहैहैं । जैसे वेदवेत्ता ब्राह्मणके ताईं गौकूं देता है । इहां वेदवेत्ता
ाह्मण संप्रदानकारक है और संयोगपूर्वक विभागविषे जो अवधि है ताकूं
पादान कहैहैं । जैसे पर्वततैं श्रीगंगाजी उतरती है । इहां पर्वत अपादानकारक
। आधारका नाम अधिकरण है इति । इसप्रकारके कर्त्ता, कर्म, करण, संप्र-

दान, अपादान, अधिकरण यह षट् कारक व्याकरणविषे प्रसिद्ध हैं। तहां संप्रदान, अपादान, अधिकरण इन तीनकारकोंका कर्त्तादिकोंविषे अंतर्भाव-करिकै श्रीभगवान्नैं इहां कर्त्ता, कर्म, करण यह तीनप्रकारके कारक कथन करेहैं । इस प्रकार त्रिविधभावकूं प्राप्तहुआ सो कारकषट्क ही सर्व-क्रियाका आश्रय है । कूटस्थ आत्मा किसीभी क्रियाका आश्रय नहीं है इति । यातैं इस श्लोककरिकै यह भावार्थ सिद्ध भया । जेजे कर्मके प्रेरक होवैं हैं तथा जे जे कर्मके आश्रय होवैं हैं ते सर्व कारकरूपही होवैं हैं । तथा त्रिगुणात्मकही होवैं हैं । और यह आत्मादेव तौ कारकभावतैं रहित है तथा तीन गुणोंतैं भी रहित है । यातैं यह आत्मादेव सर्वकर्मोंके स्पर्शतैं रहित है ॥ १८ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे ज्ञान, ज्ञेय परिज्ञाता तथा करण, कर्म, कर्त्ता यह दो त्रिक कथन करे । अब तिन दोनों त्रिकोंविषे त्रिगुणरूपता अवश्यकरिकै कहणे योग्य है । यातैं श्रीभगवान् तिन दोनों त्रिकोंकूं संक्षेपतैं कथन करिकै तिन दोनों त्रिकोंविषे त्रिगुणरूपताकी प्रतिज्ञा करैं हैं–

ज्ञानं कर्म च कर्त्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ॥
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) ज्ञानम् । कर्म । च । कर्त्ता । च । त्रिधा । एव । गुण-भेदतः । प्रोच्यते । गुणसंख्याने । यथावत् । शृणु । तानि । अपि ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सांख्यशास्त्रविषे ज्ञान तथा कर्म तथा कर्त्ता सत्त्वा-दिक तीन गुणोंके भेदतैं तीनप्रकारका ही कथन करया है तिनें ज्ञानादिकोंकूं तथा तिनोंके भेदोंकूं तूं यथावत् श्रवण कर ॥ १९ ॥

भा० टी०–तहां (ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता) इस पूर्वउक्त वचनविषे कथन कऱ्या जो प्रत्यक्षादिक प्रमाणजन्य वस्तुका प्रकाशरूप अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान है सो ज्ञानही इहां ज्ञानशब्दकरिकै ग्रहण करणा । और वस्तुविषे जो ज्ञेयपणा होवैहै सो ज्ञानरूप उपाधिकृत होवै है ज्ञानतैं विना ज्ञेयपणा होवै नहीं । यातैं पूर्वउक्त ज्ञेयका इस ज्ञानविषेही अंतर्भाव जानणा । और इहां कर्मशब्दकरिकै यज्ञादिरूप क्रियाका ग्रहण करणा । जा यज्ञादिरूप क्रिया (त्रिविधः कर्मसंग्रहः) इस

वचनविषे पूर्व कर्मशब्दकारिकै कथन करी है । और (ज्ञानं कर्म च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है तिस चकारतैं पूर्वउक्त कर्म करण इन दोनों कारकोंकाभी इस क्रियाविषेही अंतर्भाव जानणा। काहेतैं वस्तुविषे जो कारकपणा होवैहै सो क्रियारूप उपाधिकृत होवैहै । क्रियातैं विना कारकपणा होवै नहीं । यातैं कर्म करण इन दोनों कारकोंका तिस क्रियाविषे अंतर्भाव युक्त ही है। और पूर्वश्लोकविषे (करणं कर्म कर्तेति) इस वचनविषे कथन कऱ्या जो क्रियाका उत्पादक कर्ता है तिसीही कर्त्ताका इहां कर्त्ताशब्दकारिकै ग्रहण करणा । और (कर्त्ता च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है तिस चकारतैं पूर्व कथन करेहुए परिज्ञाताका इस कर्त्ताविषे ही अंतर्भाव जानणा। यद्यपि करण कर्म इन दोनों कारकोंकी न्याई कर्त्ताविषेभी सो क्रिया उपाधिकपणा तुल्यही है । यातैं करण कर्म इन दोनों कारकोंकी न्याई कर्त्ताकाभी इहां पृथक् कथन नहीं कऱ्या चाहिये, तथापि कर्त्ताविषे जो पृथक् त्रिगुणतारूपका कथन है सो कुतार्किकपुरुषोंके भ्रमकारिकै कल्पित आत्मपणेके निवृत्तकरणेवासतै है । जिसकारणतैं ते कुतार्किक पुरुष कर्त्ताकूं ही आत्मा मानैंहैं । ऐसा ज्ञान तथा कर्म तथा कर्त्ता गुणसंख्यानविषे सत्त्व, रज, तम इन तीनगुणोंके भेदतैं सात्त्विक, राजस, तामस यह तीनप्रकारका कथन कऱ्याहै । तहां सत्त्व, रज, तम यह तीनों गुण कार्यके भेदकारिकै प्रतिपादन करिये जिस शास्त्रविषे ता शास्त्रका नाम गुणसंख्यान है ऐसा कपिल मुनिकृत सांख्यशास्त्र है। ऐसे सांख्यशास्त्रविषे ते ज्ञान, कर्म, कर्त्ता तीनों सत्त्वादिक गुणोंके भेदकारिकै सात्त्विक, राजस, तामस यह तीनप्रकारके ही कथन करे हैं । इहां (त्रिधैव) इस वचनविषे स्थित जो एव यह शब्द है सो एव शब्द सात्त्विक, राजस, तामस इन तीन प्रकारोंतैं भिन्न चतुर्थप्रकारके निवृत्त करणेवासतै है । यद्यपि कपिलमुनिरचित सांख्यशास्त्र परमार्थब्रह्मकी एकताविषे प्रमाणभूत नहीं है । जिस कारणतैं सांख्यशास्त्रविषे नाना आत्माही अंगीकार करे हैं तथापि सो सांख्यशास्त्र अपरमार्थरूप सत्त्वादिक गुणोंके गौणभेदके निरूपणविषे व्यावहारिक प्रमाणभावकूं प्राप्त होवै है । इस कारणतैं वक्ष्यमाण अर्थकी स्तुति करणेवासतै श्रीभगवान्नैं (गुणसंख्याने प्रोच्यते) यह वचन कथन कऱ्या है। अर्थात् यह ज्ञानादिकोंका त्रिविधपणा केवल इस गीताशास्त्रविषे ही प्रसिद्ध नहीं है किंतु कपिलमुनिरचित सांख्यशास्त्रविषेभी प्रसिद्ध है । इस प्रकारतैं वक्ष्यमाण अर्थकी

स्तुति करणेवासतै श्रीभगवान्नैं सो वचन कथन कऱ्या है इति । हे अर्जुन ! तिन ज्ञानादिक तीनोंकूं तथा सत्त्वादिक गुणकृत तिन ज्ञानादिकोंके भेदकूं तूं यथावत् श्रवण कर । अर्थात् शास्त्रविषे जिस प्रकारका तिनोंका स्वरूप कथन कऱ्याहै तिसी प्रकारके तिनोंके स्वरूपकूं श्रवण करणेवासतै तूं सावधान होउ इति । यद्यपि पूर्व चतुर्दश अध्यायविषे तथा सप्तदश अध्यायविषेभी श्रीभगवान् सत्त्वादिक गुणोंकूं तथा तिन गुणोंकृत सात्त्विकादिक भेदकूं कथन करिआये हैं, यातैं पुनः इहां तिन गुणोंके तथा तिन गुणोंकृत भेदके कथन करणेतैं पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवैहै तथापि तिन वचनोंकी इस प्रकारतैं व्यवस्था करणेकरिकै पुनरुक्तिदोषकी निवृत्ति होवै है । तहां पूर्व चतुर्दश अध्यायविषे तौ (तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्) इत्यादिक वचनोंकरिकै सत्त्वादिक गुणोंविषे बंधके हेतुपणेका प्रकार निरूपण कऱ्याथा । गुणातीत पुरुषके जीवन्मुक्तपणेके निरूपण करणेवासतै और सप्तदश अध्यायविषे तौ (यजंते सात्त्विका देवान्) इत्यादिक वचनोंकरिकै सत्त्वादिक गुणकृत त्रिविधस्वभावके निरूपणकरिकै यह अर्थ सिद्ध कऱ्याथा । इस अधिकारी पुरुषनैं असुररूप राजस तामस स्वभावका परित्याग करिकै सात्त्विक आहारादिकोंके सेवनकरिकै देवरूप सात्त्विक स्वभाव ही संपादन करणा इति । और इस अष्टादश अध्यायविषे तौ स्वभावतैं गुणातीत असंग आत्माका क्रिया कारक फल इन तीनोंके साथि किंचित्मात्रभी संबंध नहीं है, इस अर्थके बोधन करणेवासतै तिन क्रियाकारकादिक सर्वोंकूं त्रिगुणरूपता ही है इसतैं भिन्न दूसरा कोई स्वरूप तिन क्रियाकारकादिकोंका है नहीं जिसकरिकै इन क्रियाकारकादिकोंकूं आत्माका संबंधीपणा होवै इस अर्थकूं कथन कऱ्याहै । इतनी तीनों अध्यायोंके वचनोंविषे विशेषता है । यातैं इहां पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ १९ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे ज्ञान, कर्म, कर्त्ता इन तीनोंका सात्त्विक, राजस, तामस यह त्रिविधपणा ज्ञातव्यरूपकरिकै प्रतिज्ञा कऱ्या । अब प्रथम ज्ञानके त्रिविधपणेकूं तीनश्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् निरूपण करैं हैं । ताकेविषेभी प्रथम अद्वैत आत्मवादियोंके सात्त्विक ज्ञानकूं कथन करैं हैं-

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ॥
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥२०॥

पदच्छेदः) सर्वभूतेषु । येन । एकम् । भावम् । अव्ययम् ।
। अविभक्तम् । विभक्तेषु । तत् । ज्ञानम् । विद्धि । सात्त्वि-
। २० ॥

पदार्थः) हे अर्जुन ! परस्परभेदवाले सर्वभूतोंविषे सर्वत्र व्यापक एक
सत्तारूपभावकूं जिस ज्ञानकरिकै यह पुरुष साक्षात्कार करैहै तिस ज्ञानकूं
त्विक जान ॥ २० ॥

ा० टी०–हे अर्जुन ! अव्याकृत, हिरण्यगर्भ, विराट् यह हैं नाम जिनोंके
बीज सूक्ष्म स्थूलरूप समष्टिव्यष्टिरूप सर्वभूत हैं जे सर्वभूत विभक्त हैं अर्थात
न्न नामरूपकरिकै परस्पर व्यावर्त्य हैं तथा नानारस हैं ऐसे उत्पत्तिनाशवान्
रूप सर्वभूतोंविषे सत्तारूप भावकूं जिस वेदांतवाक्योंके विचारजन्य अंतः-
ी वृत्तिरूप ज्ञानकरिकै यह अधिकारी पुरुष साक्षात्कार करैहै अर्थात् तिन
विषे परमार्थसत्तारूप स्वप्रकाश आनंदआत्माकूं जिस ज्ञानकरिकै यह अधि-
ुरुष साक्षात्कार करैहै । कैसा है सो सत्तारूपभाव–एक है अर्थात् सजा-
, विजातीयभेद, स्वगतभेद इन तीन भेदोंतैं रहित होणेतैं अद्वितीयरूप है।
सा है सो सत्तारूपभाव–अव्यय है अर्थात् उत्पत्ति विनाशादिक सर्वविकारों-
त है तथा अदृश्य है । पुनः कैसा है सो सत्तारूपभाव–अविभक्त है अर्थात्
डपदार्थोंका अधिष्ठानरूपकरिकै तथा सर्व कल्पित पदार्थोंके बाधका अव-
करिकै सर्वत्र व्यापक है। ऐसे सर्वत्र व्यापक अद्वितीय आत्मादेवकूं यह
ारी पुरुष जिस वेदांतवाक्यजन्य ज्ञानकरिकै साक्षात्कार करैहै तिस मि-
चके बाधक आत्मज्ञानकूं तूं सात्त्विकज्ञान जान । और इस अद्वितीय आ-
साक्षात्कारतैं भिन्न जितनाक द्वैतदर्शन है सो सर्वही द्वैतदर्शन राजस हो-
ा तामस होणेतैं संसारकाही कारण है । यातैं तिस द्वैतदर्शनविषे कदाचि-
ात्त्विकपणा होवै नहीं ॥ २० ॥
 राजसज्ञानका स्वरूप वर्णन करैं हैं–

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ॥
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥

दच्छेदः) पृथक्त्वेन । तु । यत् । ज्ञानम् । नानाभावान् । पृथ-
न् । वेत्ति । सर्वेषु । भूतेषु । तत् । ज्ञानम् । विद्धि । राजसम् ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः परस्परभेदकरिकै स्थित हुए देहादिक सर्व भूतों-विषे परस्परविलक्षण नानाआत्मावोंकूं जो ज्ञान जानै है तिस ज्ञानकूं तूं राजस जान ॥ २१ ॥

भा० टी०—इहां (पृथक्त्वेन तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द पूर्वश्लोकउक्त सात्त्विकज्ञानतैं इस राजसज्ञानविषे विलक्षणताके बोधन करणेवासतै है। सा विलक्षणता कहैहैं—हे अर्जुन ! परस्परभेदकरिकै स्थित हुए जे देहादिक सर्वभूत हैं तिन सर्वभूतोंविषे जो ज्ञान पृथग्विध नानाभावोंकूं देखै है अर्थात् देहदेहविषे सुखित्व दुःखित्वादिरूपकरिकै परस्परविलक्षण भिन्न भिन्न आत्मावोंकूं जो ज्ञान देखैहै। तात्पर्य यह—इस लोकविषे कोई प्राणी सुखी है, कोई प्राणी दुःखी है, कोई प्राणी पंडित है, कोई प्राणी मूर्ख है इत्यादिक अनेकप्रकारकी विलक्षणता देखणेविषे आवैहै। जो कदाचित् सर्वदेहोंविषे एकही आत्मा होवै तौ एक प्राणीके सुखी हुए सर्वही प्राणी सुखी हुए चाहिये। तथा एक प्राणीके दुःखी हुए सर्वही प्राणी दुःखी हुए चाहिये। सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं। यातैं सर्व देहोंविषे एक आत्मा नहींहै किंतु देहदेहविषे भिन्नभिन्न आत्मा है इस प्रकारके कुतर्कों करिकै उत्पन्न हुआ जो ज्ञान देहदेहविषे भिन्नभिन्न आत्माकूं देखैहै तिस ज्ञानकूं तूं राजस ज्ञान जान। इहां यद्यपि (यज्ज्ञानं वेत्ति) इस वचनके स्थानविषे (येन ज्ञानेन वेत्ति) इस प्रकारका ही वचन कहणा योग्यथा। तथापि (यज्ज्ञानं वेत्ति) यह जो वचन श्रीभगवान्नैं कथन कऱ्याहै सो तिस ज्ञानरूप करणविषे कर्तृत्वके उपचारतैं कथन कऱ्या है। जैसे (एधांसि पचंति) यह वचन पाकके करणरूप काष्ठोंविषे कर्तृत्वके उपचारतैं कह्या जावै है। अथवा सो ज्ञान कर्त्तारूप अहंकारका वृत्तिरूप है। यातैं कर्त्तारूप अहंकारका तिस वृत्तिरूप ज्ञानके साथि अभेद मानिकै श्रीभगवान्नैं (यज्ज्ञानं वेत्ति) यह वचन कऱ्या है इति। और (यज्ज्ञानं वेत्ति) इस वचनविषे पूर्व ज्ञानपद कथन करिकै (तज्ज्ञानम्) इस वचनविषे जो पुनः ज्ञानपद कथन कऱ्या है सो ज्ञानपद आत्माके भेदज्ञानकूं तथा तिन अनात्माके भेदज्ञानकूं जनावै है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। देह देहविषे आत्मावोंका परस्परभेद १ तथा तिन आत्मावोंका ईश्वरतैं भेद २ तथा तिन आत्मावोंतैं अचेतन वर्गका भेद ३ तथा ईश्वरतैं अचेतन वर्गका भेद ४ तथा तिस अचेतन वर्गका परस्परभेद ५ इसप्रकारके अनौपाधिक

पंच भेदोंकूं विषय करणेहारा जो कुतार्किक पुरुषोंका ज्ञान है । सो भेदज्ञान राजसही जानणा ॥ २१ ॥

अब तामसज्ञानका स्वरूप वर्णन करें हैं-

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ॥
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामससमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) यत् । तु । कृत्स्नवत् । एकस्मिन् । कार्ये । सक्तम् । अहैतुकम् । अतत्त्वार्थवत् । अल्पम् । च । तत् । तामसम् । उदाहृतम् ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो ज्ञान किसीएक कार्यविषे परिपूर्ण अर्थकी-न्याई अभिनिवेशवाला है तथा युक्तितैं रहित है तथा परमार्थआलंबनतैं रहित है तथा अल्प है सो ज्ञान शिष्टपुरुषोंनैं तामस कह्याहै ॥ २२ ॥

भा॰ टी॰-इहां (यत्त) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वश्लोकउक्त राजसज्ञानतैं इस तामसज्ञानविषे विलक्षणताके बोधन करणे वास्तै है । सा विलक्षणता दिखावैं हैं-आकाशादिक पंचभूतोंके बहुत कार्योंके विद्यमान हुएभी तिन सर्वकार्योंके मध्यविषे किसी एक देहरूप कार्यविषे अथवा प्रतिमादिरूप कार्यविषे जो ज्ञान परिपूर्ण अर्थकी न्याई सक्त है अर्थात् इतना मात्र ही आत्मा है तथा इतनामात्र ही ईश्वर है इसतैं परे कोई आत्मा नहीं हैं तथा इसतैं परे कोई ईश्वर नहीं है इसप्रकारके अभिनिवेशकरिकै जो ज्ञान किसी देहरूप एककार्यविषे अथवा किसी प्रतिमादिरूप एककार्यविषे ही संलग्न हुआ है। जैसे आत्मा सावयव है तथा देह परिमाण है या प्रकारका दिगंबरोंका ज्ञान है । तथा जैसे यह स्थूल देह ही आत्मा है इस प्रकारका चार्वाकोंका ज्ञान है । तथा जैसे पाषाणकाष्ठादिरूप यह प्रतिमामात्र ही ईश्वर है इसतैं परे दूसरा कोई ईश्वर है नहीं इस प्रकारका शास्त्रसंस्कारोंतैं रहित मूढपुरुषोंका ज्ञान है । तथा जो ज्ञान अहैतुक है क्या उत्पत्तिरूप हेतुतैं रहित है अर्थात् देहप्रतिमातैं भिन्न दूसरे जितनेक भूतोंके कार्य हैं तिन सर्वकार्योंविषे आत्मापणेके अभाव हुए तथा ईश्वरपणेके अभाव हुए इस भूतोंके कार्यरूप देहविषे सो आत्मपणा कैसे संभवैगा ? तथा इस भूतोंके कार्यरूप प्रतिमाविषे सो ईश्वरपणा

कैसे संभवैगा किंतु नहीं संभवैगा । इस प्रकारके विचारतैं जो ज्ञान रहित है। इसी कारणतैं ही जो ज्ञान अतत्त्वार्थवत् है । तहां जो अर्थ प्रमाणांतर-कारिकै बाधित नहीं होवै है ता अर्थका नाम तत्त्वार्थ है। सो तत्त्वार्थ जिस ज्ञानका विषय नहीं होवै ता ज्ञानका नाम अतत्त्वार्थवत् है अर्थात् जो ज्ञान अयथार्थ अर्थविषयक है तथा जो ज्ञान अल्प है अर्थात् आत्माको नित्यत्व-विभुत्वकूं नहीं विषय करणेतैं जो ज्ञान अत्यंत अल्प है । इस प्रकारका जो अनित्य परिच्छिन्न देहादिकोंविषे आत्मत्व अभिमानरूप चार्वाकादिकोंका ज्ञान है। जो ज्ञान आत्मा तथा ईश्वर दोनों नित्य हैं तथा विभु हैं तथा देहादिक संघाततैं भिन्न हैं इसप्रकारके तार्किकपुरुषोंके ज्ञानतैंभी अत्यंत विलक्षण है सो ज्ञान बुद्धिमान् पुरुषोंनैं तामस ज्ञान कह्या है ॥ २२ ॥

तहां एक अद्वितीय आत्माकूं विषय करणेहारा जो औपनिषद् पुरुषोंका सात्त्विकज्ञान है सो अद्वितीय आत्मविषयक सात्त्विक ज्ञान तौ मुमुक्षुजनोंतैं ग्रहण करणे योग्य है। और नित्य तथा विभु तथा परस्पर भिन्न ऐसे अनेक आत्मावोंकूं विषय करणेहारा जो द्वैतदर्शी तार्किक पुरुषोंका राजसज्ञान है तथा अनित्य परिच्छिन्न देहादिरूप आत्माकूं विषय करणेहारा जो चार्वाकादि-कोंका तामसज्ञान है ते राजस तामस दोनों ज्ञान मुमुक्षुजनोंनैं परित्याग करणे योग्य हैं। यह अर्थ (सर्वभूतेषु येनैकम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकारिकै पूर्व कथन कऱ्या । अब (नियतं संगरहितम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकारिकै श्रीभगवान् सात्त्विक, राजस, तामस इस भेदकारिकै कर्मके त्रिविधपणेकूं कथन करैं हैं । तहां प्रथम सात्त्विककर्मका स्वरूप वर्णन करैं हैं-

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ॥
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) नियतम् । संगरहितम् । अरागद्वेषतः । कृतम् । अफलप्रेप्सुना । कर्म । यत् । तत् । सात्त्विकम् । उच्यते ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! फलकी इच्छातैं रहित पुरुषनैं संगतैं रहित तथा राग द्वेषतैं रहित जो नित्य कर्म करीता है सो कर्म सात्त्विक कह्यांजावै है ॥ २३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो कर्म नियत है अर्थात् तिस कर्मके जितनेक द्रव्य, देवता, मंत्र आदिक अंग हैं तिन सर्व अंगोंकी परिपूर्णता करणेविषे असमर्थ पुरुषों-

कूंभी जो कर्म आपणे फलकी प्राप्ति अवश्यकरिकै करै है । ऐसा अग्निहोत्र संध्योपासनादिक नित्यकर्म है । तथा जो कर्म संगरहित है । तहां मैं ही महान् याज्ञिक हूं हमारे समान दूसरा कोई है नहीं इत्यादिक अभिमानरूप तथा अहंकार है नाम जिसका ऐसा जो राजस गर्वविशेष है ताका नाम संग है। तिस संगतैं जो कर्म रहित है अर्थात् जो कर्म इसप्रकारके अभिमानपूर्वक नहीं कऱ्याजावै है तहां जितने कालपर्यंत अज्ञान है तितने कालपर्यंत कर्तृत्व भोक्तृत्वका प्रवर्त्तक अहंकार सात्त्विकपुरुषविषेभी रहै है । और तिस अज्ञानतैं तथा अहंकारतैं रहित जो तत्त्ववेत्ता पुरुष है तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं तौ कर्मोंका अधिकारही नहीं है। यह वार्त्ता पूर्व अनेकबार कथन करिआये हैं । यातैं सात्त्विकपुरुषविषे कर्तृत्व भोक्तृत्वके प्रवर्तक सामान्य अहंकारके विद्यमान हुएभी सो राजसगर्वरूप विशेष अहंकार रहता नहीं इति । तथा जो कर्म अरागद्वेषतैं कऱ्याजावै है तहां इस कर्मकरिकै मैं राजसन्मान आदिक्नोंकूं प्राप्त होवौंगा इस प्रकारके अभिप्रायका नाम राग है और इस कर्मकरिकै मैं शत्रुकूं पराजय करूंगा इस प्रकारके अभिप्रायका नाम द्वेष है । तिस राग द्वेष दोनोंकरिकै जो कर्म नहीं करयाहुआ है इस प्रकारका जो यज्ञ दान होमादिरूप नित्यकर्म फलकी इच्छातैं रहित निष्काम पुरुषनैं स्वधर्मजानिकै करीता है, सो यज्ञदानहोमादिरूप नित्यकर्म सात्त्विककर्म कह्या जावै है ॥२३॥

अब राजसकर्मका स्वरूप वर्णन करैं हैं–

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ॥
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) यत्[४] । तु[१] । कामेप्सुना[३] । कर्म[५] । साहंकारेण[४] । वा[३] । पुनः[२] । क्रियते । बहुलायासम्[८] । तत्[१०] । राजसम्[११] । उदाहृतम्[१२] ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः[२] सकामपुरुषनैं तथा[३] अहंकारयुक्त पुरुषनैं अनियत तथा[८] बहुतक्लेशकी प्राप्ति करणेहारा जो[४] काम्यकर्म करीताहै सो[१०] काम्यकर्म शिष्टपुरुषोंनैं[११] राजस कर्म कह्याहै[१२] ॥ २४ ॥

भा० टी०–तहां (यत्तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वउक्त सात्त्विककर्मतैं इस राजस कर्मविषे विलक्षणताके बोधन करणेवासतै है सा विलक्षणता दिखावैंहैं । हे अर्जुन ! स्वर्गादिक फलोंकी इच्छावान सकामपुरुषनैं

तथा पूर्वउक्त संगरूप गर्वयुक्त पुरुषनैं जो काम्यकर्म करीता है। जो कर्म बहुलायास है अर्थात् सर्व अंगोंकी संपूर्णतापूर्वक कन्याहुआही काम्यकर्म फलकी प्राप्ति करैहै किंचित्मात्र अंगकी विगुणताके हुए काम्यकर्म फलका हेतु होवै नहीं। यातैं सर्व अंगोंकी परिपूर्णता करणेकरिकै जो काम्यकर्म कर्त्तापुरुषकूं बहुतक्लेशकी प्राप्ति करणेहारा है । इहां (वा पुनः) इस वचनविषे स्थित जो पुनः यह शब्द है सो पुनः शब्द इस राजसकर्मविषे अनियतपणेकूं बोधन करैहै । काहेतैं, जैसे नित्यकर्मविषे सर्वदा कर्त्तव्यता होवै है तैसे इस काम्यकर्मविषे सर्वदा कर्त्तव्यता होवै नहीं किंतु जबपर्यंत इस पुरुषविषे फलकी कामना रहैहै तबपर्यंतही तिस काम्यकर्मकी कर्त्तव्यता रहैहै । कामनाके निवृत्त हुएतैं अनंतर तिस काम्यकर्मकी कर्त्तव्यता रहैनहीं । यातैं तिस काम्यकर्मविषे सो अनियतपणा युक्तही है। इस प्रकारका काम्यकर्म शिष्टपुरुषोंनैं राजसकर्म कह्या है । इहां सर्व विशेषणोंकरिकै इस राजसकर्मविषे पूर्वश्लोकउक्त सात्त्विककर्मके सर्व विशेषणोंतैं विपरीतपणा कथन कन्याहै ॥ २४ ॥

अब तामसकर्मका स्वरूप वर्णन करैहैं-

अनुबंधं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ॥
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) अनुबंधम् । क्षयम् । हिंसाम् । अनपेक्ष्य । च । पौरुषम् । मोहात् । आरभ्यते । कर्म । यत् । तत् । तामसम् । उच्यते ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः अनुबंधकूं तथा क्षयकूं तथा हिंसाकूं तथा पौरुषकूं न विचारिकै केवल अविवेकतैं जो कर्म आरंभ करीताहै सो कर्म तामसकर्म कह्याजावै ॥ २५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन! आगे होणेहारा जो अशुभफल है ताका नाम अनुबंध है । और शरीरके सामर्थ्यका तथा धनका तथा सेनाका जो विनाश है ताका नाम क्षय है । और प्राणियोंकी जा पीडाहै ताका नाम हिंसा है । और आपणा जो सामर्थ्य है ताका नाम पौरुष है। ऐसे अनुबंधकूं तथा क्षयकूं तथा हिंसाकूं तथा पौरुषकूं कर्मके प्रारंभतैं पूर्व न विचारिकै केवल अविवेकरूप मोहके

वशतैं जो कर्म आरंभ करीता है सो कर्म तामसकर्म कह्या जावैहै । जैसे इस दुर्योधननैं तिन अनुबंधादिक च्यारोंका नहीं विचारकरिकै केवल अविवेकरूप मोहतैं इस युद्धरूप कर्मका आरंभ कऱ्याहै ॥ २५ ॥

तहां (नियतं संगरहितम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकारिकै पूर्व सात्त्विक, राजस, तामस इस भेदकरिकै तीन प्रकारका कर्म निरूपण कऱ्या । अब (मुक्तसंगः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् सात्त्विक, राजस, तामस इस भेदकरिकै तीनप्रकारके कर्त्ताका कथन करैंहैं । तहां प्रथम सात्त्विककर्त्ताका स्वरूप वर्णन करैं हैं–

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्त्विक उच्यते॥२६॥

(पदच्छेदः) मुक्तसंगः । अनहंवादी । धृत्युत्साहसमन्वितः । सिद्ध्यसिद्ध्योः । निर्विकारः । कर्त्ता । सात्त्विकः । उच्यते ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! फलकी इच्छातैं रहित तथा अहंवादी तथा धृतिउत्साह दोनोंकरिकै युक्त तथा सिद्धिअसिद्धि दोनोंविषे निर्विकार ऐसा कर्त्ता सात्त्विककर्ता कह्याजावैहै ॥ २६ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! जो पुरुष मुक्तसंग है अर्थात् त्याग करी है कर्मफलकी इच्छा जिसनैं । तथा जो पुरुष अनहंवादी है अर्थात् मैं कर्मका कर्त्ता हूं इस प्रकारके अभिमानपूर्वक वचनकूं जो नहीं उच्चारण करैहै अथवा जो पुरुष आपणे गुणोंकी श्लाघातैं रहित है ताका नाम अनहंवादी है । तथा जो पुरुष धृति उत्साह इन दोनोंकरिकै युक्त है । तहां विघ्नआदिकोंके प्राप्त हुएभी प्रारंभ करेहुए कर्मके नहीं परित्यागका हेतुरूप जा अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है जाकूं धैर्य कहैंहैं ताका नाम धृति है । और इस कर्मकूं मैं अवश्यकरिकै सिद्ध करूंगा या प्रकारकी जा निश्चयात्मक बुद्धि है जा बुद्धि उक्त धृतिका कारणरूप है ताका नाम उत्साह है । ऐसे धृति उत्साह दोनोंकरिकै जो पुरुष युक्त है । तथा जो पुरुष करेहुए कर्मके फलकी प्राप्तिविषे तथा अप्राप्तिविषे निर्विकार है तहां करेहुए कर्मके फलकी प्राप्ति हुए जो हर्ष होवैहै तथा तिस फलकी अप्राप्ति हुए जो शोक होवै है सो हर्ष है कारण जिसका ऐसा जो मुखका विकासपणा है तथा सो शोक है कारण जिसका

ऐसा जो मुखका मालिनपणा है तिन दोनोंका नाम विकार है ता विकारतैं जो पुरुष रहित है तथा जो पुरुष केवल शास्त्रप्रमाणकरिकै ही तिस कर्मविषे प्रवृत्त हुआहै फलकरिकै अथवा रागकरिकै जो पुरुष तिस कर्मविषे प्रवृत्त हुआ नहीं, इस प्रकारका कर्त्ता पुरुष सात्त्विककर्त्ता कह्या जावैहै ॥ २६ ॥

अब राजसकर्त्ताका स्वरूप वर्णन करैं हैं–

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ॥
हर्षशोकान्वितः कर्त्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) रागी । कर्मफलप्रेप्सुः । लुब्धः । हिंसात्मकः । अशुचिः । हर्षशोकान्वितः । कर्त्ता । राजसः । परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष रागवाला है तथा कर्मके फलकी इच्छावान् है तथा लुब्ध है तथा हिंसास्वभाववाला है तथा अशुचि है तथा हर्षशोककरिकै युक्त है ऐसा कर्त्ता शिष्टपुरुषोंनैं राजसकर्त्ता कथन कऱ्याहै ॥ २७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो पुरुष रागी है अर्थात् कामादिकोंकरिकै युक्त है चित्त जिसका, इसी कारणतैं ही जो पुरुष तिस तिस कर्मके स्वर्गादिक फलोंकी इच्छावाला है । तथा जो पुरुष लुब्ध है अर्थात् पराये धनादिक पदार्थोंकी अभिलाषा करणेहारा है । अथवा धनवान् हुआभी जो पुरुष धर्मके वासतै धनके खर्च करणेमैं असमर्थ है ताका नाम लुब्ध है । तथा जो पुरुष हिंसात्मक है । तहां आपणे अभिप्रायकूं प्रगटकरिकै जो दूसरेके जीविकारूप वृत्तिका छेदन करणा है ताका नाम हिंसा है । सा हिंसा है स्वभाव जिसका ताका नाम हिंसात्मक है । और आपणे अभिप्रायकूं नहीं प्रगटकरिकै दूसरेके वृत्तिका छेदन करणेहारा पुरुष नैष्कृतिक कह्या जावैहै । इतना हिंसात्मक नैष्कृतिक दोनोंविषे भेद है । सो नैष्कृतिककर्त्ता अगले श्लोकविषे कथन करणा है इति । तथा जो पुरुष अशुचि है अर्थात् शास्त्रउक्त बाह्य अंतर दोप्रकारके शौचतैं रहित है । तहां जलमृत्तिकादिकोंकरिकै शरीरकी शुद्धिकूं बाह्यशौच कहैंहैं । और मैत्रीकरुणादिक शुभवासनावोंकरिकै चित्तकूं कामक्रोधादिकोंतैं रहित करणा याका नाम अंतरशौच है । तथा जो पुरुष कर्मके फलकी सिद्धिविषे तथा असिद्धिविषे हर्षशोककरिकै युक्त है इस प्रकारका कर्त्ता शिष्टपुरुषोंनैं राजसकर्त्ता कह्या है ॥ २७ ॥

अब तामसकर्त्ताका स्वरूप वर्णन करैहैं–

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ॥
विषादी दीर्घसूत्री च कर्त्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) अयुक्तः । प्राकृतः । स्तब्धः । शठः । नैष्कृतिकः । अलसः । विषादी । दीर्घसूत्री । च । कर्त्ता । तामसः । उच्यते ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो पुरुष अयुक्त है तथा प्राकृत है तथा स्तब्ध है तथा शठ है तथा नैष्कृतिक है तथा अलस है तथा विषादी है तथा दीर्घसूत्री है ऐसा कर्त्ता तामसकर्ता कह्या जावैहै ॥ २८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो पुरुष अयुक्त है अर्थात् सर्वकालविषे विषयोंविषे चित्तकी संलग्नताकारिकै जो पुरुष करणेयोग्य कर्मविषे चित्तकी सावधानतातैं रहित है तथा जो पुरुष प्राकृत है अर्थात् मूढबालककी न्याईं जो पुरुष शास्त्रसंस्कारतैं रहितबुद्धिवाला है तथा जो पुरुष स्तब्ध है अर्थात् गुरु देवता आदिकोंके आगेभी जो पुरुष नम्रभावतैं रहित है तथा जो पुरुष शठ है अर्थात् अन्य पुरुषोंकी वंचना करणेवास्तै जो पुरुष अन्यप्रकारतैं अर्थकूं जानताहुआभी अन्यप्रकारतैं ही ता अर्थका कथन करैहै तथा जो पुरुष नैष्कृतिक है अर्थात् यह हमारा बहुत उपकारी है या प्रकारका उपकारित्वभ्रम आपणेविषे दूसरे पुरुषका उत्पन्न करिकै तिस पुरुषकी जीविकारूप वृत्तिका छेदनकरिकै जो पुरुष आपणे स्वार्थकी सिद्धि करणेहारा है तथा जो पुरुष अलस है अर्थात् अवश्य करणेयोग्य कर्मविषेभी जो पुरुष नहीं प्रवृत्त होणेहारा है तथा जो पुरुष विषादी है अर्थात् असंतुष्ट स्वभाववाला होणेतैं जो पुरुष निरंतर अनुशोचनस्वभाववाला है तथा जो पुरुष दीर्घसूत्री है अर्थात् निरंतर सहस्रशंकावोंकरिकै युक्तअंतःकरणवाला होणेतैं जो पुरुष अत्यंत शिथिलप्रवृत्तिवाला है। तात्पर्य यह–जो कार्य एकदिनविषे करणेयोग्य है तिस कार्यकूं एकमासकरिकै भी करिसकैहै अथवा नहींभी करिसकै है इस प्रकारका कर्त्तापुरुष तामसकर्त्ता कह्या जावैहै ॥ २८ ॥

तहां पूर्व उन्नीसवें श्लोकविषे (ज्ञानं कर्म) इत्यादिक वचनकरिकै श्रीभगवानूनैं ज्ञान,कर्म, कर्त्ता इन तीनोंके सत्त्वादिकगुणोंके भेदकरिकै त्रिविधपणेके व्याख्यान करणेकी प्रतिज्ञा करीथी। सो तिन ज्ञानादिकोंका त्रिविधपणा (सर्वभूतेषु

येनैकम्) इत्यादिक नव श्लोकोंकरिकै प्रतिपादन कऱ्या । अब (मुक्तसंगोनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।) इस पूर्वउक्त वचनविषे सूचनकरी जा बुद्धि धृति हैं तिस बुद्धि धृति दोनोंके त्रिविधपणेके कथनकी प्रतिज्ञाकूं श्रीभगवान् कहैंहैं-

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ॥
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥ २९ ॥

(पदच्छेदः) बुद्धेः । भेदम् । धृतेः । च । एव । गुणतः । त्रिविधम् । शृणु । प्रोच्यमानम् । अशेषेण । पृथक्त्वेन । धनंजय ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे धनंजय बुद्धिका तथा धृतिका सत्त्वादिकगुणकरिकै त्रिविध ही भेद मैं परमेश्वरनैं तुम्हारे प्रति समग्र भिन्नभिन्नकरिकै कथन करीताहै तिसकूं तूं श्रवण कर ॥ २९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! निश्चयादिरूप वृत्तियोंवाली जा बुद्धि है तथा तिस बुद्धिकी वृत्तिविशेषरूप जा धृति है तिस बुद्धिका तथा तिस धृतिका सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंके भेदकरिकै सात्त्विक, राजस, तामस यह तीनप्रकारका ही भेद होवैहै । सो तीनप्रकारका भेद आलस्यादिक दोषतैं रहित तथा परमआप्तरूप मैं परमेश्वरनैं तैं अर्जुनके प्रति अशेषकरिकै तथा पृथक्पणेकरिकै कथन करीताहै अर्थात् समग्ररूपकरिकै तथा यह ग्रहणकरणेयोग्य है यह नहीं ग्रहणकरणेयोग्य है या प्रकारके विवेककरिकै कथन करीता है। ऐसे बुद्धिके तीनप्रकारके भेदकूं तथा धृतिके तीनप्रकारके भेदकूं तूं श्रवण कर। अर्थात् तिस त्रिविधभेदके श्रवण-करणेकूं तूं सावधान होउ । तहां (हे धनंजय) इस संबोधन करिकै दिग्विजयविषे अर्जुनके प्रसिद्ध महिमाकूं सूचन करताहुआ श्रीभगवान् तिस अर्जुनकूं तिस त्रिविधभेदके श्रवणकरणेविषे उत्साह करावताभया इति । इहां यह संदेह प्राप्त होवैहै । (बुद्धेर्भेदम्) इस वचनविषे श्रीभगवान्नैं जो बुद्धि यह शब्द कथन कऱ्या है तिस बुद्धिशब्दकरिकै श्रीभगवान्कूं केवल वृत्तिमात्र अभिप्रेत है। अथवा ता बुद्धिशब्दकरिकै वृत्तिवाला अंतःकरण अभिप्रेत है। तहां बुद्धिशब्दकरिकै केवल वृत्तिमात्र अभिप्रेत है इस प्रथमपक्षविषे तिस वृत्ति-रूप बुद्धितैं ज्ञानका स्वरूप पृथक् कह्या चाहिये । और बुद्धिशब्दकरिकै वृत्ति-वाला अंतःकरण अभिप्रेत है इस द्वितीयपक्षविषे तिस वृत्तिवाले अंतःकरणकूं ही कर्त्ताका स्वरूप पृथक् कह्या चाहिये । नहीं तौ पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवैगी।

किंवा वृत्तियोंवाले अंतःकरणकूं ही कर्त्तापणा होणेतैं ज्ञान धृति इन दोनोंका पृथक् कथन करणा व्यर्थही है । जो कोई यह कहै इच्छादिक वृत्तियोंके परिसंख्यावासतै तिस ज्ञान धृति दोनोंका पृथक् कथन है । सो यह कहणाभी संभवता नहीं । काहेतैं वृत्तियोंवाले अंतःकरणके त्रिविधपणेके कथन करिकै ही तिस अंतःकरणके इच्छादिक सर्ववृत्तियोंका त्रिविधपणा इह विवक्षित है । यातैं इच्छादिक वृत्तियोंके परिसंख्यावासतैभी तिस ज्ञान धृति दोनोंका पृथक् कथन संभवता नहीं इति । इस प्रकारके संदेहके प्राप्तहुए इहां या प्रकारका निर्णय करणा। पूर्व जो कर्ताका कथन कऱ्याथा सो अंतःकरणउपहित चिदाभासका नाम कर्त्ता है और इहां तौ तिस उपहितचिदाभाससे पृथक् करीहुई उपाधिमात्र ही कारणरूपकरिकै विवक्षित है सर्वत्र करणउपहितकूं ही कर्त्तापणा होवैहै । यद्यपि (कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव) इस श्रुतिविषे कथन करीहुई कामादिक सर्ववृत्तियोंका त्रिविधपणाही विवक्षित है, तथापि इहां बुद्धि धृति इन दोनोंका जो पृथक्पणा कथन कऱ्याहै सो ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति इन दोनोंके उपलक्षणवासतै कथन कऱ्याहै । कोई इच्छादिक वृत्तियोंके परिसंख्यावासतै कथन कऱ्या नहीं यातैं इहां किंचिन्मात्रभी पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ २९ ॥

तहां प्रथम (प्रवृत्तिं च) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै बुद्धिका त्रिविधपणा कथन करैहैं । ताके विषेभी प्रथम सात्त्विकबुद्धिका स्वरूप कथन करैहैं—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ॥
बंधं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३० ॥

(पदच्छेदः) प्रवृत्तिम् । च । निवृत्तिम् । च । कार्याकार्ये । भयाभये । बंधम् । मोक्षम् । च । या । वेत्ति । बुद्धिः । सा । पार्थ । सात्त्विकी ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! जो बुद्धि प्रवृत्तिकूं तथा निवृत्तिकूं तथा कार्यअकार्यकूं तथा भयअभयकूं तथा बंधकूं तथा मोक्षकूं जानैहै सो बुद्धि सात्त्विकी कहीजावैहै ॥ ३० ॥

भा० टी०—इहां कर्ममार्गका नाम प्रवृत्ति है । और संन्यासमार्गका नाम निवृत्ति है । और तिस प्रवृत्तिमार्गविषे स्थित होइकै जो कर्मोंका करणा है

ताका नाम कार्य है । और तिस निवृत्तिमार्गविषे स्थित होइकै जो कर्मोंका नहीं करणाहै ताका नाम अकार्य है। और तिस प्रवृत्तिमार्गविषे जो गर्भवासादिक दुःख है ताका नाम भय है। और तिस निवृत्तिमार्गविषे जो तिन गर्भवासादिक दुःखोंका अभाव है ताका नाम अभय है । और तिस प्रवृत्तिमार्गविषे मिथ्याज्ञानकृत जो कर्तृत्वादिक अभिमान है ताका नाम बंध है । और तिस निवृत्तिमार्गविषे जो तत्त्वज्ञानकृत अज्ञानका तथा ताके कार्यका अभाव है ताका नाम मोक्ष है । ऐसे प्रवृत्तिकूं तथा निवृत्तिकूं तथा कार्यकूं तथा अकार्यकूं तथा भयकूं तथा अभयकूं तथा बंधकूं तथा मोक्षकूं जा बुद्धि जानैहै सा प्रमाणजन्यनिश्चयवाली बुद्धि सात्त्विकी बुद्धि कहीजावैहै । यद्यपि तिन प्रवृत्ति निवृत्ति आदिकोंके ज्ञानविषे बुद्धिकूं करणरूपता ही है कर्त्तारूपता है नहीं किंतु तिस बुद्धिवाले पुरुषकूं ही कर्त्तारूपता है । यातैं (यया बुद्ध्या पुरुषः वेत्ति) इस प्रकारकाही कथन करणा उचित था तथापि तिस करणरूप बुद्धिविषे कर्तृत्वके उपचारतैं श्रीभगवान्नैं (या बुद्धिः वेत्ति) इस प्रकारका वचन कथन कऱ्याहै । इस प्रकारकी रीति आगेभी जानिलेणी इति । और इस श्लोकविषे श्रीभगवान्नैं बंध मोक्ष इन दोनोंका प्रवृत्ति आदिकोंके अंतविषे कथन कऱ्याहै यातैं इहां तिस बंधमोक्षविषयक ही तिन प्रवृत्ति आदिकोंका व्याख्यान कऱ्याहै ॥ ३० ॥

अब राजसी बुद्धिका स्वरूप वर्णन करैहैं-

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ॥
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥

(पदच्छेदः) यया । धर्मम् । अधर्मम् । च । कार्यम् । च । अकार्यम् । एव । च । अयथावत् । प्रजानाति । बुद्धिः । सा । पार्थ । राजसी ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! यह पुरुष जिस बुद्धिकरिकै धर्मकूं तथा अधर्मकूं तथा कार्यकूं तथा अकार्यकूं अयथावत् ही जानताहै सा बुद्धि राजसी कहीजावैहै ॥ ३१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै विहित जे अग्निहोत्रादिक कर्म हैं तिनका नाम धर्म है । और तिस श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै निषिद्ध जे

हिंसादिक कर्म हैं तिनका नाम अधर्महै । यह धर्म अधर्म दोनों अदृष्ट अर्थकी ही प्राप्ति करणेहारेहैं । ऐसे अदृष्ट अर्थकी प्राप्ति करणेहारे धर्म अधर्म दोनोंकूं तथा दृष्ट अर्थकी प्राप्ति करणेहारे कार्य अकार्य इन दोनोंकूं यह पुरुष जिसबुद्धिकरिकै अयथावत् ही जानताहै अर्थात् यह क्याहै इसप्रकारके अनिश्चयकूं अथवा यह वस्तु इसप्रकारकी है वा अन्यप्रकारकी है इस प्रकारके संशयकूं यह पुरुष जिस बुद्धिकरिकै प्राप्त होवैहै सा बुद्धि राजसी बुद्धि कही जावैहै ॥ ३१ ॥

अब तामसी बुद्धिका स्वरूप वर्णन करैं हैं—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ॥
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२ ॥

(पदच्छेदः) अधर्मम् । धर्मम् । इति । याँ । मन्यते । तमसा । आवृता । सर्वार्थान् । विपरीतान् । च । बुद्धिः । सा । पार्थ । तामसी ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! तमकरिकै आवृतहुई जा बुद्धि अधर्मकूं धर्म इसप्रकार मानैंहै तथा दूसरेभी सर्वअर्थोंकूं विपरीत ही मानैहै सा बुद्धि तामसी कही-जावैहै ॥ ३२ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! विशेषदर्शनका विरोधी जो तमरूप दोष है तिस तमरूप दोषकरिकै आवृत हुई जा बुद्धि अधर्मकूं धर्मरूपकरिकै मानैं है अर्थात् अदृष्ट अर्थकी प्राप्ति करणेहारे सर्व कर्मोंविषे जा बुद्धि विपर्ययकूं प्राप्त होवैहै । तथा दृष्ट है प्रयोजन जिनोंका ऐसे जे सर्व ज्ञेयपदार्थ हैं तिन सर्व ज्ञेयपदार्थोंकूंभी जा बुद्धि विपरीत ही मानैं है अर्थात् सुखादिकोंके हेतुभूत पदार्थोंकूंभी जा बुद्धि दुःखादिकोंका हेतुभूतही मानैं है, ऐसी विपर्ययवाली बुद्धि तामसी बुद्धि कहीजावै है ॥ ३२ ॥

तहां (प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च) इत्यादिक तीन श्लोकोंकारिकै बुद्धिका त्रिविध-पणा कथन कऱ्या । अब (धृत्या यया) इत्यादिक तीन श्लोकोंकारिकै धृतिके त्रिविधपणेकूं कथन करैं हैं । तहां प्रथम सात्त्विक धृतिका स्वरूप वर्णन करैं हैं—

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ॥
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी॥३३॥

(पदच्छेदः) धृत्या। यया। धारयते। मनःप्राणेंद्रियक्रियाः। योगेन। अव्यभिचारिण्या। धृतिः। सा। पार्थ। सात्त्विकी ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! योगकरिकै व्याप्त जिस धृतिकरिकै यह पुरुष मनप्राण-इंद्रियोंके क्रियावोंकूं निरुद्धकरै है सा धृति सात्त्विकी कहीजावैहै ॥ ३३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! समाधिरूप योग है तिस योगकरिकै व्याप्त जा धृति है ऐसी जिस धृतिकरिकै यह अधिकारी पुरुष मनकी चेष्टारूप क्रियावोंकूं तथा प्राणोंकी चेष्टारूप क्रियावोंकूं तथा इंद्रियोंकी चेष्टारूप क्रियावोंकूं धारण करैहै अर्थात् जिस धृतिकरिकै यह अधिकारी पुरुष तिन मन प्राण इंद्रियोंके चेष्टारूप क्रियावोंकूं शास्त्रनिषिद्धमार्गतैं निरुद्ध करै है। तथा जिस धृतिके विद्यमान हुए इस अधिकारी पुरुषकूं अवश्यकरिकै समाधि होवैहै। तथा जिस धृतिकरिकै धारण करी हुई मन प्राण इंद्रियादिकोंकी क्रिया शास्त्रविधिका उल्लंघनकरिकै शास्त्रप्रतिपादित अर्थतैं अन्य अर्थकूं विषय करती नहीं। इस प्रकारकी सा धृति सात्त्विकी धृति कही जावै है ॥ ३३ ॥

अब राजसी धृतिका स्वरूप वर्णन करैं हैं-

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ॥
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४ ॥

(पदच्छेदः) यया। तु। धर्मकामार्थान्। धृत्या। धारयते। अर्जुन। प्रसंगेन। फलाकांक्षी। धृतिः। सा। पार्थ। राजसी ॥ ३४ ॥

(पदार्थ) हे अर्जुन ! पुनः कर्तृत्वादिक अभिनिवेशकरिकै फलकी इच्छा-वान् हुआ यह पुरुष जिस धृतिकरिकै धर्म काम अर्थ इन तीनोंकूं ही धारणकरै हे पार्थ ! सा धृति राजसी कहीजावै है ॥ ३४ ॥

भा० टी०-इहां (यया तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वउक्त सात्त्विक धृतितैं इस राजसधृतिविषे भिन्नपणेकूं कथन करै है। हे अर्जुन ! कर्तृत्व आदिक अभिनिवेशकरिकै स्वर्गादिक फलकी इच्छा करता हुआ यह पुरुष जिस धृतिकरिकै धर्मकूं तथा कामकूं तथा अर्थकूं धारण करै है अर्थात् धर्म काम अर्थ यह तीनोंही हमारेकूं अवश्यकरिकै संपादन करणे योग्य हैं। इस प्रकारतैं तिस धर्म काम अर्थकूं ही नित्यकर्तव्यतारूप करिकै निश्चय

करै है। कदाचित्‌भी मोक्षके संपादन करणेका निश्चय करता नहीं। हे पार्थ! इस प्रकारकी सा धृति राजसी धृति कही जावै है। इहां यज्ञादिक कर्मोंजन्य पुण्यरूप अपूर्वका नाम धर्म है। और विषयजन्य सुखका नाम काम है। और धनादिक पदार्थोंका नाम अर्थ है ॥ ३४ ॥

अब तामसधृतिका स्वरूप वर्णन करैं हैं–

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ॥
न विमुंचति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) यया। स्वप्नम्। भयम्। शोकम्। विषादम्। मदम्। एवं। च। न। विमुञ्चति। दुर्मेधाः। धृतिः। सा। पार्थ। तामसी॥३५॥

(पदार्थः) हे पार्थ! दुर्बुद्धिपुरुष जिस धृतिकारिकै स्वप्नकूं तथा भयकूं तथा शोककूं तथा विषादकूं तथा मदकूं कदाचित्‌भी नहीं परित्याग करैहै सा धृति तामसी कहीजावैहै ॥ ३५ ॥

भा० टी०–इहां निद्राका नाम स्वप्न है। और प्रतिकूलवस्तुके दर्शनजन्यभासका नाम भय है। और इष्टवस्तुके वियोगजन्य जो संताप है ताका नाम शोक है। और इंद्रियोंकी जा व्याकुलता है ताका नाम विषाद है। और शास्त्रनिषिद्ध विषयोंके सेवन करणेकी जा अभिमुखता है ताका नाम मद है। ऐसे स्वप्नकूं तथा भयकूं तथा शोककूं तथा विषादकूं तथा मदकूं यह दुष्ट बुद्धिवाला अविवेकी पुरुष जिस धृतिकारिकै कदाचित्‌भी नहीं परित्याग करै है। किंतु जिस धृतिकारिकै यह दुर्बुद्धिपुरुष तिन स्वप्नभयादिकोंकूं ही कर्त्तव्यतारूप कारिकै निश्चय करै है। सा धृति शिष्टपुरुषोंनैं तामसी धृति कही है ॥ ३५ ॥

तहां पूर्व क्रियावोंका तथा कर्त्तादिक कारकोंका सत्त्वादिक तीन गुणोंके भेदकरिकै सात्त्विक, राजस, तामस यह त्रिविधपणा कथन कऱ्या। अब तिन क्रियावोंकरिकै जन्य सुखरूप फलके त्रिविधपणेकूं श्रीभगवान् च्यारि श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं। तहां प्रथम अर्द्धश्लोककरिकै तिस सुखरूप फलके त्रिविधपणेकी प्रतिज्ञाकरिकै सार्द्धश्लोककरिकै सात्त्विक सुखका स्वरूप वर्णन करैं हैं–

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ॥
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखांतं च निगच्छति ॥ ३६ ॥

(पदच्छेदः) सुखम् । तु । इदानीम् । त्रिविधम् । शृणु । मे । भरतर्षभ । अभ्यासात् । रमंते । यत्र । दुःखांतम् । च । निगच्छति ॥ ३६ ॥

(पदार्थः) हे भरतवंशविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! पुनः अबी हमारे वचनतैं त्रिविध सुखकूं तूं श्रवणकर हे अर्जुन ! जिस समाधिसुखविषे यह पुरुष अभ्यासतैं रमण करै है तथा दुःखके अंतकूं प्राप्त होवै है ॥ ३६ ॥

भा० टी०—हे भरतवंशविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! अबी तूं मैं परमेश्वरके वचनतैं सात्त्विक, राजस, तामस इस भेदकरिकै सुखके त्रिविधपणेकूं श्रवण कर अर्थात् यह सुख परित्याग करणेयोग्य है यह सुख ग्रहणकरणेयोग्य है इसप्रकारके विवेकवास्तै तूं अन्यसंकल्पोंका परित्यागकरिकै ताके श्रवणविषे आपणे मनकूं स्थित कर । इहां (हेभरतर्षभ) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं तिस अर्जुनविषे मनके स्थिरता करणेकी योग्यता सूचन करी इति । इस प्रकार अर्द्धश्लोककरिकै तिस सुखके त्रिविधपणेके कथनकी प्रतिज्ञा करी । अब (अभ्यासाद्रमते यत्र) इत्यादिक सार्द्धश्लोककरिकै श्रीभगवान् प्रथम सात्त्विकसुखका स्वरूप वर्णन करैंहैं । हे अर्जुन ! यह यमनियमादिक साधनसंपन्न अधिकारी पुरुष जिस समाधिसुखविषे अभ्यासतैं रमण करैहै अर्थात् अत्यंत परिचयतैं परितृप्त होवैहै जैसे विषयजन्य सुखविषे यह पुरुष शीघ्रही तृप्त होवैहै तैसे जिस समाधिसुखविषे यह अधिकारी पुरुष शीघ्रही परितृप्त होता नहीं किंतु निरंतर दीर्घकाल सत्कारपूर्वक सेवन करेहुए अत्यंत दृढपरिचयरूप अभ्यासतैं ही परितृप्त होवैहै । तथा जिस समाधिसुखविषे रमण करताहुआ यह अधिकारी पुरुष सर्व दुःखोंके अवसानरूप अंतकूं प्राप्त होवैहै । अर्थात् जैसे विषयजन्य सुखके अंतविषे यह पुरुष महान् दुःखकूं प्राप्त होवैहै तैसे जिस सुखके अंतविषे दुःखकी प्राप्ति होती नहीं किंतु सर्वदुःखोंका परिअवसानरूप अंत ही होवैहै ॥ ३६ ॥

अब (दुखांतं च निगच्छति) इस वचनके अर्थकूं स्पष्टकरिकै वर्णन करैंहैं—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ॥
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

(पदच्छेदः) यत् । तत् । अग्रे । विषम् । इव । परिणामे । अमृतो-

पमम् । तत् । सुखम् । सात्त्विकम् । प्रोक्तम् । आत्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

पदार्थः) हे अर्जुन ! जो सुख प्रथमप्रारंभविषे विषकी न्याईं होवैहै तथा परिणामविषे अमृतके तु[illegible] था आत्मविषयक बुद्धिके प्रसादतैं जन्य होवैहै सो सुख योगीपुरुषोंनैं सात्त्विक कह्याहै ॥ ३७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो समाधिसुख अग्रे विषकी न्याईं होवैहै अर्थात् ज्ञानवैराग्यकरिकै ध्यानसमाधिके आरंभकालविषे अत्यंत आयासकरिकै साध्यहोणेतैं प्रसिद्ध विषकी न्याईं जो सुख द्वेषविशेषकी प्राप्ति करणेहारा है। तथा जो सुख परिणामविषे अमृतके तुल्य है अर्थात् तिस ज्ञानवैराग्यके परिपाकविषे जो सुख अमृतकी न्याईं अत्यंत प्रीतिका विषय होवै है । तथा जो सुख आत्मबुद्धिप्रसादजन्य है । तहां आत्माकूं विषयकरणेहारी जा बुद्धि है ताका नाम आत्मबुद्धि है । ता आत्मबुद्धिका जो प्रसाद है अर्थात् निद्रा आलस्यादिक दोषोंतैं रहित होइकै जा स्वस्थतारूपकरिकै स्थिति है ताका नाम आत्मबुद्धिप्रसाद है । ऐसे आत्मविषयक बुद्धिके प्रसादतैं जो सुख उत्पन्न होवै है । राजससुखकी न्याईं जो सुख विषय इंद्रियके संयोगतैं जन्य है नहीं । तथा तामससुखकी न्याईं जो सुख निद्रा आलस्यादिकोंकरिकै भी जन्य है नहीं । इस प्रकारका अनात्मबुद्धिकी निवृत्तिकरिकै आत्मविषयक बुद्धिके प्रसादतैं जन्य जो समाधिका सुख है सो सुख योगीपुरुषोंनैं सात्त्विकसुख कह्याहै इति । इहां केईक विद्वान् पुरुष (सुखं त्विदानीम्) इस श्लोकका यह अर्थ करैंहैं । यह पुरुष पुनःपुनः सेवनरूप अभ्यासतैं जिस सात्त्विक सुखविषे वा राजससुखविषे वा तामससुखविषे रतिकूं प्राप्त होवैहै । तथा जिस रतिकरिकै यह पुरुष पुत्रशोकादिरूप दुःखकेभी अवसानरूप अंतकूं प्राप्त होवैहै ताका नाम सुख है । सो सुख सत्त्वादिकगुणोंके भेदकरिकै तीनप्रकारका होवै है । तिस त्रिविधसुखकूं तूं अबी श्रवण कर । इस प्रकार तत् इस पदका अध्याहारकरिकै संपूर्णश्लोकका अन्वय कऱ्याहै । तहां इस श्लोकके उत्तरार्द्धकरिकै तौ सामान्यतैं सुखमात्रका लक्षण कथन कऱ्याहै । और इस श्लोकके पूर्वार्द्धकरिकै तिस सुखके त्रिविधपणेके कथन करणेकी प्रतिज्ञा करीहै । और (यत्तदग्रे विषमिव) इस श्लोककरिकै सात्त्विकसुखका लक्षण कथन कऱ्या है । श्रीभाष्यकारोंकाभी इसी प्रकारका अभिप्राय है ॥ ३७ ॥

अब राजससुखका स्वरूप वर्णन करैहैं-

विषयेंद्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ॥
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥

(पदच्छेदः) विषयेंद्रियसंयोगात् । यत् । तत् । अग्रे । अमृतोपमम् । परिणामे । विषम् । इव । तत् । सुखम् । राजसम् । स्मृतम् ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो सुख विषयइंद्रियके संयोगतैं जन्य है तथा प्रथम-आरंभविषे अमृतके समान है तथा परिणामविषे विषके तुल्य है सो सुख राजस कह्योहै ॥ ३८ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो सुख शब्दादिकविषयोंके तथा श्रोत्रादिक इंद्रियों-के संबंधतैंही जन्य है । पूर्वउक्त आत्मविषयक बुद्धिके प्रसादतैं जो सुख जन्य है नहीं । तथा जो सुख प्रथम आरंभविषे मनइंद्रियोंके संयमादिरूप क्लेशके अभावतैं भोक्तापुरुषकूं अमृतके समान होवै है तथा जो सुख परिणामकालविषे तिस भोक्ता-पुरुषकूं इस लोकके दुःखोंका तथा परलोकके दुःखोंका प्रापक होणेतैं विषके समान है अर्थात् जैसे मरणका साधनरूप विष लोकोंकूं प्रतिकूल होवैहै तैसे जो विषयसुख परिणामकालविषे तिस भोक्तापुरुषकूं अत्यंत प्रतिकूल होवै है ऐसा अत्यंत प्रसिद्ध जो स्रक्चंदनवनितासंगादिजन्य विषयसुख है सो विषयजन्य सुख शिष्टपुरुषोंनैं राजस सुख कह्या है ॥ ३८ ॥

अब तामस सुखका स्वरूप वर्णन करैं हैं-

यदग्रे चानुबंधे च सुखं मोहनमात्मनः ॥
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

(पदच्छेदः) यत् । अग्रे । च । अनुबंधे । च । सुखम् । मोहनम् । आत्मनः । निद्रालस्यप्रमादोत्थम् । तत् । तामसम् । उदाहृतम् ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो सुख प्रथमआरंभविषे तथा परिणामविषे बुद्धिकूं मोह करणेहारा है तथा निद्राआलस्यप्रमादतैं उत्पन्नहुआहै सो सुख तामस कह्योहै ॥ ३९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो सुख प्रथम आरंभविषे तथा परिणामविषे बुद्धि-कूं मोहकी प्राप्ति करणेहारा है । तथा जो सुख निद्रा, आलस्य, प्रमाद नइ

तीनोंतैं ही उत्पन्नहुआ है। तहां निद्रा आलस्य यह दोनों तौ प्रसिद्ध ही हैं। और कर्तव्यअर्थके निश्चयतैं विना जो केवल मनोराज्यमात्र है ताका नाम प्रमाद । ऐसे निद्रा आलस्य प्रमादतैं जो सुख उत्पन्न हुआहै । जो सुख सात्त्विक सुखकी न्याईं आत्मविषयक बुद्धिके प्रसादतैंभी जन्य नहींहै । तथा राजस-सुखकी न्याईं जो सुख विषयइन्द्रियके संयोगतैं भी जन्य नहीं है । ऐसा निद्रा आलस्य प्रमादजन्य सुख शिष्टपुरुषोंनैं तामससुख कथन कऱ्या है ॥ ३९ ॥

अब पूर्व सात्त्विक, राजस, तामस इस त्रिविधपणेकारिकै नहीं कथन करे हुएभी पदार्थोंका संग्रह करावते हुए श्रीभगवान् इस पूर्वउक्तप्रकारके अर्थकूं उपसंहार करैं हैं–

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ॥
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) न । तत् । अस्ति । पृथिव्याम् । वा । दिवि । देवेषु । वा । पुनः । सत्त्वम् । प्रकृतिजैः । मुक्तम् । यत् । एभिः । स्यात् । त्रिभिः । गुणैः ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पदार्थ प्रकृतिजन्य इन पूर्वउक्त तीन गुणोंकारिकै रहित होवै सो पदार्थ इस पृथिवीविषे अथवा स्वर्गविषे वा देवतावोंविषे नहीं विद्यमान है ॥ ४० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सत्त्व, रज, तम इन तीनगुणोंकी साम्यअवस्था-रूप जा प्रकृति है तिस प्रकृतितैं जन्य जे सत्त्वादिक तीन गुण हैं अर्थात् तिस प्रकृतितैं वैषम्य अवस्थाकूं प्राप्तहुए जे सत्त्वादिक तीन गुण हैं । तहां सत्त्व, रज, तम यह तीनगुणरूप ही प्रकृति होवै है। यातैं तिन गुणोंविषे साक्षात् प्रकृतिजन्यत्व संभवता नहीं किंतु तिस गुणोंकी साम्यअवस्थारूप प्रकृतितैं जो तिन सत्त्वादिक गुणों-की वैषम्य अवस्था है सा वैषम्य अवस्था ही तिन गुणोंकी उत्पत्ति है। अथवा इहां प्रकृतिशब्दकारिकै अनिर्वचनीय मायाका ग्रहण करणा । तिस मायारूप प्रकृति कारिकै जन्य कहिये कल्पित जे सत्त्वादिक तीन गुण हैं । अथवा प्रकृतिशब्द-कारिकै जन्मांतरके धर्मअधर्मके संस्कारोंका ग्रहण करणा । तिस संस्काररूप प्रकृतितैं जन्य जे सत्त्वादिक तीन गुण हैं। ऐसे प्रकृतिजन्य तथा बंधके हेतुरूप

सत्त्वादिक तीन गुणोंकरिकै रहित जो प्राणीरूप वा अप्राणीरूप सत्त्व कहिये पदार्थ होवै सो प्राणीरूप वा अप्राणीरूप पदार्थ इस पृथिवीविषे स्थित मनुष्यादिकोंविषे तथा स्वर्गविषे स्थित देवतावोंविषे है नहीं अर्थात् किसीभी लोकविषे सत्त्वादिक तीनगुणोंतैं रहित कोईभी अनात्मवस्तु है नहीं। सर्वही अनात्मवस्तु तीन गुणोंकरिकै युक्त हैं ॥ ४० ॥

तहां सत्त्व, रज, तम यह तीन गुणात्मक क्रियाकारकफलस्वरूप सर्वही संसार मिथ्याज्ञानकरिकै कल्पित अनर्थरूप ही है। यह अर्थ पूर्व चतुर्दश अध्यायविषे कथन कऱ्या था सो पूर्वउक्त अर्थ इहां श्रीभगवान्नैं उपसंहार कऱ्या। और पूर्व पंचदश अध्यायविषे तौ वृक्षरूप कल्पनाकारिकै तिसी अनर्थरूप संसारकूं कथन करिकै (अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा । ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्त्तंति भूयः॥) इस श्लोककरिकै विषयोंविषे वैराग्यरूप असंगशस्त्रकरिकै तिस संसारवृक्षका छेदन करिकै इस अधिकारी पुरुषनैं परमात्मारूप पद अन्वेषण करणेयोग्य है, यह अर्थ कथन कऱ्या था। तहां सर्वसंसारकूं त्रिगुणात्मक होणेतैं तिस त्रिगुणात्मक संसारवृक्षका कैसे छेदन होवैगा। और जिस असंगशस्त्रकरिकै इस संसारवृक्षका छेदन होवै है, तिस असंगशस्त्रकी प्राप्ति ही महादुर्घट है। इस प्रकारकी शंकाके प्राप्तहुए आपणे आपणे अधिकारके अनुसार वेदभगवान्नैं विधानकरे जे वर्णआश्रमके धर्म हैं तिन धर्मोंकरिकै प्रसन्नहुए परमेश्वरतैं इस अधिकारी पुरुषकूं तिस असंगशस्त्रकी प्राप्ति होवैहै। इस अर्थके कहणेवासतै तथा इतनाही सर्ववेदोंका अर्थ है सो अर्थ परमपुरुषार्थकी इच्छावान् अधिकारी पुरुषनैं अवश्यकरिकै अनुष्ठान करणेयोग्य है इस प्रकारतैं इस गीताशास्त्रविषे सर्ववेदोंके अर्थका उपसंहार करणेयोग्य है। इस अर्थके कहणेवासतै इसतैं उत्तरप्रकरणका आरंभ करैहैं। तहां प्रथम सूत्ररूप श्लोक कथन करैहैं—

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ॥
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥ ४१ ॥

(पदच्छेदः) ब्राह्मणक्षत्रियविशाम् । शूद्राणाम् । च । परंतप । कर्माणि । प्रविभक्तानि । स्वभावप्रभवैः । गुणैः ॥ ४१ ॥

(पदार्थः) हे परंतप ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनवर्णोंके तथा शूद्रोंके कर्म स्वभावजन्य गुणोंकरिकै पृथक् पृथक् व्यवस्थित हैं तिनोंकूं तूं श्रवण कर ॥ ४१ ॥

भा० टी०—हे परंतप ! अर्थात् हे अंतर्बाह्यशत्रुवोंकूं संतापकी प्राप्ति करणे-
हारे अर्जुन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनोंके तथा शूद्रोंके कर्म परस्पर भिन्न
भिन्न हुए स्थित हैं । इहां (ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्) इन तीनों पदोंका जो
समास कऱ्या है सो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंविषे द्विजपणेकरिकै
वेदका अध्ययन अग्निहोत्र इत्यादिक तुल्य धर्मोंके कथन करणेवासतै और
(शूद्राणाम्) इस वचनकरिकै ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंतैं शूद्रोंका जो
पृथक् कथन कऱ्या है सो तिन शूद्रोंविषे एकजातिपणेकरिकै वेदके अनधिकारी-
पणेके जनावणेवासतै है इति । यह वार्त्ता वसिष्ठमुनिनैंभी कथन करीहै । तहां
वसिष्ठवचन—(चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रास्तेषां त्रयो वर्णा द्विजा-
तयो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यास्तेषां—मातुरग्रे हि जननं द्वितीयं मौंजिबंधने । अत्रास्य
माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते इति ॥) अर्थ यह—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,
शूद्र ये च्यारि वर्ण कहे जावैहैं । तिन च्यारि वर्णोंविषे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य
ये तीन वर्ण तौ द्विजाति कहेजावैं हैं । तहां दो मातापितातैं जिसका जन्म
होवै ताकूं द्विजाति कहैं हैं तथा द्विज कहैं हैं । तहां इन ब्राह्मणादिक तीनव-
र्णोंका प्रथम जन्म तौ लोकप्रसिद्ध पितामातातैं होवैहै । और दूसरा जन्म तौ
मौंजीबंधन कर्मविषे होवैहै । तहां तिस द्वितीयजन्मविषे इन ब्राह्मणादिक तीन
वर्णोंकी सावित्री माता होवैहै । और उपदेशकर्त्ता आचार्य पिता होवैहै इति । इस
उत्पत्तिके स्थानविशेषतैंभी तिन च्यारि वर्णोंका विभागही सिद्ध होवैहै ।
तहां श्रुति—(ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वै-
श्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत इति ॥) अर्थ यह—इस परमेश्वरके मुखस्थानतैं ब्राह्मण
उत्पन्न होतेभये हैं । और बाहुस्थान तैं क्षत्रिय उत्पन्न होतेभये हैं । और ऊरुस्थानतैं
वैश्य उत्पन्न होतेभयेहैं । और दोनों पादोंतैं शूद्र उत्पन्न होतेभयेहैं । इसप्रकारका वर्णोंका
विभाग अन्य श्रुतिविषेभी कथन कऱ्याहै । तहां श्रुति—(गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत ।
त्रिष्टुभा राजन्यम् । जगत्या वैश्यं, न केनचिच्छंदसा शूद्रमिति ॥) अर्थ यह—परमेश्वर
गायत्रीनामाछंदकरिकै ब्राह्मणकूं उत्पन्न करताभया और त्रिष्टुभ्नामा छन्दकरिकै
क्षत्रियकूं उत्पन्न करताभया । और जगतीनामा छंदकरिकै वैश्यकूं उत्पन्न करता-
भया । और शूद्रकूं किसीभी छंदकरिकै नहीं उत्पन्न करताभया इति । और
(शूद्रो वर्ण एकजातिः ।) अर्थ यह—ब्राह्मणादिक तीन वर्णोंकी अपे-

क्षाकरिकै शूद्र चतुर्थवर्ण कह्याजावै है सो शूद्र एकही जन्मवाला होवैहै द्वितीय जन्मवाला होवै नहीं इति । इस प्रकारतैं गौतम ऋषिभी तिन च्यारि वर्णोंके विभागकूं कथन करताभया है इति । हे अर्जुन ! इस प्रकारके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन च्यारिवर्णोंके कर्म परस्पर भिन्न भिन्न हुए स्थित हैं । शंका—हे भगवन् ! तिन च्यारिवर्णोंके कर्म किनोंकारिकै भिन्नभिन्न हुए स्थित हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिन कर्मोंके भिन्नभिन्नपणेविषे निमित्तकूं कथन करैं हैं (स्वभावप्रभवैर्गुणैः इति ।) हे अर्जुन ! ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्वादिकरूप स्वभावोंका प्रभव कहिये हेतुभूत जे सत्त्वादिक गुण हैं तिन सत्त्वादिक गुणोंकारिकै ही ते च्यारिवर्णोंके कर्म भिन्नभिन्न हुए स्थित हैं । सो प्रकार दिखावैं हैं । तहां ब्राह्मणस्वभावका तौ प्रशांतरूप होणेतैं सत्त्वगुणही हेतुभूत है । और क्षत्रियस्वभावका तौ ईश्वरस्वभाववाला होणेतैं सत्त्वउपसर्जन रजोगुणही हेतुरूप है । और वैश्यस्वभावका तौ इच्छास्वभाववाला होणेतैं तमउपसर्जन रजोगुण ही हेतुरूप है । और शूद्रस्वभावका तौ मूढस्वभाववाला होणेतैं रजउपसर्जन तमोगुण ही हेतुरूप है । इहां उपसर्जन नाम गौणका है इति । अथवा मायानामा प्रकृतिका नाम स्वभाव है । तिस मायारूप उपादानकारणतैं प्रभव कहिये उत्पत्ति है जिन गुणोंकी तिन सत्त्वादिक गुणोंका नाम स्वभावप्रभवगुण है । ऐसे स्वभावप्रभव गुणोंकारिकै ते च्यारिवर्णोंके कर्म भिन्नभिन्न हुए स्थित हैं । अथवा जो पूर्वजन्मका संस्कार इस वर्त्तमान जन्मविषे आपणे फल देणेकी अभिमुखता कारिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्तहुआ है ता संस्कारका नाम स्वभाव है । सो संस्काररूप स्वभाव निमित्तरूपकारिकै है कारण जिन गुणोंका तिनोंका नाम स्वभावप्रभवगुण है । ऐसे स्वभावप्रभवगुणोंकरिकै ते च्यारिवर्णोंके कर्म भिन्नभिन्नहुए स्थित हैं । तहां धर्मोंका प्रतिपादक जो शास्त्र है सो शास्त्रभी इस पुरुषके स्वभावकी अपेक्षा अवश्य करैहै । यातैं ते च्यारिवर्णोंके कर्म शास्त्रकारिकै भिन्न भिन्न करेहुएभी तिन स्वभावप्रभावगुणोंकारिकै भिन्नभिन्न करेहुए हैं इस प्रकारतैं कहेजावैं हैं जिस कारणतैं शास्त्र पुरुषके संस्काररूप स्वभावकी अपेक्षा अवश्य करैहै । इस कारणतैं ही शास्त्रकारोंनैं यह न्याय कथन कऱ्याहै । यज्ञादिक कर्मोंके विधान करणेहारे जे विधिवचन हैं तिन वचनोंकी अधिकारी पुरुषकी शक्ती सहकारी होवैहै इति । इस प्रकार स्वभावप्रभवगुणोंकरिकै ब्राह्मणादिक च्यारिवर्णोंके कर्म भिन्नभिन्न हुए स्थित हैं । यह वार्त्ता

षिनैं भी कथन करीहै । तहां गौतमवचन–(द्विजातीनामध्ययनमिज्या-
। ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः पूर्वेषु नियमस्तु राज्ञोऽधिक
र्वभूतानां न्याय्यदंडत्वम् । वैश्यस्याधिकं कृषिवणिक्पशुपाल्यं कुसीदं च
र्थो वर्ण एकजातिस्तस्यापि सत्यमक्रोधः शौचमाचमनार्थे पाणिपादप्रक्षा-
कश्राद्धकर्म भृत्यभरणं स्वदारवृत्तिः परिचर्योत्तरेषामिति ॥) अर्थ यह–
क्षत्रिय, वैश्य इन तीनवर्णोंका नाम द्विजाति है तिन द्विजाति पुरुषोंका
ोंका अध्ययन, अग्निहोत्रादिक कर्म, दान यह तीनों साधारणधर्म हैं। और
अध्ययन करावणा तथा यज्ञ करावणा तथा प्रतिग्रह लेणा यह तीनों धर्म
के अधिक हैं। क्षत्रिय वैश्यके यह तीनों धर्म हैं नहीं । और पूर्व कथ-
जे अध्ययन, इज्या, दान यह तीन धर्म हैं तिन तीनों धर्मोंकी अवश्यक-
तथा सर्वभूतोंका रक्षण तथा दुष्टप्राणियोंकूं नीतिपूर्वक दंड करणा यह धर्म
के अधिक हैं। और कृषि, वाणिज्य, गौआदिक पशुवोंका पालन तथा
वासतै धनका प्रयोगरूप कुसीद यह धर्म वैश्यके अधिक हैं। और एकज-
ा जो शूद्र है तिस शूद्रके तौ सत्य, अक्रोध, शौच, आचमनके वासतै
ादोंका प्रक्षालन, एक श्राद्धकर्म, भृत्योंका भरण, स्वदारवृत्ति, तीनवर्णोंकी
त्यादिक धर्म हैं इति । इस गौतमऋषिके वचनविषे ब्राह्मणादिक वर्णोंके
ण धर्म तथा असाधारणधर्म कथन करे हैं । इसी प्रकारके च्यारिवर्णोंके
सिष्ठमुनिनैंभी कथन करेहैं । तहां वसिष्ठवचन–(षट्कर्माणि ब्राह्मणस्याध्यय-
पनं यज्ञो याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति। त्रीणि राजन्यस्याध्ययनं यज्ञो दानं
ण च प्रजापालनस्वधर्मस्तेन जीवेत्। एतान्येव त्रीणि वैश्यस्य कृषिवणिक्प-
ं कुसीदं च तेषां परिचर्या शूद्रस्य इति।) अर्थ यह–आप वेदोंका अध्ययन
१ तथा दूसरे पुत्रशिष्यादिकोंके प्रति वेदोंका अध्ययन करावणा २ तथा
यज्ञकरणा ३ तथा दूसरे यजमानके प्रति ऋत्विक् होइकै यज्ञ करावणा ४
आप दान देणा ५ दूसरेतैं दान लेणां ६ यह षट्कर्म ब्राह्मणकेही होवैं हैं ।
ेदोंका अध्ययन करणा तथा यज्ञ करणा दान देणा यह तीन कर्म क्षत्रियके
। यह तीनों कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनोंके साधारण हैं। और शस्त्रक-
जाका पालन करणा यह क्षत्रियका असाधारण स्वधर्म है । इस असाधा-
कारिकै सो क्षत्रिय आपणा जीवन करै । और वेदोंका अध्ययन करणा तथा

यज्ञ करणा तथा दान करणा यह पूर्वउक्त तीनों कर्म वैश्यकेभी हैं । परंतु यह तीनों धर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनोंके साधारण धर्म हैं । और कृषि, वाणिज्य, पशुवोंका पालन, तथा वृद्धिके वासतै धनका प्रयोगरूप कुसीद यह कर्म वैश्यके असाधारण हैं । और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंकी सेवा करणी ये शूद्रका कर्म है इति । इस प्रकारके च्यारि वर्णोंके भिन्न भिन्न धर्म आपस्तंब ऋषिनैंभी कथन करे हैं । तहां आपस्तंबवचन–(चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रास्तेषां पूर्वपूर्वो जन्मतः श्रेयान् स्वकर्म ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यज्ञो याजनं दानं प्रतिग्रहणम् । एतान्येव क्षत्रियस्याध्यापनयाजनप्रतिग्रहणानीति परिहार्ण्यं युद्धदंडाधिकानि । क्षत्रियवद्वैश्यस्य दंडयुद्धवर्जं कृषिगोरक्षवाणिज्याधिकम् । परिचर्या शूद्रस्येतरेषां वर्णानाम् । इति ।) अर्थ यह–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह च्यारिवर्ण कहे जावैं हैं । तिन च्यारिवर्णोंके मध्यविषे उत्तर उत्तरवर्णकी अपेक्षाकरिकै पूर्वपूर्व वर्ण जन्मतैं श्रेष्ठ होवैहै । जैसे क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन तीनोंकी अपेक्षाकरिकै ब्राह्मण श्रेष्ठ है । और वैश्य, शूद्र इन दोनोंको अपेक्षा करिकै क्षत्रिय श्रेष्ठ है । और शूद्रकी अपेक्षाकरिकै वैश्य श्रेष्ठ है । तहां अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ, याजन, दान, प्रतिग्रह यह षट्कर्म ब्राह्मणके होवैं हैं । और इन षट्कर्मोंविषे अध्यापन, याजन, प्रतिग्रह इन तीनोंकूं छोडिकै अध्ययन, यज्ञ, दान यह तीन कर्म क्षत्रियके होवैं हैं । और युद्ध तथा दुष्ट पुरुषोंकूं दंड यह दोनों कर्म क्षत्रियके ब्राह्मणतैं अधिक होवैं हैं । और क्षत्रियकी न्याईं वैश्यकेभी युद्धदंडकूं छोडिकै अध्ययन, यज्ञ, दान यह तीन कर्म साधारण होवैं हैं । और कृषि, गौ आदिक पशुवोंका पालन, वाणिज्य यह कर्म वैश्यके क्षत्रियतैं अधिक होवैंहैं । और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंकी सेवा करणी यह शूद्रका कर्म है इति । इसीप्रकारके च्यारि वर्णोंके भिन्नभिन्न धर्म मनु भगवान्नैंभी कथन करे हैं । तहां श्लोक–(अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ १ ॥ प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । विषयेष्वप्रसक्तिं च क्षत्रियस्य समादिशत् ॥ २ ॥ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ ३ ॥ एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् । एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ ४ ॥) अर्थ यह–सृष्टिके आदिकालविषे सर्वज्ञ परमेश्वर ब्राह्मणोंके अध्ययन, अध्यापन,

न, दान, प्रतिग्रह यह षट् कर्म कथन करताभया है। और प्रजाका
, यज्ञ, अध्ययन, विषयोंविषे नहीं आसक्ति इत्यादिक धर्म क्षत्रियके
है। और पशुवोंका रक्षण, दान, यज्ञ, वेदोंका अध्ययन, वाणिज्य
धनका प्रयोगरूप कुसीद, कृषि इत्यादिक धर्म वैश्यके कहताभया है।
तैं रहितहोइकै ब्राह्मणादिक तीनवर्णोंकी शुश्रूषा करणी यह एक कर्म
हताभया है इति। इस प्रकारतैं ब्राह्मणादिक च्यारिवर्णोंके कर्म सत्त्वादिक
करिकै भिन्न भिन्न हुए स्थित हैं ॥ ४१ ॥

म ब्राह्मणके स्वाभाविक गुणकृत कर्मोंकूं कथन करैं हैं–

मो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च ॥
नं विज्ञानमास्तिक्य ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥

छेदः) शमः । दमः । तपः । शौचम् । क्षांतिः । आर्जवम् ।
ज्ञानम् । विज्ञानम् । आस्तिक्यम् । ब्रह्मकर्म । स्वभाव-
॥

) हे अर्जुन ! शम दम तप शौच क्षांति आर्जव तथा ज्ञान विज्ञान
यह नव स्वभावजन्य ब्राह्मणके कर्म हैं ॥ ४२ ॥

०–तहां अंतःकरणका जो निग्रह है ताका नाम शम है। और श्रो-
करणोंका जो निग्रह है ताका नाम दम है। और पूर्व सप्तदश अध्या-
करया जो शारीर, वाचिक, मानस यह तीनप्रकारका तप है सो
पशब्दकरिकै ग्रहण करणा। और शौच बाह्यअंतरभेदकरिकै दोप्रका-
। तहां मृत्तिका जलकरिकै जो शरीरकी शुद्धि है ताकूं बाह्यशौच
र अंतःकरणके शुद्धिकूं अंतरशौच कहैं हैं। सो दोनों प्रकारकाही
चशब्दकरिकै ग्रहण करणा। और कठोरवचनों करिकै निरादरा करे-
दंडादिकोंकरिकै ताडन करे हुएभी इस पुरुषके मनविषे जो क्रोधा-
तैं रहितपणा है ताका नाम क्षमा है। ता क्षमाका ही इहां क्षांति-
हण करणा और कुटिलतातैं रहितपणेका नाम आर्जव है। और
वेदकूं तथा ता वेदके अर्थकूं विषय करणेहारी जो अंतःकरणकी
ताका नाम ज्ञान है। और कर्मकांडविषे यज्ञादिक कर्मोंका जो कौ-

शल है तथा ज्ञानकांडविषे ब्रह्मआत्माके एकताका जो अनुभव है ताका नाम विज्ञान है । और पूर्व कथन करी जा सात्त्विकी श्रद्धा है ताका नाम आस्तिक्य है। इस प्रकारके शम, दम, तप, शौच, क्षांति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य यह सत्त्वगुणके स्वभावकृत नव धर्म ब्रह्मकर्म कहेजावैं हैं अर्थात् ब्राह्मणजातिके कर्म कहे जावैं हैं । यद्यपि सात्त्विक अवस्थाविषे ब्राह्मणादिक च्यारोंही वर्णके यह शमदमादिक नवधर्म संभव होइसकैं हैं, तथापि यह शमदमादिक नवधर्म बाहुल्यताकरिकै ब्राह्मणविषेही होवैं हैं । जिस कारणतैं सो ब्राह्मण सत्त्वस्वभाववालाही है । और अन्य क्षत्रियादिकोंविषे तौ तिस सत्त्वगुणकी वृद्धिके वशतैं ते शमदमादिक धर्म कदाचित् ही उत्पन्न होवैं हैं । इसी कारणतैं ही अन्यशास्त्रविषे यह शमदमादिक धर्म ब्राह्मणादिक च्यारिवर्णोंके साधारणधर्मरूपकरिकै कथन करे हैं। तहां शमदमादिक धर्म च्यारिवर्णोंके साधारणधर्म हैं इस वार्त्ताकूं विष्णु भगवान् भी कहता भया है । तहां श्लोक-(क्षमा सत्यं दमः शौचं दानमिंद्रियसंयमः । अहिंसा गुरुशुश्रूषा तीर्थानुसरणं दया ॥ १॥ आर्जवं लोभशून्यत्वं देवब्राह्मणपूजनम् । अनभ्यसूया च तथा धर्मः सामान्य उच्यते ॥ २ ॥) अर्थ यह-क्षमा, सत्य, दम, शौच, दान, इंद्रियोंका संयम, अहिंसा, गुरुकी शुश्रूषा, तीर्थोंका सेवन, दया, आर्जव, लोभतैं रहितपणा, देवताब्राह्मणोंका पूजन, असूयादोषतैं रहितपणा यह सर्व धर्म समान्यधर्म कहेजावैं हैं। अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन च्यारि वर्णोंके तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास इन च्यारि आश्रमोंके साधारण धर्म कहेजावैं हैं इति । इसप्रकारके साधारणधर्मोंकूं बृहस्पतिभी कथन करता भया है । तहां श्लोक-(दया क्षमानसूया च शौचानायासमंगलम् ॥ अकार्पण्यमस्पृहत्वं सर्वसाधारणानि च ॥ १ ॥परे वा बंधुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा ॥ आपन्ने रक्षितव्यं तु दयैषा परिकीर्त्तिता ॥ २ ॥ बाह्ये वाध्यात्मिके चैव दुःखे चोत्पादिते क्वचित् ॥ न कुप्यति न वा हंति सा क्षमा परिकीर्तिता ॥ ३ ॥ न गुणान्गुणिनो हंति स्तौति मंदगुणानपि ॥ नान्यदोषेषु रमते सानसूया प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥ अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिर्गुणैः ॥ स्वधर्मे च व्यवस्थानं शौचमेतत्प्रकीर्तितम् ॥५॥ शरीरं पीड्यते येन सुशुभेनापि हि कर्मणा ॥ अत्यंतं तन्न कर्त्तव्यमनायासः स उच्यते ॥ ६ ॥ प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविसर्जनम् ॥ एतद्धि मंगलं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ७ ॥ स्तोकादपि प्रदातव्यमदीनेनांतरात्मना ॥ अहन्यहनि

यत्किंचिदकार्पण्यं हि तत्स्मृतम् ॥ ८ ॥ यथोत्पन्नेन संतोषः कर्तव्यो ह्यर्थवस्तुनः ॥ परस्याचिंतयित्वार्थं साऽस्पृहा परिकीर्तिता ॥ ९ ॥) अब यथाक्रमतैं इन नव श्लोकोंके अर्थकूं कथन करैं हैं । दया १, क्षमा २, अनसूया ३, शौच ४, अनायास ५, मंगल ६, अकार्पण्य ७, अस्पृहा ८, यह अष्ट धर्म च्यारि वर्णोंके तथा च्यारि आश्रमोंके साधारणधर्म हैं इति ॥ १ ॥ अब द्वितीयश्लोककरिकै दयाका स्वरूप कथन करैं हैं—आपत्तिकूं प्राप्त हुआ जो कोई अन्य प्राणी है अथवा आपणा बंधुवर्ग है अथवा आपणा मित्र है अथवा आपणा द्वेषकर्त्ता शत्रु है तिन सर्वोंका तिस आपत्तितैं जो रक्षण करणा है ताका नाम दया है ॥ २ ॥ अब तृतीयश्लोककरिकै क्षमाका स्वरूप कथन करैं हैं—आपणे प्रारब्धकर्मके वशतैं बाह्य आधिभौतिक दुःखके प्राप्त हुए तथा आध्यात्मिक दुःखके प्राप्त हुए तथा तिन दुःखोंके उत्पादक शत्रु आदिकोंके प्राप्त हुए यह पुरुष जिसकरिकै क्रोधकूं नहीं करै है तथा तिनोंकूं हनन नहीं करै है सा क्षमा कही जावै है ॥ ३ ॥ अब चतुर्थश्लोककरिकै अनसूयाका स्वरूप कथन करैं हैं—यह पुरुष जिसकरिकै गुणीपुरुषोंके गुणोंकूं नहीं हनन करै है तथा अन्यपुरुषके अल्पगुणोंकी भी स्तुति करै है तथा अन्यपुरुषोंके दोषोंके कथनविषे प्रीतिमान नहीं होवैहै सा अनसूया कहीजावै है ॥ ४ ॥ अब पंचमश्लोककरिकै शौचका स्वरूप कथन करैं हैं—मांस मदिरादिक अभक्ष्य वस्तुवोंका जो परित्याग है । तथा विद्यादिक गुणवाले पुरुषोंका जो समागम है । तथा आपणे धर्मविषे जो स्थित है इसकूं शौच कहैं हैं॥ ५॥ अब षष्ठश्लोककरिकै अनायासका स्वरूप कथन करैहैं—जिस शुभकर्मकरिकै भी शरीर अत्यंत पीडाकूं प्राप्त होवै ऐसा शुभकर्म भी इस पुरुषनैं करणा नहीं सो अनायास कह्या जावै है ॥ ६ ॥ अब सप्तमश्लोककरिकै मंगलका स्वरूप कथन करैं हैं—शास्त्रविहित श्रेष्ठ आचरणका जो सर्वदा करणा है तथा शास्त्रनिषिद्ध अश्रेष्ठ आचरणका जो सर्वदा परित्याग है इसीकूं ही तत्त्ववेत्ता मुनिजनोंनैं मंगल कह्या है ॥ ७ ॥ अब अष्टमश्लोककरिकै अकार्पण्यका स्वरूप कथन करैहैं—आपणे गृहविषे जे अन्नादिक पदार्थ अल्पभी हैं तिन अल्पपदार्थोंतैं भी दीनतातैं रहित मनकरिकै दिनदिनविषे अतिथि ब्राह्मणोंके ताईं यत्किंचित् अन्नादिक पदार्थ देणे इसकूं अकार्पण्य कहैंहैं ॥ ८ ॥ अब नवमश्लोककरिकै अस्पृहाका स्वरूप कथन करैं हैं—परके अर्थकूं न चिंतन करिकै इस पुरुषोंनैं प्रारब्धवशतैं प्राप्तहुए

धनादिक पदार्थोंकरिकै जो संतोष करीताहै सा अस्पृहा कहीजावैहै इति ॥ ९॥ यह दयातैं आदिलैके अस्पृहापर्यंत अष्टगुण ही गौतमऋषिनैं आत्माके गुणरूप करिकै कथन करे हैं। तहां गौतमवचन-(अथाष्टावात्मगुणाः दया सर्वभूतेषु क्षांतिरनसूया शौचमनायासोमंगलमकार्पण्यमस्पृहा इति ॥) अर्थ यह-सर्व भूतों- विषे दया, क्षांति, अनसूया, शौच, अनायास, मंगळ, अकार्पण्य, अस्पृहा यह अष्ट आत्माके गुण हैं इति । इसी प्रकारके साधारणधर्म महाभारतविषेभी कथन करे हैं । तहां श्लोक-(सत्यं दमस्तपः शौचं संतोषो ह्रीः क्षमार्जवम् । ज्ञानं शमो दया ध्यानमेष धर्मः सनातनः ॥ १ ॥ सत्यं भूतहितं प्रोक्तं मनसो दमनं दमः । तपः स्वधर्मवर्तित्वं शौचं संकरवर्जनम् ॥ २ ॥ संतोषो विषयत्यागो ह्रीरकार्यनिवर्त्तनम् । क्षमा द्वंद्वसहिष्णुत्वमार्जवं समचित्तता ॥ ३ ॥ ज्ञानं तत्त्वार्थसंबोधः शमश्चित्तप्रशांतता । दया भूतहितैषित्वं ध्यानं निर्विषयं मनः ॥ ४ ॥ इति) अर्थ यह- सत्य, दम, तप, शौच, संतोष, ह्री, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, शम, दया, ध्यान यह सर्व ब्राह्मणादिक च्यारि वर्णोंके साधारण सनातन धर्म हैं ॥ १ ॥ अब तीन श्लोकोंकरिकै यथाक्रमतैं तिन सत्यादिकोंका स्वरूप कथन करैं हैं-सर्वभूतोंका जो हित करणा है ताका नाम सत्य है । और मनका जो निग्रह है ताका नाम दम है । और आपणे धर्मविषे जो वर्त्तणा है ताका नाम तप है। और वर्णसंकरका जो परित्याग है ताका नाम शौच है ॥ २ ॥ और विषयोंका जो परित्याग है ताका नाम संतोष है। और शास्त्रनिषिद्धकर्मतैं जा निवृत्ति है ताका नाम ह्री है । और शीत- उष्णादिक द्वंद्वधर्मोंके सहनकरणेका जो स्वभाव है ताका नाम क्षमा है । और समचित्तपणेका नाम आर्जव है ॥ ३ ॥ और तत्त्व अर्थका जो सम्यक् बोध है ताका नाम ज्ञान है । और चित्तकी जा प्रशांतता है ताका नाम शम है । और सर्वभूतों- के हितकी जा इच्छा है ताका नाम दया है-और विषयोंकी वासनातैं रहित जो मन है ताका नाम ध्यान है इति ॥ ४ ॥ इसप्रकारके साधारण धर्म देवलऋषिनैं भी कथन करेहैं । तहां श्लोक-(शौचं दानं तपः श्रद्धा गुरुसेवा क्षमा दया । विज्ञानं विनयः सत्यमिति धर्मसमुच्चयः ॥ १ ॥ व्रतोपवासनियमैः शरीरोत्तापनं तपः । प्रत्ययो धर्मकार्येषु तथा श्रद्धेत्युदाहृता ॥ २ ॥ नास्ति ह्यश्रद्दधानस्य कर्म कृत्यं प्रयोजनम् । यत्पुनर्वैदिकीनां च लौकिकीनां च सर्वशः ॥ ३ ॥ धारणं सर्वविद्यानां विज्ञानमिति कीर्त्यते । विनयं द्विविधं प्राहुः शश्वद्दमशमा-

विति ॥ ४ ॥) अर्थ यह—शौच, दान, तप, श्रद्धा, गुरुसेवा, क्षमा, दया, विज्ञान विनय, सत्य यह साधारण धर्मोंका समुच्चय है इति । तहां व्रत उपवास नियमों-करिकै जो शरीरका शोषण है ताका नाम तप है । और धर्मकार्योंविषे जो चित्तकी सावधानता है ताका नाम श्रद्धा है । जिस कारणतैं श्रद्धातैं रहित पुरुषकूं किसीभी कर्मका फल प्राप्त होता नहीं, इसकारणतैं इस पुरुषनैं जो जो कार्य करणा सो श्रद्धापूर्वक ही करणा । और लौकिक सर्वविद्यावोंका तथा वैदिक सर्वविद्यावोंका जो धारण है ताका नाम विज्ञान है । और शम, दम, यह दो प्रकारका विनय कह्याहै इति । दूसरे सर्व धर्म पूर्व व्याख्यान करि आयेहैं । यातैं तिन धर्मोंके प्रतिपादक वचन यहां लिखे नहीं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—यह शम दमादिक धर्म जिस पुरुषविषे पायेजावैं हैं सो पुरुष जातिकरिकै शूद्र हुआभी इन शमदमादिक लक्षणोंकरिकै ब्राह्मणरूप ही जानणे योग्य है । और यह शमद-मादिक धर्म जिस पुरुषविषे नहीं पायेजावैंहैं सो पुरुष जातिकरिकै ब्राह्मण हुआभी इन शमदमादिक धर्मोंके अभावकरिकै शूद्ररूप ही जानणेयोग्य है । इसी कारणतैं ही महाभारतके आरण्यक पर्वविषे सर्पभावकूं प्राप्तहुए नहुषराजाके प्रति युधिष्ठिर राजानैं यह वचन कह्या है । तहां श्लोक—(सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ॥ दृश्यंते यत्र नागेंद्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ यत्रैत-त्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः॥यत्रैतन्न भवेत्सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥) अर्थ यह—हे नागेंद्र ! सत्य, दान, क्षमा, शील, क्रूरभावतैं रहितपणा,तप, दया यह सर्वधर्म जिस पुरुषविषे देखेजावैंहैं सो पुरुष ब्राह्मणही जानणा । हे सर्प ! यह सत्यादिक धर्म जिस पुरुषविषे नहीं विद्यमान हैं तिस पुरुषकूं शूद्रही जानणा इति । यातैं यह सिद्ध भया । इस श्लोकविषे जे शमदमादिक धर्म कथन करेहैं ते सर्व धर्म दैवीसंपत्‌रूप हैं सा दैवीसंपत् पूर्व षोडश अध्यायविषे विस्तारतैं वर्णन करिआयेहैं । सा शमदमादिरूप दैवीसंपत् ब्राह्मणकूं तौ स्वभावसिद्ध है । और क्षत्रियवैश्यादिकोंकूं नैमित्तिक है । यातैं इहां किंचित्‌मात्रभी विरोध होवै नहीं और ब्राह्मणके याजन, अध्यापन, प्रतिग्रह इत्यादिक असाधारण धर्म तौ स्मृति-योंविषे प्रसिद्ध ही हैं ॥ ४२ ॥

अब क्षत्रियके गुणस्वभावकृत कर्मोंकूं कथन करैंहैं—

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ॥
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

(पदच्छेदः) शौर्यम् । तेजः । धृतिः । दाक्ष्यम् । युद्धे । च । अपि । अपलायनम् । दानम् । ईश्वरभावः । च । क्षात्रम् । कर्म । स्वभावजम् । ॥ ४३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! शौर्य तेज धृति दाक्ष्य तथा युद्धविषे भी अपलायन दान तथा ईश्वरभाव यह सर्व स्वभावजन्य क्षत्रियजातिके विहित कर्म हैं ४३ ॥

भा०टी०-तहां अत्यंत बलवान् पुरुषोंकेभी प्रहार करणेविषे प्रवृत्तिरूप जो विक्रम है ताका नाम शौर्य है। और अन्यशत्रुवोंकरिकै नहीं पराभवतारूप जो प्रागल्भ्य ताका नाम तेज है। और महान् विपत्तिके प्राप्त हुएभी देहइन्द्रियरूप संघातका जो अव्याकुलीभाव है ताका नाम धृति है। और शीघ्र उत्पन्न हुए कार्योंविषे भी व्यामोहतैं रहित होइके प्रवृत्तिरूप जो दक्षभाव है ताका नाम दाक्ष्य है। और युद्धविषे महान् शस्त्रोंके प्रहार हुएभी तिस युद्धतैं जो पीछे नहीं हटणा है ताका नाम अपलायन है। और संकोचतैं रहित होइकै सुवर्ण, गौ, गृह, अन्न, भूमि इत्यादिक धनविषे आपणे ममत्वका परित्यागकरिकै जो ब्राह्मणादिकोंके ममत्वका आपादन है ताका नाम दान है। और प्रजाके पालन करणेवासतै आपणे भृत्यादिकोंके समीप आपणे प्रभुशक्तिका जो प्रगटकरणा है ताका नाम ईश्वरभाव है। अथवा शास्त्रनिषिद्धमार्गविषे प्रवृत्त होणेहारे दुष्टप्राणियोंके नियमन करणेकी जा शक्ति है ताका नाम ईश्वरभाव है। हे अर्जुन ! यह शौर्यतैं आदिलैके ईश्वरभावपर्यंत सर्व कर्म क्षत्रियजातिके शास्त्रविहित कर्म हैं। कैसे हैं ते कर्म--स्वभावज हैं अर्थात् सत्त्वगुण है गौण जिसविषे ऐसा जो प्रधानभूत रजोगुण है तिस रजोगुणके स्वभावजन्य हैं ॥ ४३ ॥

अब वैश्य शूद्र इन दोनोंके गुणस्वभावकृत कर्मोंकूं कथन करें हैं-

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ॥
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

(पदच्छेदः) कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम् । वैश्यकर्म । स्वभावजम् । परिचर्यात्मकम् । कर्म । शूद्रस्य । अपि । स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कृषिगौवोंका रक्षण वाणिज्य यह स्वभावजन्य वैश्यका कर्म है तथा शूद्रका द्विजातिपुरुषोंका शुश्रूषारूप स्वभावजन्य कर्म है ॥ ४४ ॥

भा० टी०–तहां व्रीहियवादिक अन्नोंकी उत्पत्तिवासतै जो भूमिका विलेखन है ताका नाम कृषि है। और गौआदिक पशुवोंका जो पालन है ताका नाम गोरक्ष्य है। और अन्नादिक पदार्थोंका क्रयविक्रयरूप जो व्यापार है ताका नाम वाणिज्य है। और वृद्धिवासतै धनका प्रयोगरूप जो कुसीद है ता कुसीदका भी इस वाणिज्यविषे ही अंतर्भाव जानणा। यह तीनों वैश्यजातिका कर्म है। कैसा है सो कर्म–स्वभावज है अर्थात् तमोगुण है गौण जिसविषे ऐसा जो प्रधानभूत रजोगुण है ता रजोगुणके स्वभावजन्य है इति। अब शूद्रके गुणस्वभावकृत कर्मकूं कथन करैहैं (परिचर्यात्मकमिति) तहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंका नाम द्विजाति है ऐसे द्विजातिपुरुषोंकी शुश्रूषारूप जो कर्म है सो कर्म शूद्रजातिका स्वभावजन्य कर्म है अर्थात् रजोगुण है गौण जिसविषे ऐसा जो प्रधानभूत तमोगुण है तिस तमोगुणके स्वभावजन्य है ॥ ४४ ॥

तहां पूर्व (शमो दमस्तपः शौचम्) इत्यादिक तीनश्लोकोंकरिकै ब्राह्मणादिक च्यारिवर्णोंके स्वभावजन्य गौणनामा धर्म कथन करे तिन गौणधर्मोंतैं भिन्न दूसरेभी धर्म शास्त्रोंविषे कथन करेहैं। ते धर्म भविष्यपुराणविषे यह कहेहैं। तहां श्लोक–(धर्मः श्रेयः समुद्दिष्टं श्रेयोऽभ्युदयलक्षणम् ॥ स तु पंचविधः प्रोक्तो वेदमूलः सनातनः ॥ १ ॥ वर्णधर्मः स्मृतस्त्वेक आश्रमाणामतः परम् ॥ वर्णाश्रमस्तृतीयस्तु गौणो नैमित्तिकस्तथा ॥२॥ वर्णत्वमेकमाश्रित्य यो धर्मः संप्रवर्त्तते ॥ वर्णधर्मः स उक्तस्तु यथोपनयनं नृप ॥ ३ ॥ यस्त्वाश्रमं समाश्रित्य अधिकारः प्रवर्त्तते ॥ स खल्वाश्रमधर्मः स्याद्भिक्षादंडादिको यथा ॥ ४ ॥ वर्णत्वमाश्रमत्वं च योऽधिकृत्य प्रवर्त्तते ॥ स वर्णाश्रमधर्मस्तु मौंजाद्या मेखला यथा ॥ ५ ॥ यो गुणेन प्रवर्त्तेत गुणधर्मः स उच्यते ॥ यथा मूर्द्धाभिषिक्तस्य प्रजानां परिपालनम् ॥ ॥ ६ ॥ निमित्तमेकमाश्रित्य यो धर्मः संप्रवर्त्तते ॥ नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा ॥ ७ ॥) अब यथाक्रमतैं इन सप्त श्लोकोंके अर्थ वर्णन करैं हैं–शास्त्रविहित धर्म ही इस पुरुषके श्रेयका साधन होणेतैं श्रेयरूप कथन कर्याहै। सो श्रेय

स्वर्गादिक अभ्युदयरूप है। इस प्रकारका श्रेयरूपधर्म शास्त्रवेत्ता पुरुषोंनैं पंचप्रकारका कथन कऱ्याहै। कैसा है सो धर्म—वेद है मूल जिसका या कारणतैं ही सो धर्म सनातन है ॥ १॥ तहां एक तौ वर्णधर्म होवै है। और दूसरा आश्रमधर्म होवै है। और तीसरा वर्णआश्रमधर्म होवै है। और चौथा गौणधर्म होवै है। और पांचवां नैमित्तिकधर्म होवै है ॥ २ ॥ तहां एक ब्राह्मणादिरूप वर्णमात्रकूं आश्रयकरिकै जो धर्म प्रवर्त्त होवै है सो वर्णधर्म कह्या जावै है। जैसे उपनयनरूप धर्म ब्राह्मणादिरूप वर्णमात्रकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है, यातैं सो उपनयनरूप धर्म वर्णधर्म कह्या जावै है॥ ३॥ और जो धर्म केवल आश्रममात्रकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है। सो धर्म आश्रमधर्म कह्याजावै है। जैसे भिक्षादंडादिरूप धर्म आश्रमकूं आश्रयकरिकै ही प्रवर्त्त होवैहै। यातैं सो भिक्षादंडादिरूप धर्म आश्रमधर्म कह्याजावै है ॥ ४॥ और जो धर्म वर्णकूं तथा आश्रमकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है सो धर्म वर्णाश्रमधर्म कह्याजावै है। जैसे मौंजादिक मेखलारूप धर्म वर्णकूं तथा आश्रमकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है। यातैं सो मौंजादिक मेखलारूप धर्म वर्णाश्रमधर्म कह्या जावै है ॥ ५ ॥ और जो धर्म किसी गुणकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है सो धर्म गौणधर्म कह्याजावै है। जैसे राज्याभिषेककूं प्राप्तहुए क्षत्रियका प्रजावोंका पालनरूप धर्म गुणकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है। यातैं सो प्रजाका पालनरूप धर्म गौणधर्म कह्याजावै है ॥ ६ ॥ और जो धर्म केवल निमित्तमात्रकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है सो धर्म नैमित्तिकधर्म कह्याजावै है। जैसे पापकी निवृत्तिवासतै कऱ्या जो प्रायश्चित्तरूपधर्म है सो धर्म पापरूपनिमित्तकूं आश्रय करिकै प्रवर्त्त होवै है। यातैं सो प्रायश्चित्तरूप धर्म नैमित्तिकधर्म कह्याजावै है इति ॥ ७ ॥ और हारीत ऋषि तौ च्यारिप्रकारका धर्म कथन करताभया है। तहां हारीतवचन—(अथाश्रमिणां पृथग्धर्मो विशेषधर्मः समानधर्मः कृत्स्नधर्मश्चेति ।) अर्थ यह—आश्रमी पुरुषोंका एक तौ पृथक्‌धर्म होवै है। और दूसरा विशेषधर्म होवै है। और तीसरा समानधर्म होवै है। और चौथा कृत्स्नधर्म होवै है। तहां जो धर्म एक ही आश्रमविषे पृथक् पृथक् अनुष्ठान कऱ्याजावैहै सो धर्म पृथक् धर्म कह्याजावैहै। जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन च्यारि वर्णोंका स्वस्वधर्म है और जो धर्म आपणे आपणे आश्रमविषे ही अनुष्ठान कऱ्याजावैहै सो धर्म विशेषधर्म कह्याजावैहै। जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी इन च्यारि

आश्रमियोंके आपणे धर्म हैं। और जो धर्म च्यारि वर्णोंका तथा च्यारि आश्रमोंका समानधर्म है सो धर्म समानधर्म कह्याजावै है। तहां च्यारिवर्णोंके समानधर्म तौ महाभारतविषे यह कहेहैं। तहां श्लोक–(आनृशंस्यमहिंसा चाप्रमादः संविभागिता ॥ श्राद्धकर्मातिथेयं च सत्यमक्रोध एव च ॥ १ ॥ स्वेषु दारेषु संतोषः शौचं नित्यानसूयता ॥ आत्मज्ञानं तितिक्षा च धर्मः साधारणो नृप ॥२॥) अर्थ यह–क्रूरभावतैं रहितपणा, अहिंसा, अप्रमाद, भूतोंके ताईं अन्नादिकोंका विभाग देणा, श्राद्धकर्म, गृहविषे प्राप्तहुए अतिथिका सन्मान, सत्य, अक्रोध, स्वस्त्रियोंविषे संतोष, शौच, असूयातैं रहितपणा, आत्मज्ञान, तितिक्षा यह च्यारिवर्णोंके साधारण धर्म हैं इति। और सर्वआश्रमोंके साधारणधर्म तौ पूर्व (शमो दमस्तपः शौचम्) इस श्लोकके व्याख्यानविषे कथन करिआये हैं। और मोक्षका हेतुभूत जो आत्मज्ञान है तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तिके प्रतिबंधक जे प्रत्यवाय हैं तिन प्रत्यवायोंकी निवृत्ति करणेवासतै जो निष्कामकर्मोंका अनुष्ठान है सो कृत्स्नधर्म कह्याजावै है। इसप्रकारतैं हारीतऋषिनैं च्यारि प्रकारका धर्म कथन कऱ्या है इति। और शास्त्रोंविषे जैसे च्यारिही वर्ण कथन करे हैं तैसे शास्त्रोंविषे च्यारिही आश्रम कथन करे हैं। तहां गौतमवचन–(तस्याश्रमविकल्पमेके ब्रुवते ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानस इति।) अर्थ यह–वेदवेत्ता पुरुष तिस अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, भिक्षु, वैखानस यह च्यारिप्रकारका आश्रमविकल्प कथन करै है। इहां भिक्षु इस शब्दकरिकै संन्यासीका ग्रहण करणा और वैखानस इस शब्दकरिकै वानप्रस्थका ग्रहण करणा इति। इस प्रकारके च्यारिआश्रमोंकूं आपस्तंब ऋषिभी कथन करताभया है। तहां आपस्तंबवचन–(चत्वार आश्रमा गार्हस्थ्यमाचार्यकुलं मौनं वानप्रस्थमिति तेषु सर्वेषु यथोपदेशमव्यग्रो वर्त्तमानः क्षेमं गच्छति इति।) अर्थ यह–गार्हस्थ्य, आचार्यकुल, मौन, वानप्रस्थ यह च्यारि ही आश्रम होवैं हैंइन च्यारोंतैं भिन्न पंचमा कोई आश्रम होवै नहीं। इहां गार्हस्थ्यम् इस शब्दकरिकै गृहस्थआश्रमका ग्रहण करणा। और आचार्यकुलम् इस शब्दकरिकै ब्रह्मचर्यआश्रमका ग्रहण करणा। और मौनम् इस शब्दकरिकै संन्यास आश्रमका ग्रहण करणा। तिन च्यारों आश्रमोंके मध्यविषे जिस जिस आश्रमके प्रति शास्त्रनै जे जे धर्म विधान करे हैं तिस तिस आश्रमविषे स्थित होइकै यह अधिकारी पुरुष तिन तिन धर्मोंकूं श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करताहुआ शुभगतिकूं प्राप्त

होवै है इति । इसी प्रकारके च्यारि आश्रमोंकूं वसिष्ठ मुनिभी कथन करताभया है। तहां वसिष्ठवचन-(चत्वार आश्रमा ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थपरिव्राजकाः इति ।) अर्थ यह-ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, परिव्राजक यह च्यार ही आश्रम होवैं हैं। इहां परिव्राजक इस शब्दकरिकै संन्यासीका ग्रहण करणा इति। इसप्रकार श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रोंविषे जैसे च्यारि वर्णआश्रम कथन करे हैं तैसे तिन च्यारि वर्णआश्रमोंके पृथक् पृथक् धर्मभी कथन करे हैं। तैसे अज्ञानी पुरुषोंके प्रति तिन वर्णआश्रमधर्मोंका यथायोग्यफलभी शास्त्रोंविषे कथन कऱ्या है, तहां मनु भगवान्नैंभी तिन वर्णआश्रमधर्मोंका फल कथन कऱ्या है। तहां श्लोक-(श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः । इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।) अर्थ यह-श्रुतिस्मृतिकरिकै विधान कऱ्या जो वर्णआश्रमका धर्म है। तिस धर्मकूं अनुष्ठान करताहुआ यह पुरुष इस लोकविषे तौ कीर्तिकूं प्राप्त होवै है और मरणतैं अनंतर स्वर्गादिक उत्तम सुखकूं प्राप्त होवै है इति । सो धर्मका फल आपस्तंब ऋषिनैंभी कथन कऱ्या है। तहां आपस्तंबवचन-(सर्ववर्णानां स्वधर्मानुष्ठानेन परमपरिमितं सुखं ततः परिवृत्तौ कर्मफलशेषेण जातिं रूपं वर्णं बलं वृत्तं मेधां प्रज्ञां द्रव्याणि धर्मानुष्ठानमिति प्रतिपद्यंते ।) अर्थ यह-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन च्यारों वर्णोंकूं आपणे आपणे धर्मके अनुष्ठानकरिकै उत्कृष्ट अपरिमित स्वर्गादिक सुख प्राप्त होवै है । तिस स्वर्गादिक सुखकूं भोगिकै जबी तिन कर्मीपुरुषोंकी पुनः इस भूमिलोकविषे आवृत्ति होवै है तबी बाकी रहेहुए कर्मशेषकरिकै ते कर्मीपुरुष इस लोकविषे जातिकूं तथा रूपकूं तथा वर्णकूं तथा बलकूं तथा वृत्तकूं तथा मेधाकूं तथा द्रव्योंकूं तथा धर्मानुष्ठानकूं प्राप्त होवैंहैं इति । इस प्रकारका धर्मका फल गौतमऋषिनैं भी कथन कऱ्या है । तहां गौतमवचन-(वर्णाश्रमाश्च धर्मनिष्ठाः प्रेत्य कर्मफलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुःश्रुतवृत्तवित्तसुखमेधसो जन्म प्रतिपद्यंते विष्वंचो विपरीता नश्यंति ॥) अर्थ यह-ब्राह्मणादिक च्यारि वर्ण तथा ब्रह्मचर्यादिक च्यारि आश्रम आपणे आपणे धर्मविषे निष्ठावाले हुए मरणतैं अनंतर स्वर्गादिक लोकोंविषे किंचित् कर्मोंके सुखरूप फलकूं अनुभव करिकै तिसतैं अनंतर परिशेषतैं रहेहुए कर्मकरिकै श्रेष्ठ देश, उत्तम जाति, उत्तम कुल, सुंदर रूप, आयुष्, वेदोंका अध्ययन, वृत्त, सुख, मेधा इत्यादिक गुणोंयुक्त जन्मकूं प्राप्त होवैंहैं । और शास्त्रनिषिद्ध मार्गविषे प्रवृत्त

होणेहारे पापिष्ठ पुरुष तौ नरकादिकोंविषे जन्मकूं प्राप्त होइकै विनाशकूं प्राप्त होवैंहैं अर्थात् ते पापीपुरुष कृमिकीटादिभाव करिकै सर्वपुरुषार्थोंतैं भ्रष्ट होवैं हैं इति। इसप्रकारका धर्मका फल हारीतऋषिनैं भी कथन कऱ्या है। तहां श्लोक–(काम्यैः केचिद्यज्ञदानैस्तपोभिर्लब्ध्वा लोकान्पुनरायांति जन्म। कामैर्मुक्ताः सत्ययज्ञाः सुदानास्तपोनिष्ठा अक्षयान्यांति लोकान् ॥ १ ॥) अर्थ यह–केईक सकाम पुरुष तौ काम्य यज्ञदानोंकरिकै तथा काम्यतपोंकरिकै स्वर्गादिक लोकोंकूं प्राप्त होइकै पुनः इस मनुष्यलोकविषे जन्मकूं प्राप्त होवैं हैं। और कामोंकरिकै मुक्तहुए तथा सत्यरूप यज्ञवाले तथा श्रेष्ठ दानवाले तथा तपविषे निष्ठावाले ऐसे केईक निष्काम पुरुष तौ अक्षयलोकोंकूं प्राप्त होवैं हैं। इहां कामनाके सद्भावतैं तथा कामनाके असद्भावतैं फलका भेद दिखायाहै इति। और भविष्य पुराणविषे तौ सो कर्मोंका फल इस प्रकारतैं कथन कऱ्या है। तहां श्लोक–(फलं विनाप्यनुष्ठानं नित्यानामिष्यते स्फुटम् ॥ काम्यानां स्वफलार्थं तु दोषघातार्थमेव तु ॥ १ ॥ नैमित्तिकानां करणे त्रिविधं कर्मणां फलम् ॥ क्षयं केचिदुपात्तस्य दुरितस्य प्रचक्षते ॥ २ ॥ अनुत्पत्तिं तथा चान्ये प्रत्यवायस्य मन्वते ॥ नित्यां क्रियां तथा चान्ये आनुषंगफलां विदुः ॥ ३ ॥) अर्थ यह–अग्निहोत्र संध्योपासनादिक नित्यकर्मोंका तौ फलतैं विनाभी अनुष्ठान कऱ्याजावै है। और ज्योतिष्टोमादिक काम्यकर्मोंका तौ तिस तिस स्वर्गादिक फलकी प्राप्तिवासतै ही अनुष्ठान कऱ्याजावै है ॥ १ ॥ और नैमित्तिक कर्मोंका तौ दोषकी निवृत्तिवासतै ही अनुष्ठान कऱ्याजावैहै। इस प्रकारतैं कर्मोंका तीनप्रकारका ही फल होवैहै। और केईक ऋषि तौ करेहुए पापकर्मका नाशही तिन नित्यकर्मोंका फल मानैं हैं ॥ २ ॥ और दूसरे केईक ऋषि तौ प्रत्यवायकी अनुत्पत्तिही तिन नित्यकर्मोंका फल मानैं हैं। और अन्य केईक आपस्तंबादिक ऋषि तौ तिन नित्यकर्मोंका स्वर्गादिरूप आनुषंगिकफल ही अंगीकार करैं हैं। सो आनुषंगिक फल–(तद्यथाम्रे फलार्थे निर्मिते।) इत्यादिक वचनकरिकै पूर्व कथनकरि आये हैं इति ॥ ३ ॥ और (त्रयो धर्मस्कंधा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचर्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यंतमात्मानमाचार्यकुले वसादयन्निति।) यह श्रुति तौ गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी इन तीन आश्रमोंकूं कथन करिकै पश्चात् (सर्व एते पुण्यलोका भवंति।) इस वचनकरिकै तिन तीनों आश्रमोंकूं अंतःकरणकी शुद्धिके अभाव

हुए मोक्षकी अप्राप्ति कथन करिकै पश्चात् शुद्ध अंतःकरणवाले इन तीनोंही आश्रमोंकूं परिव्राजकभावकरिकै ज्ञाननिष्ठाके प्राप्त हुए मोक्षकी प्राप्तिकूं (ब्रह्म-संस्थोऽमृतत्वमेति ।) इस वचनकरिकै कहतीभईहै । इस प्रकारकी व्यवस्थाके सिद्ध हुए जो मोक्षकी इच्छावान् ब्रह्मचारी वा गृहस्थ वा वानप्रस्थ फलकी इच्छा-का परित्यागकरिकै तथा भगवदर्पण बुद्धिकरिकै शास्त्रविहित आपणे वर्णाश्रमके कर्मोंकूं करैहै सो मुमुक्षु ब्रह्मचारी वा गृहस्थ वा वानप्रस्थ अवश्यकरिकै संसिद्धिकूं प्राप्त होवैहै । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ॥ ४५ ॥

(पदच्छेदः) स्वे । स्वे । कर्मणि । अभिरतः । संसिद्धिम् । लभते । नरः । स्वकर्मनिरतः । सिद्धिम् । यथा । विन्दति । तत् । शृणु ॥ ४५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह मनुष्य आपणे आपणे कर्मविषे निष्ठावान्हुआ संसिद्धिकूं प्राप्त होवैहै आपणेकर्मविषे निष्ठावान् पुरुष जिस प्रकारतैं सिद्धिकूं प्राप्त होवै है तिस प्रकारकूं तूं श्रवणकर ॥ ४५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रनैं तिस तिस वर्णआश्रमके प्रति जो जो कर्म विधान कऱ्या है तिस आपणे आपणे कर्मविषे अभिरतहुआ यह पुरुष अर्थात् तिस आपणे आपणे कर्मके सम्यक् अनुष्ठानपरायण हुआ यह वर्णा-श्रमका अभिमानी मनुष्य संसिद्धिकूं प्राप्त होवैहै । अर्थात् देहइंद्रियरूप संघातकी अशुद्धिके क्षयकरिकै सम्यक्ज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यताकूं प्राप्त होवैहै । तहां वेदों-विषे जितनाक कर्मकांड है तिस सर्वकर्मकांडका वर्णाश्रमका अभिमानी मनुष्य ही अधिकारी होवैहै । और देवादिकोंविषे सो वर्णआश्रमका अभिमान है नहीं । यातैं कर्मकांडकरिकै प्रतिपादित तिन वर्णाश्रमके धर्मोंविषे तिन देवादिकोंकूं अधि-कार है नहीं । इस अर्थके बोधनकरणेवासतै इहां श्रीभगवान्नैं मनुष्यका वाचक (नरः) यह शब्द कथन कऱ्याहै । और वर्णाश्रमके अभिमानकी अपेक्षातैं रहित सगुण ब्रह्मकी उपासनावोंविषे तथा निर्गुणब्रह्मविद्याविषे तौ तिन देवादिकोंका भी अधिकार है । यह वार्त्ता देवताधिकरणविषे श्रीभाष्यकारोंनैं विस्तारतैं वर्णन करीहै इति । शंका—हे भगवन् ! (कर्मणा बध्यते जंतुः) इत्यादिक शास्त्रके वचनोंतैं कर्मोंकूं बंधका हेतुपणा ही सिद्ध होवैहै यातैं बंधके हेतुरूप तिन कर्मों-

विषे मोक्षका हेतुपणा कैसे संभवैगा ? किंतु नहीं संभवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए यद्यपि कर्म बंधके हेतु हैं तथापि उपायविषे तौ ते कर्म मोक्षके हेतु होवैहैं । इस प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं (स्वकर्मनिरतः इति) हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष शास्त्रविहित आपणे वर्णआश्रमकर्मविषे निष्ठावाला हुआ जिस प्रकारतैं तिस संसिद्धिकूं प्राप्त होवैहै तिस प्रकारकूं तूं अबी श्रवणकर अर्थात श्रवणकरिकै तिस प्रकारकूं तूं निश्चय कर ॥ ४५ ॥

अब श्रीभगवान् तिस प्रकारकूं कथन करैंहैं—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ॥
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥ ४६ ॥

(पदच्छेदः) यतः । प्रवृत्तिः । भूतानाम् । येन । सर्वम् । इदम् । ततम् । स्वकर्मणा । तम् । अभ्यर्च्य । सिद्धिम् । विंदति । मानवः ॥ ४६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस ईश्वरतैं आकाशादिक भूतोंकी उत्पत्ति होवै है तथा जिस ईश्वरनैं यह सर्वविश्व व्याप्त कऱ्याहै तिस ईश्वरकूं स्वकर्मकरिकै संतुष्ट करिकै यह मनुष्य अंतःकरणकी शुद्धिकूं प्राप्त होवै है ॥ ४६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! माया उपाधिक चैतन्य आनंदघनरूप तथा सर्वज्ञरूप तथा सर्वशक्तिसंपन्न तथा सर्व जगत्का अभिन्ननिमित्त उपादानकरणरूप ऐसे जिस अंतर्यामी ईश्वरतैं आकाशादिक सर्व भूतोंकी उत्पत्ति होवै है । अर्थात जैसे स्वप्नविषे रथादिक पदार्थोंकी मायामयी उत्पत्ति होवै है तैसे जिस अंतर्यामी ईश्वरतैं इन आकाशादिक सर्वभूतोंकी मायामयी उत्पत्ति होवै है । तथा जिस एक अंतर्यामी ईश्वरनैं आपणे सत्रूपकरिकै तथा स्फुरणरूपकरिकै यह सर्व दृश्यप्रपंच तीनोंकालविषे व्याप्त कऱ्या है अर्थात् जिस अंतर्यामी चैतन्यनैं यह सर्व कल्पितप्रपंच आपणे अधिष्ठानस्वरूपविषे अंतर्भाव कऱ्या है । जिस कारणतैं कल्पित वस्तु अधिष्ठानतैं अतिरिक्त होवै नहीं । जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्प रज्जुरूप अधिष्ठानतैं अतिरिक्त होवै नहीं । तैसे अधिष्ठानचैतन्यविषे कल्पित यह सर्व प्रपंच तिस अधिष्ठानचैतन्यतैं अतिरिक्त है नहीं । तहां अंतर्यामी ईश्वरतैं ही सर्व जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, लय होवै है, यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति—(यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्र-

यंत्यभिसंविशंति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति ॥) अर्थ यह—हे भृगु ! जिस कारणरूप वस्तुतैं यह आकाशादिक सर्व भूत उत्पन्न होवैं हैं तथा उत्पन्न हुए ते सर्व भूत जिस कारणरूप वस्तुकरिकै जीवतेहैं तथा विनाशकूं प्राप्त हुए ते सर्व भूत जिस कारणरूप वस्तुविषे लयकूं प्राप्त होवैं हैं सो सर्वजगत्का अभिन्ननिमित्त उपादान कारणरूप वस्तुकूं ही तूं ब्रह्मरूप जान । ऐसे कारणरूप ब्रह्मका तूं विचार कर इति । इस श्रुतिनैं तिस अंतर्यामी ईश्वरतैं ही सर्वजगत्की उत्पत्ति, स्थिति, लय प्रतीत होवै है । और (मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।) इत्यादिक श्रुतितैं तिस अंतर्यामी ईश्वरविषे मायारूप उपाधिकी प्रतीति होवै है और (यः सर्वज्ञः सर्ववित्) इस श्रुतितैं तिस अंतर्यामी ईश्वरविषे सर्वज्ञपणा प्रतीत होवैहै । यातैं (यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं श्रुतिप्रतिपादित अर्थही कथन कऱ्या है इति । ऐसे सर्वजगत्के उपादानकारण-रूप तथा निमित्तकारणरूप अंतर्यामी ईश्वरकूं यह अधिकारी पुरुष शास्त्रविहित आपणे वर्ण आश्रमके कर्मकरिकै संतुष्ट करिकै तिस अंतर्यामी ईश्वरके प्रसादतैं सिद्धिकूं प्राप्त होवै है अर्थात् ब्रह्मात्मैक्यज्ञाननिष्ठाकी योग्यतारूप अंतःकरणकी शुद्धिकूं प्राप्त होवैहै । और वर्णाश्रमकर्मोंके अनधिकारी जे देवादिक हैं ते देवा-दिक तौ केवल उपासनामात्रकरिकै ही तिस सिद्धिकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ ४६ ॥

जिस कारणतैं आपणे आपणे वर्ण आश्रमका धर्म ही इन मनुष्योंकूं परमेश्व-रके प्रसादका हेतु है इस कारणतैं इन अधिकारी मनुष्योंनैं तिस स्वधर्मकाही अनुष्ठान करणा । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ ४७ ॥

(पदच्छेदः) श्रेयान् । स्वधर्मः । विगुणः । परधर्मात् । स्वनुष्ठितात् । स्वभावनियतम् । कर्म । कुर्वन् । न । आप्नोति । किल्बिषम् ॥ ४७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सम्यक्अनुष्ठान करेहुए परधर्मतैं असम्यक् अनुष्ठान कऱ्याहुआ स्वधर्म अतिश्रेष्ठ होवैहै स्वभावजन्य कर्मकूं करताहुआ यह पुरुष पापकूं नहीं प्राप्त होता ॥ ४७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मंत्र, द्रव्य, देवता आदिक सर्व अंगोंकी संपूर्णतापूर्वक सम्यक् अनुष्ठान कऱ्याहुआ जो परधर्म है तिस परधर्मतैं किंचित् मंत्रादिक

अंगोंतैं रहित असम्यक् अनुष्ठान कन्याहुआभी स्वधर्म अत्यंत श्रेष्ठ होवैहै। यातै यह युद्धादिरूपधर्म यद्यपि हिंसाकरिकै युक्त है और भिक्षाअटनादिरूप धर्म ता हिंसा-दोषतैं रहित है तथापि तैं क्षत्रियराजानैं सो युद्धादिरूप स्वधर्मही अनुष्ठान करणे योग्य है सो भिक्षाअटनादिरूप परधर्म तुम्हारेकूं अनुष्ठान करणेयोग्य नहींहै। यह वार्त्ता (स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।) इत्यादिक वचनकरिकै पूर्वभी हम तुम्हारे प्रति कथन करिआयेहैं। शंका—हे भगवन्! यद्यपि युद्धादिक हमारा स्वधर्म है तथापि सो युद्धादि कर्म बांधवोंकी हिंसाजन्य प्रत्यवायका हेतु है, यातैं सो युद्धादिरूप कर्म हमारेकूं अनुष्ठान करणे योग्य नहीं है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस युद्धरूप कर्मविषे प्रत्यवायकी हेतुताकूं निषेध करैं हैं। (स्वभा-वनियतमिति) हे अर्जुन! पूर्व (शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यम्) इत्यादिक वचनकरिकै कथन कन्या जो क्षत्रियराजाका गुणकृत स्वभाव है तिस स्वभावकरिकै जन्य युद्धा-दिककर्मकूं करताहुआ यह क्षत्रियराजा बांधवोंकी हिंसानिमित्तक पापकूं नहीं प्राप्त होवैहै यह वार्त्ता (सुखदुःखे समे कृत्वा) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्वभी विस्तारतैं कथन करिआये हैं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—(अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) इस वेदवचननैं यज्ञका अंगरूपकरिकै विधान करी जा पशुकी हिंसा है सा हिंसा वेदविहित होणेतैं जैसे प्रत्यवायका हेतु नहीं है तैसे वेदभगवान्नैं युद्धका अंगरूपकरिकै वि-धान करी जा बांधवादिकोंकी हिंसा है सा हिंसाभी वेदविहित होणेतैं प्रत्यवायका हेतु नहीं है। यह वार्त्ता अनेकवार कथन करिआये हैं ॥ ४७ ॥

जिस कारणतैं शास्त्रविहित हिंसादिकोंकूं प्रत्यवायका हेतुपणा नहीं है। तथा परका धर्म भयकी प्राप्ति करणेहारा है तथा सामान्यदोषकरिकै सर्वकर्म दुष्टही हैं, तिस कारणतैं आत्मज्ञानतैं रहित वर्णआश्रमका अभिमानी पुरुष स्वभावजन्य विहित कर्मकूं कदाचित्भी नहीं परित्याग करै। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

सहजं कर्म कौंतेय सदोषमपि न त्यजेत् ॥
सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

(पदच्छेदः) सहजम्। कर्म। कौंतेय। सदोषम्। अपि। न। त्यजेत्। सर्वारंभाः। हि। दोषेण। धूमेन। अग्निः। इव। आवृताः ॥ ४८ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! स्वभावजन्य सदोष भी कर्मकूं यह पुरुष नहीं परित्याग करै जिस कारणतैं सर्वही धर्म धूमकरिकै अग्निकी न्याँई सामान्यदोषकरिकै आवृत हैं ॥ ४८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्वउक्त स्वभावकरिकै जन्य जो स्ववर्णआश्रमका कर्म है सो कर्म सदोषभी होवै अर्थात् शास्त्रविहित हिंसारूप दोषकरिकै युक्तभी होवै । ऐसे सदोषभी ज्योतिष्टोम युद्धादिक स्वकर्मकूं अंतःकरणकी शुद्धितैं पूर्व तूं अर्जुन वा अन्य कोई पुरुष नहीं परित्याग करै । जिस कारणतैं आत्मज्ञानतैं रहित कोईभी अज्ञानी पुरुष एकक्षणमात्रभी कर्मोंकूं नहीं करिकै स्थितहोणेकूं समर्थ होता नहीं किंतु सो अज्ञानी पुरुष यत्किंचित्कर्मकूं करताहुआही स्थित होवै है । हे अर्जुन ! यह पुरुष स्वधर्मका परित्यागकरिकै परके धर्मकूं अनुष्ठान करताहुआ भी दोषतैं मुक्त होता नहीं । काहेतैं जैसे यह लोकप्रसिद्ध अग्नि धूमकरिकै आवृत होवै है तैसे जितनेक स्वधर्म हैं तथा जितनेक परधर्म हैं ते सर्वही धर्म सत्त्वादिक तीनगुणरूप सामान्यदोषकरिकै व्याप्त हैं । यातैं ते सर्वही धर्म दोषयुक्तही हैं । यह वार्त्ता पूर्व (परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ।) इस योगसूत्रकरिकै कथन करिआये हैं । यातैं जैसे विषतैं उत्पन्नहुआ कृमि विषकूं नहीं परित्याग करै है तैसे यह अनात्मज्ञ पुरुष अगतितैं कर्मोंकूं करता हुआ त्रिगुणात्मक सामान्यदोषकरिकै तथा बंधुवधादिनिमित्तक विशेषदोषकरिकै युक्तभी स्वभावजन्य युद्धादिकर्मकूं कदाचित्भी नहीं परित्याग करै । जिसकारणतैं यह अज्ञानी पुरुष सर्वकर्मोंके त्यागकरणेविषे समर्थ है नहीं । और सर्वकर्मोंके त्यागकरणेविषे समर्थ जो शुद्ध अंतःकरणवाला पुरुष है सो तौ तिन सर्व कर्मोंका परित्यागही करै ॥ ४८ ॥

तहां अशुद्ध अंतःकरणवाला अनात्मज्ञपुरुष जो सर्वकर्मोंके त्याग करणेविषे समर्थ नहीं है तौ तिन सर्वकर्मोंके त्याग करणेविषे कौन पुरुष समर्थ है ? ऐसी जिज्ञासाके प्राप्तहुए कहैं हैं। जो अधिकारी पुरुष नित्य अनित्यवस्तुके विवेकवाला है अर्थात् एक आत्माही नित्य है आत्मातैं भिन्न देहादिक सर्व अनात्मपदार्थ अनित्य हैं इसप्रकारके नित्यअनित्यवस्तुके विवेकवाला है । और विवेकवाला होणेतैंही जो पुरुष वैराग्यवाला है अर्थात् इस लोकके जितनेक विषयभोग हैं तथा स्वर्गादिलोकोंके जितनेक विषयभोग हैं तिन सर्वविषयभोगोंविषे जो पुरुष रागतैं

रहित है और वैराग्यवाला होणेतैंही जो पुरुष शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान इन षट्संपत्तिरूप साधनकरिकै संपन्न है। तहां विषयोंतैं मनकूं रोकणा याकूं शम कहैं हैं। और श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं शब्दादिकविषयोंतैं रोकणा याकूं दम कहैं हैं। और स्त्रीपुत्रधनादिक साधनों सहित सर्व कर्मोंका जो परित्याग है ताकूं उपरति कहैं हैं। और शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा इत्यादिक द्वंद्वधर्मोंका जो सहन है ताका नाम तितिक्षा है। और वेदगुरुवोंके वचनोंविषे जो विश्वास है ताका नाम श्रद्धा है। और मनके विक्षेपकी जा निवृत्ति है ताकूं समाधान कहैंहैं। इसप्रकारके शमदमादिक षट्संपत्तिरूप साधनकरिकै जो पुरुष संपन्न है तथा जो पुरुष भगवदर्पित निष्काम कर्मोंकरिकै अशुद्धकी निवृत्तिद्वारा अंतःकरणके शुद्धिकूं प्राप्त हुआ है तथा जो पुरुष शुद्धब्रह्मात्मऐक्यकी जिज्ञासाकूं प्राप्त हुआ है ऐसा मुमुक्षुजन तौ, स्वइष्ट मोक्षका हेतुभूत ब्रह्मात्मऐक्यज्ञानके साधनरूप वेदांतवाक्योंके श्रवणादिकोंके करणेवास्तै सर्वविक्षेपोंकी निवृत्तिद्वारा तिन श्रवणादिकोंका अंगरूप तथा श्रुतिस्मृतिकरिकै विहित ऐसे सर्व कर्मोंके संन्यासकूं अवश्यकरिकै करै। यह वार्त्ता श्रुतिविषे तथा स्मृतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति–(तस्मादेवंविच्छातो दांत उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्येत्।) अर्थ यह–जिसकारणतैं शमदमादिक साधनोंतैं रहित पुरुषकूं आत्मज्ञानकी प्राप्ति होतीनहीं तिसकारणतैं यह अधिकारी पुरुष शमयुक्त होइकै तथा दमयुक्त होइकै तथा उपरतिवाला होइकै तथा तितिक्षावाला होइकै तथा समाधानवाला होइकै आपणे अंतःकरणविषे आत्माकूं साक्षात्कार करै। इहां उपरतः इस शब्दकरिकै सर्वकर्मोंका संन्यास कथन कऱ्या है अर्थात् शमदमादिक साधनपूर्वक सर्व कर्मोंके संन्यासवाला होइकै यह अधिकारी पुरुष आत्माके साक्षात्कारवास्तै वेदांतवाक्योंकूं विचार करै इति। यह वार्त्ता अन्य श्रुतिविषे भी कथन करीहै। तहां श्रुति–(संन्यस्य श्रवणं कुर्यात्।) अर्थ यह–यह अधिकारी पुरुष अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर विधिपूर्वक सर्वकर्मोंका संन्यास करिकैही वेदांतवाक्योंका श्रवण करै इति। तहां स्मृति–(सत्यानृते सुखदुःखे विद्वानिमं लोकममुं च परित्यज्यात्मानमन्विच्छेत्।) अर्थ यह–यह अधिकारी पुरुष सत्य अनृत, सुख दुःख, यहलोक परलोक इत्यादिक सर्वका परित्याग करिकै आत्मसाक्षात्कारवास्तै वेदांतशास्त्रका विचार करै इति। इसप्रकारका परमहंस परिव्राजकही (ब्रह्मसंस्थाऽमृतत्वमेति) इस श्रुतिनैं ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ इन तीन

आश्रमोंतैं विलक्षणरूपकारिकै प्रतिपादन कऱ्याहै । और इसप्रकारका परमहंस संन्यासीही परमहंस परिव्राजक कृतकृत्य गुरुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंके विचारकरणेविषे समर्थ होवैहै । तथा इसी मुमुक्षु परमहंस संन्यासीकूं उद्देशकरिकै श्रीव्यासभगवान्नैं (अथातो ब्रह्मजिज्ञासा) इत्यादिक च्यारि अध्यायरूप उत्तरमीमांसाशास्त्रप्रारंभ कऱ्याहै । इसप्रकारके शुद्धअंतःकरणवाले मुमुक्षुजनका अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ॥
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९ ॥

(पदच्छेदः) असक्तबुद्धिः । सर्वत्र । जितात्मा । विगतस्पृहः । नैष्कर्म्यसिद्धिम् । परमाम् । संन्यासेन । अधिगच्छति ॥ ४९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वत्र असक्तबुद्धि तथा जितात्मा तथा विगतस्पृह ऐसा अधिकारीपुरुष परम नैष्कर्म्यसिद्धिकूं संन्यासकरिकै प्राप्तहोवैहै ॥ ४९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! आसक्तिके निमित्तरूप जे धन, स्त्री, पुत्र, गृह इत्यादिक पदार्थ हैं तिन धनादिक पदार्थोंविषे भी जो पुरुष असक्तबुद्धि है अर्थात् मैं इन धनादिक पदार्थोंका हूं तथा यह धनादिक पदार्थ मेरे हैं इसप्रकारके अभिष्वंगतैं रहित है बुद्धि जिसकी ताका नाम असक्तबुद्धि है । अब तिस असक्तबुद्धिपणेविषे हेतु कहैं हैं (जितात्मा इति) इहां आत्माशब्दकारिकै अंतःकरणका ग्रहण करणा सो अंतःकरण सर्वविषयोंतैं निवृत्तकरिकै वश कऱ्याहै जिसनैं ताका नाम जितात्मा है । ऐसा जितात्मा होणेतैंही जो पुरुष सर्वत्र असक्तबुद्धि है। शंका-हे भगवन् ! विषयरागके विद्यमान हुए तिन विषयोंतैं अंतःकरणकी निवृत्ति कैसे संभवैगी ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (विगतस्पहः इति ।) हे अर्जुन ! जो पुरुष देहजीवनके हेतुभूत अन्नपानादिक भोगोंविषेभी इच्छातैं रहित है अर्थात् सर्व दृश्यपदार्थोंविषे दोषदर्शनकारिकै तथा नित्य बोध परमानंदरूप मोक्षगुणोंके दर्शनकारिकै जो पुरुष सर्व अनात्मपदार्थोंतैं विरक्तहुआ है । इसप्रकारका जो शुद्धअंतःकरणवाला पुरुष (स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ।) इस पूर्वउक्त वचनकारिकै प्रतिपादित कर्मजन्य अपरमसिद्धिकूं प्राप्त हुआहै अर्थात् आत्मज्ञानका साधनरूप जो वेदांतवाक्योंका विचार है ता विचारका अधिकाररूप तथा

निष्ठाकी योग्यतारूप ऐसी जा निष्कामकर्मजन्य अंतःकरणकी शुद्धिरूप अपरम-
है तिस अपरमसिद्धिकूं जो पुरुष प्राप्तहुआ है सो शुद्धअंतःकरणवाला अधिकारी
शिखायज्ञोपवीतादिक सहित सर्वकर्मोंके त्यागरूप संन्यासकरिकै परमनैष्क-
द्धिकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् सो अधिकारी पुरुष संन्यासपूर्वक वेदांतविचार-
परमनैष्कर्म्यसिद्धिकूं प्राप्त होवैहै। तहां (निष्कलं निष्क्रियं शांतम्) इस
ब्रह्मकूं क्रियारूप कर्मतैं रहित कथन कऱ्याहै यातैं ब्रह्मका नाम निष्कर्म है।
निष्कर्मकूं विषय करणेहारा जो वेदांतविचारतैं उत्पन्नहुआ आत्मज्ञान है
नका नाम नैष्कर्म्य है। अर्थात् अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके आत्मसाक्षात्कार-
म नैष्कर्म्य है। ऐसी नैष्कर्म्यरूप जा सिद्धि है कैसी है सा नैष्कर्म्यसिद्धि,
है अर्थात् पूर्वउक्त निष्कामकर्मजन्य अंतःकरणकी शुद्धिरूप अपरमसिद्धिका
होणेतैं अत्यंत श्रेष्ठ है। ऐसी आत्मसाक्षात्काररूप परमनैष्कर्म्यसिद्धिकूं यह
ारी पुरुष संन्यासपूर्वक श्रवणादिक साधनोंके परिपाककरिकै प्राप्त होवै है।
(संन्यासेन) इस वचनविषे स्थित तृतीयाविभक्ति इत्थंभूतलक्षणविषे है।
कै यह अर्थ सिद्ध होवै है। सर्वकर्मोंका संन्यासरूप ऐसी जा नैष्कर्म्यसिद्धि
ति ब्रह्मसाक्षात्कारकी योग्यतारूप जा नैर्गुण्यलक्षणसिद्धि है। कैसी है सा
-परम है अर्थात् पूर्वउक्त अंतःकरणकी शुद्धिरूप सात्त्विकसिद्धिका फलरूप
श्रेष्ठ है। ऐसी सर्वकर्मोंका संन्यासरूप परमनैष्कर्म्य सिद्धिकूं सो आसक्त-
जितात्मा पुरुष ही प्राप्त होवै है॥ ४९॥
ं पूर्व कथन करे जे साधन हैं तिन सर्वसाधनोंकरिकै संपन्न सर्वकर्मोंके सं-
कूं ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्तिविषे अब साधनोंके क्रमकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे॥
समासेनैव कौंतेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा॥ ५०॥

दच्छेदः) सिद्धिम्[2]। प्राप्तः[3]। यथा[4]। ब्रह्म[5]। तथा[4]। आप्नोति[6]।
। मे[8]। समासेन[9]। एव[10]। कौंतेय[1]। निष्ठा[12]। ज्ञानस्य[13]। या[12]।
५०॥

दार्थः) हे कौंतेय[1]! सिद्धिकूं[2] प्राप्त[3] हुआ यह पुरुष जिसप्रकारकरिकै[4]
ाक्षात्कार[5] करै है तिसप्रकारकूं तूं मेरे[8] वचनतैं संक्षेपकरिकै[9] ही[10] निश्चयकर[11]

तथा तिस सिद्धिकूं प्राप्तहुए पुरुषकी जो ज्ञानकी परा निष्ठा है तिसकूंभी तूं निश्चय कर ॥ ५० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! आपणे वर्णआश्रमके कर्मोंसें अंतर्यामी ईश्वरकूं आराधन करिकै तिस ईश्वरके प्रसादतैं उत्पन्न हुई जा सर्वकर्मोंके त्यागपर्यंत तथा ज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यतारूप अंतःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धि है ऐसी सिद्धिकूं प्राप्त हुआ यह अधिकारी पुरुष जैसे ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है अर्थात् जिस प्रकारकरिकै प्रत्यक् अभिन्न शुद्धब्रह्मकूं साक्षात्कार करै है तिस प्रकारकूं तूं अर्जुन अनुष्ठान करणेवासतै मेरे वचनतैं निश्चयकर। शंका—हे भगवन् ! बहुत विस्तारकरिकै कथन कऱ्याहुआ सो प्रकार हमारी बुद्धिविषे कैसे आरूढ होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (समासेनैव इति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके वचनतैं संक्षेपकरिकै ही तूं तिस प्रकारकूं निश्चय कर । न बहुत विस्तारकरिकै । शंका—हे भगवन् ! तिस प्रकारके निश्चय करणेकरिकै क्या सिद्ध होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (निष्ठा ज्ञानस्य या परा इति ।) हे अर्जुन ! श्रवणमननरूप विचार करिकै उत्पन्न भया जो आत्मज्ञान है तिस ज्ञानकी जा परिसमाप्तिरूप निष्ठा है अर्थात् तिस निष्ठातैं अनंतर दूसरा कोई साधन अनुष्ठान कऱ्या जावै नहीं । कैसी है सा निष्ठा—परा है अर्थात् अत्यंत श्रेष्ठ है। अथवा साक्षात मोक्षका हेतु होणेतैं जा निष्ठा सर्वके अंतविषे स्थित है । हे अर्जुन ! तिस पूर्वउक्त सिद्धिकूं प्राप्त हुए पुरुषकी इस प्रकारकी जा ब्रह्मकी प्राप्तिरूप परा ज्ञाननिष्ठा है तिस ज्ञाननिष्ठाकूंभी तूं मेरे वचनतैं संक्षेपकरिकै निश्चय कर इति। और किसी टीकाविषे तौ (निष्ठा ज्ञानस्य या परा) यह ब्रह्मकाही विशेषण कथन कऱ्या है। तहां या कहिये जो प्राप्य ब्रह्मज्ञानकी परा निष्ठा है अर्थात् जिस ब्रह्मकी अपेक्षा करिकै दूसरा कोई पदार्थ सर्वतैं अंतरज्ञेयरूप नहीं है ऐसे ज्ञानकी परानिष्ठारूप ब्रह्मकूं यह शुद्ध अंतःकरणवाला मुमुक्षु जिस प्रकारकरिकै साक्षात्कार करै है तिस प्रकारकूं तूं हमारे वचनतैं संक्षेप करिकै निश्चय कर ॥ ५० ॥

अब श्रीभगवान् तिस प्रकार सहित इस ज्ञाननिष्ठाका कथन करैहैं—

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ॥
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥

(पदच्छेदः) बुद्ध्या। विशुद्धया। युक्तः। धृत्या। आत्मानम्। नियम्य। च। शब्दादीन्। विषयान्। त्यक्त्वा। रागद्वेषौ। व्युदस्य। च ॥ ५१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! विशुद्ध बुद्धिकरिकै युक्तहुआ यह पुरुष धैर्यकरिकै इस संघातकूं नियमकरिकै तथा शब्दादिक विषयोंकूं परित्यागकरिकै तथा रागद्वेषकूं परित्यागकरिकै ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवैहै ॥ ५१ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! सर्व संशयविपर्ययोंतैं शून्य होणेतैं विशुद्ध ऐसी जा अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके वेदांतवाक्योंतैं जन्य ब्रह्मात्मक ऐक्यविषयक बुद्धिकी वृत्ति है ता बुद्धिवृत्तिकरिकै सर्वदा युक्त हुआ यह अधिकारी पुरुष धैर्यरूप धृतिकरिकै शरीरइंद्रियसंघातरूप आत्माकूं नियमनकरिकै अर्थात् तिस संघातकूं शास्त्रनिषिद्धमार्गकी प्रवृत्तितैं निवृत्तकरिकै अंतरआत्मापरायणकरिकै। इहां (आत्मानं नियम्य च) इस वचनविषे स्थित जो च यह शब्द है तिस च शब्दकरिकै योगशास्त्रविषे कथन करेहुए दूसरे साधनोंकाभी समुच्चय करणा। तथा शब्दादिक विषयोंकूं परित्यागकरिकै अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह जे पंच विषय हैं जे शब्दादिक विषय आपणे भोगकरिकै इस भोक्तापुरुषके बंधन करणेविषे समर्थ हैं। तथा जे शब्दादिकविषय ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवासतै शरीरकी स्थितिमात्ररूप प्रयोजनविषे उपयोगी नहीं हैं। तथा जे शब्दादिक विषय शास्त्रकरिकैभी निषिद्ध नहीं हैं। ऐसे शब्दादिकविषयोंकूं भी परित्यागकरिकै। और जे शब्दादिक विषय इस शरीरकी स्थितिमात्रविषे उपयोगी हैं तिन विषयोंविषे भी रागद्वेषकूं परित्यागकरिकै। इहां (रागद्वेषौ व्युदस्य च) इस वचनविषे स्थित जो च यह शब्द है तिस च शब्दतैं दूसरेभी जितनेक ज्ञानके विक्षेप करणेहारे हैं तिन सर्वोंके परित्यागका ग्रहण करणा। इसप्रकार विशुद्धबुद्धिकरिकै युक्तहुआ यह अधिकारी पुरुष धृतिसैं संघातकूं नियमनकरिकै तथा शब्दादिक विषयोंका परित्याग करिकै तथा रागद्वेषादिकोंका परित्याग करिकै विविक्तसेवी आदिक विशेषणोंकरिकै युक्त होवै सो अधिकारी पुरुष ब्रह्मसाक्षात्कारवासतै समर्थ होवैहै। इस रीतितैं इस श्लोकका तथा अगलेश्लोकका (ब्रह्मभूयाय कल्पते) इस तृतीयश्लोकके वचनसाथि अन्वय करणा ॥ ५१ ॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ॥
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥

(पदच्छेदः) विविक्तसेवी । लघ्वाशी । यतवाक्कायमानसः । ध्यानयोगपरः । नित्यम् । वैराग्यम् । समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष एकांतदेशका सेवन करणेहारा है तथा परिमित भोजन करणेहारा है तथा जीते हैं वाक् काय मन जिसनैं तथा नित्यही ध्यानयोगपरायण है तथा वैराग्यकूं प्राप्तहुआहै सो पुरुष ब्रह्मसाक्षात्कारवासतै समर्थ होवैहै ॥ ५२ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जनोंके संसर्गतैं रहित तथा पवित्र ऐसा जो कोई वन है अथवा पर्वतकी गुहादिक है ताका नाम विविक्तदेश है । ऐसे विविक्तदेशके सेवन करणेका है स्वभाव जिसका ताका नाम विविक्तसेवी है। अर्थात् चित्तकी एकाग्रताके सिद्धिवासतै जो पुरुष तिस चित्तके विक्षेपकरणेहारे पदार्थोंके संसर्गतैं रहित है तथा जो पुरुष लघ्वाशी है तहां परिमित हित पवित्र ऐसे अन्नके भोजन करणेका है स्वभाव जिसका ताका नाम लघ्वाशीहै। अर्थात् जो पुरुष निद्राआलस्यादिरूप चित्तके लय करणेहारे आहारके सेवनतैं रहित है। तथा जो पुरुष यतवाक्कायमानस है। तहां बहिर्मुखप्रवृत्तितैं निरुद्ध करे हैं वाक्, काय, मन यह तीनों जिसनैं ताका नाम यतवाक्कायमानस है अर्थात् जो पुरुष यम, नियम, आसन इत्यादिक साधनोंकरिकै संपन्न है तथा जो पुरुष नित्यही ध्यानयोगपरायण है । तहां चित्तविषे आत्माकारवृत्तियोंकी जा आवृत्ति है ताका नाम ध्यान है अर्थात् विजातीयवृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित आत्माकार सजातीय वृत्तियोंका जो प्रवाह है ताका नाम ध्यान है । और तिस ध्यानकरिकै चित्तका जो सर्ववृत्तियोंतैं रहितपणेका संपादन है ताका नाम योग है । इसीप्रकारका योगका स्वरूप (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) इस सूत्रकरिकै पतंजलि भगवान्नैं भी कथन कर्‍याहै । जो पुरुष इस प्रकारके ध्यानके तथा योगके नित्य अनुष्ठानपरायण होवैहै तिस ध्यानयोगकूं छोडिकै जो पुरुष कदाचित्भी मंत्र जप तीर्थयात्रादिकोंके अनुष्ठानपरायण होता नहीं । तथा जो पुरुष वैराग्यकूं प्राप्त हुआ है । तहां इस लोकके विषयोंविषे तथा परलोकके विषयोंविषे स्पृहाका विरोधी जो चित्तका परिणामविशेष है ताका

नाम वैराग्य है ऐसे वैराग्यकूं जो पुरुष विवेकपूर्वक प्राप्तहुआ है सो पुरुष ब्रह्मसाक्षात्कारवास्तै समर्थ होवै है ॥ ५२ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ॥
विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥

(पदच्छेदः) अहंकारम् । बलम् । दर्पम् । कामम् । क्रोधम् । परिग्रहम् । विमुंच्य । निर्ममः । शांतः । ब्रह्मभूयाय । कल्पते ॥ ५३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अहंकारकूं तथा बलकूं तथा दर्पकूं तथा कामकूं तथा क्रोधकूं तथा परिग्रहकूं परित्यांगकरिकै ममतातैं रहितहुआ तथा विक्षेपतैं रहित हुआ यह पुरुष ब्रह्मसाक्षात्कारवास्तै समर्थ होवै है ॥ ५३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तहां मैं महान् कुलविषे उत्पन्न हुआ हूं तथा महान पुरुषोंका मैं शिष्य हूं तथा मैं अतिविरक्त हूं दूसरा कोई हमारे समान है नहीं इस प्रकारका जो अभिमान है ताका नाम अहंकार है । और श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रतैं विरुद्ध जो असत् आग्रह है ताका नाम बल है । यद्यपि बहुतस्थलविषे शरीरके सामर्थ्यकूं बल कहा है तथापि इहां बलशब्दकरिकै सो शारीरबल ग्रहण करणा नहीं । जिस कारणतैं स्वाभाविक होणेतैं सो शारीरबल त्याग करणेकूं अशक्य है । तथा आत्मज्ञानके साधनोंके संपादन करणेविषे अनुकूल है । और हर्षकरिकै जन्य तथा धर्मके अतिक्रमणकरणेका कारणरूप ऐसा जो मद है ताका नाम दर्प है यह वार्ता स्मृतिविषे भी कथन करी है (हृष्टो दृप्यति दृप्तो धर्ममतिक्रामति ।) अर्थ यह—हर्षकूं प्राप्तहुआ यह पुरुष मदरूपदर्पकूं प्राप्त होवैहै । और मदरूप दर्पकूं प्राप्तहुआ यह पुरुष धर्मका अतिक्रमण करैहै इति । और इसलोकके अथवा परलोकके विषयोंकी जा अभिलाषा है ताका नाम काम है । और द्वेषका नाम क्रोध है । और स्पृहाके अभावहुएभी शरीरके रक्षणवासतै दूसरे लोकोंतैं प्राप्त करेहुए जे बाह्यभोगके साधन हैं तिन्होंका नाम परिग्रहहै । ऐसे अहंकारकूं तथा बलकूं तथा दर्पकूं तथा कामकूं तथा क्रोधकूं तथा परिग्रहकूं परित्याग करिकै तथा शास्त्रकी विधिपूर्वक शिखायज्ञोपवीतादिकोंकूं परित्याग करिकै तथा शरीरके निर्वाहवासतै शास्त्रविहित दंड, कमंडलु, कौपीन कंथा आदिकोंकूं ग्रहणकरिकै अर्थात् परमहंस परिव्राजक होइकै जो पुरुष निर्मम हुआ है अर्थात् देहके जीवनमात्रविषे भी जो पुरुष ममताअभि-

मानतैं रहित है इस कारणतैंही अहंकार ममकारके अभावकरिकै हर्षविषादतैं रहित होणेतैं जो पुरुष शांत है अर्थात् चित्तके सर्वविक्षेपोंतैं रहित है। इस प्रकारका परमहंस संन्यासी ही ज्ञानसाधनोंके परिपाकक्रमकरिकै ब्रह्मसाक्षात्कारवासतै समर्थ होवैहै अर्थात् अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारके ब्रह्मसाक्षात्कारकूं प्राप्त होवैहै । तहां पूर्व (वैराग्यं समुपाश्रितः) इस वचनकरिकै विषयोंकी अभिलाषारूप कामका परित्याग कथन करिकै पुनः (कामं परित्यज्य) इस वचनकरिकै जो तिस कामका परित्याग कथन कऱ्या है सो तिस कामके परित्याग करणेविषे प्रयत्नकी अधिकता बोधनकरणेवासतै कथन कऱ्या है ॥ ५३ ॥

हे भगवन् ! इस प्रकारका परमहंस संन्यासी किस साधनक्रमकरिकै ब्रह्मसाक्षात्कारकूं प्राप्त होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिस साधनक्रमकूं कथन करैंहैं—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ॥
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥

(पदच्छेदः) ब्रह्मभूतः । प्रसन्नात्मा । न । शोचति । न । कांक्षति । समः । सर्वेषु । भूतेषु । मद्भक्तिम् । लभते । पराम् ॥ ५४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष ब्रह्मभूत है तथा प्रसन्नात्मा है तथा नहीं शोककरै है तथा नहीं इच्छाकरैहै तथा सर्व भूतोंविषे सम है सो पुरुष परा मेरी भक्तिकूं प्राप्त होवैहै ॥ ५४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष ब्रह्मभूत है अर्थात् जो पुरुष वेदांतशास्त्रके श्रवणमननके अभ्यासतैं अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारके दृढनिश्चयवाला है। तथा जो पुरुष प्रसन्नात्मा है अर्थात् शमदमादिक साधनोंके अभ्यासतैं जो पुरुष शुद्धचित्तवाला है। इसी कारणतैं ही जो पुरुष नष्टहुए पदार्थका शोक नहीं करैहै । तथा अप्राप्तहुए पदार्थकी इच्छा नहीं करैहै। इसी कारणतैंही निग्रहअनुग्रहके अनारंभतैं जो पुरुष सर्वभूतोंविषे सम है अर्थात् जैसे आपणेकूं सुखप्रिय होवै तथा दुःख अप्रिय होवैहै तैसे जो पुरुष आपणे आत्माकी न्याईं सर्व प्राणीमात्रके सुखकूं तौ प्रिय देखैहै तथा दुःखकूं अप्रिय देखैहै। अथवा (समः सर्वेषु भूतेषु) इस वचनका यह अर्थ करणा। (ब्रह्मैवेदं सर्वम्) अर्थ यह—यह सर्व जगत् ब्रह्मरूप है इस

प्रकारकी बुद्धिकरिकै जो पुरुष जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज इन च्यारिप्रकारके भूतोंविषे विषमभावतैं रहित है इति । इसप्रकारका ज्ञाननिष्ठ संन्यासी मैं परमात्मादेवकी भक्तिकूं प्राप्त होवैहै अर्थात मैं निर्गुण शुद्धब्रह्मविषयक जो विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित सजातीय चित्तवृत्तियोंकी आवृत्तिरूप उपासना है जिस उपासनाकूं परिपक्वनिदिध्यासन कहैंहैं । तथा जा उपासना श्रवणमननके अभ्यासका फलरूप है ऐसी निदिध्यासनरूप मेरी भक्तिकूं सो अधिकारी पुरुष प्राप्त होवैहै । कैसीहै सा मेरी भक्ति–परा है अर्थात व्यवधानतैं रहित ब्रह्मसाक्षात्काररूप फलका जनक होणेतैं अत्यंत श्रेष्ठ है । अथवा परा कहिये (चतुर्विधा भजंते माम् ।) इस श्लोकविषे कथन करी जा च्यारिप्रकारकी भक्ति है तिस च्यारिप्रकारकी भक्तिविषे ज्ञानरूप अत्यंतभक्ति है । इस प्रकारकी पराभक्तिवाला पुरुष श्रीभागवतविषे भी कथन कऱ्याहै । तहां श्लोक–(सर्वभूतेषु येनैकं भगवद्भावमीक्षते ॥ भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥) अर्थ यह–जिसकरिकै यह पुरुष स्थावरजंगमरूप सर्वभूतोंविषे एक भगवद्भावकूं देखैहै अर्थात (ब्रह्मैवेदं सर्वम्) इस श्रुतिप्रमाणतैं सर्वभूतोंविषे अस्तिभातिप्रियरूप ब्रह्मकूं ही व्यापक देखैहै । तथा सर्वप्राणियोंका आत्मरूप जो भगवान् परब्रह्म है तिस परब्रह्मविषे तिन सर्वभूतोंकूं कल्पित देखैहै । इसप्रकारका तत्त्ववेत्ता पुरुष ही सर्व भगवद्भक्तोंविषे उत्तम भक्त है ॥५४॥

हे भगवन् ! तिस निदिध्यासनरूप भक्तिकरिकै इस अधिकारी पुरुषकूं किस फलकी प्राप्ति होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिस भक्तिके फलकूं कथन करैंहैं–

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ॥
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम् ॥ ५५ ॥

(पदच्छेदः) भक्त्या । माम् । अभिजानाति । यावान् । यः । च । अस्मि । तत्त्वतः । ततः । माम् । तत्त्वतः । ज्ञात्वा । विशते । तदनंतरम् ॥ ५५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमात्मा देव जिस परिमाणवाला हूं तथा जिसस्वरूपवाला हूं ऐसे मैं परमात्माकूं तिस भक्तिकरिकै सो पुरुष यथावत साक्षात्कार करैहै इसप्रकार तिस भक्तितैं मैं परमात्माकूं यथावत साक्षात्कारकरिकै देहपाततैं अनंतर सो तत्त्ववेत्तापुरुष मैं परब्रह्मविषे अभेदरूपतैं प्रवेश करैहै ॥ ५५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! तिस निदिध्यासनरूप ज्ञाननिष्ठानामा भक्तिकरिकै सो अधिकारी पुरुष मैं परमात्मा देवकूं यथावत् स्वरूपतैं साक्षात्कार करैहै। अब तिस यथार्थस्वरूपकूं वर्णन करैं हैं। (यावान्यश्चास्मि) तहां मैं अणुपरिमाणवाला हूं अथवा मैं देहके तुल्य मध्यमपरिमाणवाला हूं । अथवा नैयायिकोंनैं कल्पनाकऱ्या जो आकाशकी न्याई सर्वमूर्त्तद्रव्योंके साथि संयोगित्वरूप विभुत्व है तिस विभुत्वका मैं आश्रय हूं। अथवा सप्रपंच अद्वैतवादियोंकी न्याई मैं स्वगतभेदवाला हूं अथवा मैं अखंड एकरस सर्वत्रव्यापक हूं इस प्रकारका विचारकरिकै श्रुतिविरुद्ध पक्षोंका बाधकरिकै सो पुरुष मैं परमात्मादेवकूं अखंड, एकरस, नित्य, विभुरूपही जानैहै। अणुरूप वा मध्यम परिमाणवाला वा नैयायिकोंके विभुपरिमाणवाला वा स्वगतभेदवाला मैं परमात्मादेवकूं जानता नहीं। तथा मैं देहरूप हूं अथवा इंद्रियरूप हूं । अथवा प्राणरूप हूं । अथवा मनरूप हूं। अथवा कोईक कालस्थायी हूं। अथवा क्षणिक विज्ञानरूप हूं। अथवा शून्यरूप हूं । अथवा कर्त्ताभोक्तारूप हूं। अथावा जडरूप हूं। अथवा जडअजडरूप हूं । अथवा चित्रूप हूं । अथवा भोक्तारूप हूं । अथवा कर्तृत्वभोक्तृत्वतैं रहित आनंदघनरूप हूं। इसप्रकारका विचार करिकै श्रुतिविरुद्ध सर्वपक्षोंका बाधकरिकै सो अधिकारी पुरुष मैं परमात्मादेवकूं परिपूर्ण, सत्य, ज्ञान, आनंदघन, सर्वउपाधियोंतैं रहित, अखंड, एकरस, अद्वितीय, अजर, अमर, अभय, अशोकरूपही जानैहै । देहइंद्रियादिरूप मेरेकूं जानता नहीं । इस प्रकारका तिस निदिध्यासनरूप भक्तितैं मैं परमात्मदेवकूं यथावत् जानिकै अर्थात् अखंड, एकरस, अद्वितीय, आनंदरूप ब्रह्म मैंही हूं। इस प्रकारतैं मैं परमात्मादेवकूं साक्षात्कारकरिकै सो तत्त्ववेत्ता पुरुष मैं परमात्मादेवविषे ही प्रवेश करैहै। अर्थात् तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै अज्ञानके निवृत्त हुए तथा ता अज्ञानके देहादिक कार्योंके निवृत्तहुए सर्व उपाधियोंतैं रहित हुआ सो परमहंस संन्यासी मैं निर्गुणब्रह्मरूप ही होवैहै । तहां सर्व उपाधियोंतैं रहित होइकै सो तत्त्ववेत्ता संन्यासी कबी ब्रह्मरूप होवैहै ? ऐसी जिज्ञासाके प्राप्त हुए कहैं हैं (तदनंतरमिति) अर्थात् बलवान् प्रारब्धकर्मके भोगकरिकै देहके पातहुएतैं अनंतर सो तत्त्ववेत्ता संन्यासी देहादिक सर्वउपाधियोंतैं रहितहुआ ब्रह्मरूप होवैहै। यद्यपि (तदनंतरम्) इस वचनका ज्ञानतैं अनंतर या प्रकारका अर्थ किसी टीकाकारनैं कऱ्या है तथापि यह अर्थ संभवता नहीं । काहेतैं आत्मज्ञान ब्रह्मविषे प्रवेश इन

दोनोंका पूर्वउत्तरभाव तौ (ज्ञात्वा) इस वचनविषे स्थित क्त्वा इस प्रत्ययकरिकै ही सिद्ध होवैहै । (तदनंतरम्) यह पद व्यर्थ होवैगा । यातैं (तदनंतरम्) इस वचनका देहपाततैं अनंतर यह अर्थही सम्यक् है इति । तहां इस श्लोकविषे श्रीभगवान्नैं (तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्षेऽथ संपत्स्ये) इस श्रुतिका अर्थ कथन कर्याहै । इस श्रुतिका यह अर्थ है । तिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं विदेहमोक्षकी प्राप्तिविषे तितनेकालपर्यंत ही विलंब है । जितनेकालपर्यंत प्रारब्धकर्मके भोगकरिकै इस देहका पात नहीं होवैहै । देहके पातहुएतैं अनंतर सर्वउपाधियोंतैं रहितहुआ सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष निर्गुण अद्वितीय ब्रह्मकी प्राप्तिरूप विदेहमोक्षकूं प्राप्त होवैहै इति । जो कदाचित् तत्त्वज्ञानके उत्पन्नहुएभी देहके पातपर्यंत प्रारब्धकर्मोंकूं विदेहकैवल्यका प्रतिबंधक नहीं मानिये तौ तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिकालविषे ही देहका पात होवैगा । तहां ज्ञानके समकालही देहका पात न मानणेविषे एक तौ ब्रह्मविद्याके संप्रदायका उच्छेद प्राप्त होवैगा । और दूसरा जीवन्मुक्तिकी प्रतिपादक श्रुति असंगत होवैगी । सा श्रुति यह है (विमुक्तश्च विमुच्यते । भूयश्चांते विश्वमायानिवृत्तिः) अर्थ यह—तत्त्वज्ञानकरिकै मुक्त हुआभी यह विद्वान् पुरुष प्रारब्धकर्मके भोगकरिकै देहपाततैं अनंतर पुनः विशेषकरिकै मुक्त होवैहै इति । और इस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी अज्ञानरूप माया पूर्व तत्त्वज्ञानकरिकै निवृत्त हुई भी लेशरूपकरिकै रहीहुई सा माया पुनः देहपाततैं अनंतर निवृत्त होवै है इति । यह दोनों श्रुति मुक्तपुरुषकी पुनः मुक्तिकूं कथन करतीहुई तथा निवृत्तहुई सा माया पुनः निवृत्तिकूं कथन करतीहुई विद्वान् पुरुषके जीवन्मुक्तिकूं कथन करैहैं ते दोनों श्रुति असंगत होवैंगी । यातैं तत्त्वज्ञानके उत्पन्न हुएभी देहके पातपर्यंत प्रारब्धकर्मोंकूं विदेहकैवल्यका प्रतिबंधकपणा अंगीकार करणा उचित है । यद्यपि जैसे दीपक अंधकारका विरोधि होवैहै, यातैं सो दीपक आपणे उत्पत्तिकालविषे ही ता अंधकारकी निवृत्ति करै है तैसे तत्त्वज्ञानभी अज्ञानका विरोधी है यातैं सो तत्त्वज्ञानभी आपणे उत्पत्तिकालविषे ही ता अज्ञानकूं निवृत्त करैहै । और ता अज्ञानरूप उपादानकारणके निवृत्तहुए ताके कार्यरूप अहंकार देहादिक भी उसी कालविषे निवृत्त होणेचाहिये तथापि तत्त्वज्ञानकरिकै उपादानकारणरूप अज्ञानके निवृत्त हुएभी ता अज्ञानके कार्यरूप अहंकारदेहादिक उपादानकारणतैं विनाही प्रारब्धकर्मके भोगपर्यंत स्थित होवैं हैं । जिस कारणतैं तत्त्ववेत्ता पुरुषके

अहंकारदेहादिक प्रत्यक्षही देखणेविषे आवैं हैं। और (न हि दृष्टेरनुपपन्नं नाम) अर्थ यह-प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध अर्थविषे किंचित्‌मात्रभी अनुपपत्ति होवै नहीं । यह सर्वशास्त्रकारोंका नियम है । ऐसे प्रत्यक्षप्रमाणकरिकै सिद्ध तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके अहंकारदेहादिक किसीनैं निषेधकरिसकीते नहीं । और उपादानकारणके निवृत्त हुएतैं अनंतर कार्यकी स्थिति कहांभी देखीती नहीं । ऐसी जो कोई शंका करै सा शंकाभी संभवती नहीं । काहेतैं समवायिकारणके नाशतैं कार्यद्रव्यके नाशकूं अंगीकार करणेहारे जे नैयायिक हैं तिन नैयायिकोंनैं भी उपादानकारणतैं रहित एकक्षणमात्र कार्यद्रव्यकी स्थिति अंगीकार करीहै । और तिन नैयायिकोंके मतविषे नित्यपरमाणुवोंविषे समवेत जो द्व्यणुकरूप कार्यद्रव्य है, तिस द्व्यणुकका समवायिकारणके नाशतैं नाश होवै नहीं किंतु दो परमाणुवोंका संयोगरूप असमवायिकारणके नाशतैं ही ता द्व्यणुकका नाश होवैहै । और जे नैयायिक सर्वत्र असमवायिकारणके नाशकूं ही कार्यद्रव्यके नाशविषे हेतु कहैं हैं। तिन नैयायिकोंके मतविषे तौ आश्रयके नाशस्थलविषे उपादानतैं रहित हुआ कार्यद्रव्य दो क्षणपर्यंत स्थिररहै है । इस प्रकार नैयायिकोंनैं उपादानकारणके नाश हुएभी कार्यद्रव्यकी एक क्षणपर्यंत स्थिति वा दो क्षणपर्यंत स्थिति अंगीकार करी है । तैसे सिद्धांतविषेभी अज्ञानरूप उपादानकारणके निवृत्तहुएभी प्रारब्धकर्मरूप प्रतिबंधके विद्यमान हुए अहंकार देहादिरूप कार्यकी बहुतकालपर्यंत स्थिति किसीतैं भी निवृत्त होइसकै नहीं । और तत्त्ववेत्तापुरुषके अहंकार देहादिकोंकी निवृत्तिविषे प्रारब्धकर्मोंकूं प्रतिबंधकपणा है । यह अर्थ केवल स्वकल्पनामात्रतैं सिद्ध नहीं है किंतु (तस्य तावदेव चिरम्) इस पूर्वउक्त श्रुतिकरिकै ही सिद्ध है । तथा तत्त्ववेत्तापुरुषके अहंकार देहादिकोंके स्थितिकी अनुपपत्तिरूप अर्थापत्तिप्रमाणकरिकै भी सिद्ध है । किंवा तत्त्ववेत्ता पुरुषके अहंकार देहादिकोंकी निवृत्तिविषे केवल तिस तत्त्ववेत्तापुरुषके ही प्रारब्धकर्म प्रतिबंधक नहींहै किंतु तिस तत्त्ववेत्तापुरुषके उपदेशकरिकै कृतार्थ होणेहारे शिष्यसेवकादिकोंके अदृष्टभी प्रतिबंधक हैं तिन प्रारब्धकर्मोंके अभावकी अपेक्षाकरिकै सो पूर्वसिद्धही अज्ञानका नाश ता अज्ञानके कार्यरूप अंतःकरणदेहादिकोंकूं नाश करैहै । यातैं तिन अंतःकरणदेहादिकोंके नाश करणेवास्तै तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं पुनः ज्ञानकी अपेक्षा होवै नहीं । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषे भी कथन करीहै । तहां श्लोक-

(तीर्थे श्वपचगृहे वा नष्टस्मृतिरपि परित्यजन्देहम्।ज्ञानसमकालमुक्तः कैवल्यं याति हतशोकः॥) अर्थ यह—अहं ब्रह्मास्मि इसप्रकारके ज्ञानकी प्राप्तिकालविषे मुक्तहुआ तथा निवृत्तहुए हैं सर्व शोक जिसके ऐसा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष है सो तत्त्ववेत्ता पुरुष श्रीकाशीआदिक तीर्थोंविषे देहकूं परित्याग करताहुआ। अथवा चांडालके गृह-विषे देहकूं परित्याग करताहुआ। अथवा सन्निपातादिक रोगके वशतैं शास्त्र अर्थकी स्मृतितैं रहितहोइकै देहकूं परित्याग करताहुआ सर्वप्रकारतैं विदेहकैवल्य-कूं ही प्राप्त होवै है इति। और अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके तत्त्वज्ञानकरिकै निवृत्त हुआ है अज्ञान जिसका ऐसा जो ब्रह्मवेत्ता पुरुष है तिस ब्रह्मवेत्तापुरुषकूं भी (न जानामि) इसप्रकारका प्रत्यय तौ होवै है परंतु जैसा अज्ञानी पुरुषका सो प्रत्यय अज्ञानतैं होवैहै तैसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषका सो प्रत्यय अज्ञानतैं होवै नहीं किंतु अज्ञानके नाशकरिकै जन्य तथा उपादानतैं रहित तथा साक्षात् आत्माके आश्रित तथा तत्त्वज्ञानके संस्कारोंकरिकै निवर्त्य तथा अंतःकरणादिकोंके स्थितिका अवधिरूप ऐसा जो अज्ञानका संस्कार है तिस अज्ञानके संस्कारतैं ही तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं (न जानामि) यह प्रत्यय होवै है। इसप्रकारतैं विवरणादिक ग्रंथोंविषे व्यवस्था करी है। तात्पर्य यह—अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारके अंत्यसाक्षात्कारतैं अनंतर (अहं ब्रह्म न भवामि अहं ब्रह्म न जानामि।) अर्थ यह—मैं ब्रह्म नहीं हूं तथा मैं ब्रह्मकूं नहीं जानता हूं इसप्रकारका प्रत्यय तौ तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं कदाचित्भी होता नहीं। परंतु तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं जो कदाचित् व्यवहारकालविषे (अहं घटं न जानामि।) अर्थ यह—मैं घटकूं नहीं जानता हूं इत्यादिक प्रत्यय होवै तिस प्रत्ययकी सिद्धिवासतै सो अज्ञानका संस्कार कल्पना कऱ्या है। यातैं इहां किंचितमात्रभी अनुपपत्ति होवै नहीं। और तत्त्वज्ञानकरिकै अज्ञानके निवृत्तहुएतैं अनंतर शास्त्रका-रोंनैं जो अज्ञानका लेश अंगीकार कऱ्या है तिस अज्ञानलेशपदकरिकै भी यह अज्ञानका संस्कार ही विवक्षित है। तिस संस्कारतैं भिन्न दूसरा कोई अवयवा-दिरूप अर्थ तिस अज्ञानलेशपदकरिकै विवक्षित नहीं है। काहेतैं घटपटादिक द्रव्योंकी न्याई सो अज्ञान कोई सावयवद्रव्य है नहीं जिस सावयवताकरिकै तत्त्वज्ञा-नकरिकै कछुक अज्ञान निवृत्त होवै है कछुक अज्ञान बाकी रहै है याप्रकारकी कल्पना होवै है। परन्तु सो अज्ञान सावयव है नहीं। और अज्ञानकूं अनिर्वचनीय होणेतैं जो कदाचित् तिस अज्ञानका कोईएक देश अंगीकार करिये तौ तिस अज्ञा-

नके एक देशकी निवृत्तिवास्तै पुनः अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके अंत्यज्ञानकी अपेक्षा अवश्य होवैगी। सो इसप्रकारका ज्ञान मरणकालविषे दुर्घटही है। यातैं तिस अज्ञानके एकदेशविषेभी पूर्वउत्पन्नहुए तत्त्वज्ञानके संस्कारकरिकै ही नाश्यता अंगीकार करणी होवैगी। ताकरिकै पूर्वउक्त संस्कारपक्षतैं इस एकदेशपक्षविषे किंचित्मात्रभी विशेषता सिद्ध नहीं होवैगी। यातैं सा पूर्वउक्त अज्ञानसंकारोंकी कल्पना ही श्रेष्ठ है। इसप्रकारके जीवन्मुक्तिकी अपेक्षाकरिकै ही पूर्व श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति (उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।) इसप्रकारका वचन कथन कऱ्या था। तथा तत्त्ववेत्ता स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षण कथन करेथे। यातैं (तदनंतरं मां विशते।) इस वचनकरिकै तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं देहपाततैं अनंतर विदेहकैवल्यकी प्राप्ति जो भगवान्नैं कथन करी है सो युक्तही है इति। और किसी टीकाविषे तौ (ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम्।) इस उत्तरार्द्धविषे (मां तत्त्वतः ज्ञात्वा ततः भवति अनंतरं तत् विशते) इसप्रकारतैं भवति इस पदके अध्याहारपूर्वक पदोंकी योजनाकरिकै यह अर्थ कथन कऱ्या है। इहां (ततः) इस पदकरिकै सर्वत्रव्यापक मायाविशिष्ट कारणब्रह्मका ग्रहण करणा। और (तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति।) इस श्रुतिविषे तत् यह नाम शुद्धब्रह्मका कह्या है। यातैं यह अर्थ सिद्ध होवै है—मैं ब्रह्मरूप हूं इसप्रकारतैं मैं परब्रह्मकूं साक्षात्कार करिकै यह तत्त्ववेत्ता पुरुष प्रथम सर्वात्माभूत कारणब्रह्मरूप होवै है। तहां श्रुति—(य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति।) अर्थ यह—जो तत्त्ववेत्ता पुरुष अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारतैं आत्माकूं साक्षात्कार करै है सो तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्वरूप होवै है इति। इस श्रुतिनैं तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं प्रथम सर्वात्म्यरूप कारणब्रह्मभावकी प्राप्ति कथन करी है। और तिस कारणब्रह्मभावकी प्राप्तितैं अनंतर सो तत्त्ववेत्ता पुरुष शुद्धब्रह्मभावकूं प्राप्त होवै है अर्थात् मुक्तपुरुषोंकूं मायाउपाधिक कारणब्रह्मकी प्राप्तिद्वारा ही निर्गुण शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति होवै है इस पक्षका विस्तारतैं प्रतिपादन ग्रंथांतरोंविषे स्पष्ट है ॥ ५५ ॥

हे भगवन् ! जो पुरुष अनात्मज्ञ है तथा अशुद्धअंतःकरणवाला है सो पुरुष ता अंतःकरणकी शुद्धिपर्यंत आपणे वर्णआश्रमके कर्मोंकूं कदाचित्भी नहीं परित्याग करै। और जो पुरुष शुद्धअंतःकरणवाला है सो पुरुष तौ सर्वकर्मोंके संन्यासकरिकै ही आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै है। यह वार्त्ता पूर्व आपनैं कथन करी।

और सो सर्वकर्मोंका संन्यास ब्राह्मणनैंही करणे योग्य है। क्षत्रिय वैश्यनैं सो सर्व कर्मोंका संन्यास करणेयोग्य नहीं है इस अर्थकूंभी (कर्मणैव हि संसिद्धमास्थिता जनकादयः।) इस वचनकरिकै आप कथन करतेभये हो। तहां शुद्धहुआ है अंतःकरण जिनोंका ऐसे क्षत्रियादिकोंनैं क्या कर्मही अनुष्ठान करणेयोग्य हैं अथवा सर्वकर्मोंका संन्यास करणेयोग्य है ? तहां शुद्धअंतःकरणवाले क्षत्रियवैश्यनैं कर्मही करणे योग्य हैं। यह प्रथमपक्ष तौ संभवता नहीं। काहेतैं (आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते। योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।) इत्यादिक वचनकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिकूं कर्मोंके अनुष्ठानका निषेध पूर्व आप कथन करिआये हो। और शुद्ध अंतःकरणवाले क्षत्रियवैश्यनैं संन्यास करणेयोग्य है, यह दूसरा पक्षभी संभवता नहीं। काहेतैं (स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।) इत्यादिक वचनोंकरिकै केवल ब्राह्मणका धर्मरूप जो सर्व कर्मोंका संन्यास है तिस संन्यासका क्षत्रियवैश्यके प्रति आप निषेध करिआये हो। और कर्मोंका अनुष्ठान तथा तिन कर्मोंका त्याग इन दोनों प्रकारोंतैं विना तीसरा कोई प्रकार है नहीं। जिस तीसरे प्रकारकूं ते शुद्धअंतःकरणवाले क्षत्रियवैश्यादिक करैं। यातैं कर्मोंका अनुष्ठान तथा कर्मोंका त्यागरूप संन्यास इन दोनोंका शुद्धअंतःकरणवाले क्षत्रिय वैश्यके प्रति प्रतिषेध होणेतैं तथा अन्यप्रकारके अभाव होणेतैं एक प्रतिषेधका अतिक्रमण तौ अवश्यकरिकै प्राप्त होवैगा। तहां शुद्धअंतःकरणवाले क्षत्रियवैश्यकूं कर्मोंके अनुष्ठानतैं कर्मोंका त्याग ही श्रेष्ठ है। काहेतैं (कर्मणा बध्यते जंतुः।) इत्यादिक वचनोंविषे कर्मोंकूं बंधका हेतुपणा ही कथन कऱ्या है। ऐसे बंधके हेतुरूप कर्मोंके परित्यागकरिकै इस पुरुषकूं मोक्षके साधनोंकी पुष्कलताही प्राप्त होवैहै। और शुद्धअंतःकरणवाले क्षत्रिय वैश्यनैं ते कर्म अनुष्ठान करणेयोग्य नहीं हैं। काहेतैं ते कर्म चित्तके विक्षेपके हेतु होणेतैं मोक्षके साधनरूप आत्मज्ञानके प्रतिबंधकही हैं। इसप्रकारके अर्जुनके अभिप्रायकूं जानिकै श्रीभगवान् तिस अर्जुनके प्रति कहैं हैं–

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः॥
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥ ५६ ॥

(पदच्छेदः) सर्वकर्माणि। अपि। सदा। कुर्वाणः। मद्व्यपाश्रयः। मत्प्रसादात्। अवाप्नोति। शाश्वतम्। पदम्। अव्ययम्॥ ५६॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वकर्मोंकूं सदा करताहुआ भी मेरे शरणागत-पुरुष मेरेअनुग्रहतैं शाश्वत अव्यय पदकूं प्राप्तहोवैहै ॥ ५६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष पूर्वउक्त निष्कामकर्मोंकरिकै शुद्धअंतः-करणवाला हुआहै सो शुद्धअंतःकरणवाला पुरुष अवश्यकरिकै भगवत्शरणकूं प्राप्त होवैहै । काहेतैं निष्कामकर्मोंकरिकै जन्य जो अंतःकरणकी शुद्धि है ता शुद्धिका भगवत्शरणकी प्राप्तिविषेही परिअवसान है । इसप्रकार निष्कामकर्मजन्य अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक भगवत्शरणकूं प्राप्तहुआ जो अधिकारी पुरुष है सो अधि-कारी पुरुष जो कदाचित् ब्राह्मण होवैहै तौ संन्यासका प्रतिबंधक क्षत्रियत्व वैश्यत्वजातितैं रहित होणेतैं सो ब्राह्मण निःशंक होइकै विधिपूर्वक सर्वकर्मोंका संन्यास करै । और अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक तथा सर्वकर्मोंके संन्यासपूर्वक भगवच्छरणकूं प्राप्तहुए तिस ब्राह्मणकाभी इस जन्ममरणरूप संसारतैं मोक्ष तौ एक भगवत्के प्रसादतैंही होवै है । तिस भगवत्प्रसादतैं विना केवल कर्मोंके त्यागमात्रतैं तिस अधिकारी ब्राह्मणका संसारतैं मोक्ष होवै नहीं। और तिन निष्कामकर्मोंकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिकूं प्राप्तहुआ जो अधिकारी पुरुष है सो अधिकारी पुरुष जो कदा-चित् संन्यासका अधिकारी क्षत्रिय वैश्य होवै सो क्षत्रिय वैश्य अधिकारी पुरुष तौ कर्मोंकूं अवश्यकरिकै करै। परंतु सो क्षत्रिय वैश्य मद्व्यपाश्रयहुआ कर्मोंकूं करै। तह-मैं भगवान् वासुदेवही हूं व्यपाश्रय कहिये शरण जिसका ताका नाम मद्व्यपाश्रय है। अर्थात् एक मैं परमेश्वरके शरण होइकै मैं परमेश्वरविषे अर्पण कऱ्याहै सर्वात्मभाव जिसनैं ताका नाम मद्व्यपाश्रय है । ऐसा मद्व्यपाश्रय हुआ यह क्षत्रिय वैश्यादिक अधिकारी पुरुष संन्यासका अनधिकारी होणेतैं सर्वदा सर्वकर्मोंकूं करताहुआभी अर्थात् शास्त्रविहित स्ववर्णआश्रमके धर्मरूप कर्मोंकूं अथवा लौकिक कर्मोंकूं अथवा प्रतिषिद्ध कर्मोंकूं करताहुआभी मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं हिरण्यगर्भकी न्याईं अहं ब्रह्मास्मि इसप्रकारके ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति करिकै शाश्वत अव्ययपदकूं प्राप्त होवैहै । अर्थात् (तद्विष्णोः परमं पदम् ।) इस श्रुतिकरिकै प्रतिपादित जो मोक्षरूप पद है जिस पदकूं प्राप्त होइकै तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होते नहीं, तिस मोक्षरूप पदकूं सो अधिकारी पुरुष प्राप्त होवैहै। कैसा है सो पद—शाश्व-त है। अर्थात् उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य है तथा अव्यय है अर्थात् परिणा-

मभावतैं रहित है। यद्यपि इसप्रकारका भगवत्शरण अधिकारी पुरुष कदाचितभी प्रतिषिद्धकर्मोंकूं करता नहीं, तथापि जो कदाचित् सो भगवत्शरण अधिकारी पुरुष तिन प्रतिषिद्धकर्मोंकूं करैभी तौभी मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं प्रत्यवायकी अनुत्पत्ति करिकै अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके मेरे साक्षात्करिकै सो अधिकारी पुरुष मोक्षकूंही प्राप्त होवैहै। इसप्रकारतैं तिस भगवत्शरणताकी स्तुति करणेवास्तै श्रीभगवान्नैं (सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणः) इसप्रकारका वचन कथन कऱ्याहै ॥ ५६ ॥

जिसकारणतैं एक मैं परमेश्वरकी शरणतामात्रही आत्मज्ञानकी प्राप्तिद्वारा मोक्षका साधन है तिसतैं अन्य कर्मोंका अनुष्ठान वा कर्मोंका संन्यास मोक्षका साधन है नहीं। तिसकारणतैं तूं क्षत्रिय अर्जुन केवल मैं परमेश्वरपरायणही होउ। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ॥
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥

(पदच्छेदः) चेतसा । सर्वकर्माणि । मयि । संन्यस्य । मत्परः । बुद्धियोगम् । उपाश्रित्य । मच्चित्तः । सततम् । भव ॥ ५७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! चित्तकरिकै सर्वकर्मोंकूं मैं परमेश्वरविषे समर्पणकरिकै मत्परहुआ तूं बुद्धियोगकूं स्वीकारकरिकै सर्वदा मच्चित्त होउ ॥ ५७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इसलोकके दृष्टअर्थोंकी प्राप्ति करणेहारे तथा स्वर्गादिकलोकोंके अदृष्टअर्थोंकी प्राप्ति करणेहारे जितनेक लौकिक वैदिक कर्म हैं तिन सर्वकर्मोंकूं विवेकयुक्त बुद्धिकरिकै मैं परमेश्वरविषे अर्पण करिकै अर्थात् (यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥) इस पूर्वश्लोकउक्तरीतिसैं तिन लौकिक वैदिक सर्वकर्मोंकूं मैं परमेश्वरविषे अर्पण करिकै मत्परहुआ तूं तहां मैं भगवान् वासुदेवही हूं अत्यंत प्रिय जिसकूं ताका नाम मत्पर है। ऐसा मत्पर हुआ तूं पूर्व कथनकऱ्या जो कर्मफलकी सिद्धि असिद्धिविषे समत्वबुद्धिरूप बुद्धियोग है जो बुद्धियोग बंधके हेतुरूपभी कर्मोंविषे मोक्षके हेतुपणेका संपादक है। ऐसे बुद्धियोगकूं अनन्यशरणरूपतैं स्वीकार करिकै सर्वदा मच्चित्त होउ। तहां मैं भगवान् वासुदेवविषेही है चित्त जिसका दूसरे किसी राजाविषे वा का-

मिनीआदिकोंविषे जिसका चित्त है नहीं ताका नाम मच्चित्त है। इसप्रकारका मच्चित्त तूं अर्जुन सर्वदा होउ। इहां किसी मूलपुस्तकविषे (बुद्धियोगमपाश्रित्य) इस प्रकारकाभी पाठ होवैहै। ऐसे पाठविषेभी सो पूर्वउक्त अर्थही जानणा ॥ ५७ ॥

हे भगवन् ! तिस मच्चित्त होणेतैं कौन प्रयोजन सिद्ध होवै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। अथवा इस पूर्वउक्त भक्तियोगके करणेविषे गुणकूं तथा न करणेविषे दोषकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

(पदच्छेदः) मच्चित्तः । सर्वदुर्गाणि । मत्प्रसादात् । तरिष्यसि । अथ । चेत् । त्वम् । अहंकारात् । न । श्रोष्यसि । विनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मच्चित्तहुआ तूं मेरे प्रसादतैं दुस्तर कामक्रोधादिकोंकूंभी तरिजावैगा और जो कदाचित् तूं अर्जुन अहंकारतैं मेरे वचनकूं नहीं श्रवण करैगा तौ तूं नष्टहोवैगा ॥ ५८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मच्चित्त हुआ तूं मेरे प्रसादतैं सर्वदुर्गोंकूं तरिजावैगा। तहां संसारदुःखके साधनरूप जे अतिदुस्तर कामक्रोधादिक हैं तिनोंका नाम दुर्ग है। ऐसे कामक्रोधादिरूप सर्वदुर्गोंकूं तूं आपणे प्रयत्नतैंविनाही केवल मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं सुखेनही अतिक्रमण करैगा। और जो कदाचित् तूं अर्जुन मैं परमेश्वरके वचनोंविषे अविश्वास करिकै मैं पंडित हूं इस प्रकारके गर्वरूप अहंकारतैं तिस हमारे वचनकूं नहीं श्रवण करैगा अर्थात् जो कदाचित् तूं हमारे वचनोंके अर्थकूं नहीं अनुष्ठान करैगा तौ तूं अर्जुन नष्ट होवैगा। अर्थात् आपणी इच्छातैं युद्धादिक स्वधर्मका परित्याग करिकै संन्यासादिक परधर्मके अनुष्ठानतैं तूं सर्वपुरुषोंतैं भ्रष्ट होवैगा ॥ ५८ ॥

हे भगवन् ! युद्धादिककर्मोंके करणेविषे अथवा नहीं करणेविषे मैं अर्जुन स्वतंत्र हूं। यातैं तुम्हारे वचनके अर्थकूं मैं नहीं करूंगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं—

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ॥
मिथ्यैव व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ ५९

(पदच्छेदः) यत् । अहंकारम् । आश्रित्य । न । योत्स्ये । इति । मन्यसे । मिथ्या । एव । व्यवसायः । ते । प्रकृतिः । त्वाम् । नियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं अहंकारकूं आश्रयकरिकै मैं नहीं युद्धकरूंगा इसप्रकार जो माँनताहै सो तुम्हारा निश्चय मिथ्यां हीहै जिसकारणतैं तुम्हारेकूं प्रकृति अवश्य युद्धविषे प्रेरणाकरैगी ॥ ५९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं धर्मात्मा हूं यातैं इस युद्धरूप क्रूरकर्मकूं मैं नहीं करूंगा इसप्रकारके मिथ्या अभिमानकूं आश्रय करिकै इस युद्धकूं मैं नहीं करूंगा इसप्रकार जो तूं मानता है सो तुम्हारा निश्चय निष्फलही है । जिसकारणतैं क्षत्रियजातिका आरंभक रजोगुणस्वरूप जा प्रकृति है सा प्रकृति तुम्हारेकूं इस युद्धरूप कर्मविषे अवश्यकरिकै प्रवर्त्त करैगी । इसीकारणतैंही (प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ।) इस वचनकरिकै पूर्व सर्वजीवोंकी प्रवृत्ति आपणी आपणी प्रकृतिके अधीन कथन करि आयेहैं यातैं तूं अर्जुन स्वतंत्र नहीं है किंतु आपणी प्रकृतिके अधीन है ॥ ५९ ॥

अब श्रीभगवान् अर्जुनका स्वप्रकृतिके अधीनपणा निरूपण करैं हैं—

स्वभावजेन कौंतेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ॥
कर्त्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोपि तत् ॥ ६० ॥

(पदच्छेदः) स्वभावजेन । कौंतेय । निबद्धः । स्वेन । कर्मणा । कर्त्तुम् । न । इच्छसि । यत् । मोहात् । करिष्यसि । अवशः । अपि । तत् ॥ ६० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! स्वभावजन्य आपणे कर्मकरिकै वशीकृतहुआ मोहके वशतैं जिसयुद्धकूं करणेवासतै नहीं इच्छताहै तिसयुद्धकूं तूं अवशहुआ भी करैगा ॥ ६० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्वउक्त क्षत्रियस्वभावकरिकै जन्य जे शौर्यादिक अनागंतुक कर्म हैं तिन कर्मोंकरिकै वशीकृत हुआ तूं अर्जुन मोहके वशतैं जिस युद्धके करणेकूं नहीं इच्छताहै अर्थात् मैं अर्जुन स्वतंत्र हूं यातैं जिस जिस अर्थकी इच्छा करूंगा तिसी ही अर्थकूं संपादन करूंगा इसप्रकारके भ्रमरूप मोहके वशतैं

जो तूं बंधुवधादिकोंका निमित्तभूत इस युद्धके करणेकूं नहीं इच्छताहै तिस युद्धरूप कर्मकूं तूं अर्जुन अवश हुआभी करैगा अर्थात् तिस युद्धरूप कर्मके करणेकी नहीं इच्छा करताहुआभी तूं पूर्वउक्त स्वाभाविक कर्मोंके परतंत्र हुआ तथा अंतर्यामी परमेश्वरके परतंत्र हुआ तिस युद्धकूं अवश्यकरिकै करैगा ॥ ६० ॥

तहां (अवशः) इस पूर्वउक्त वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे स्वभावरूप प्रकृतिका अधीनपणा तथा अंतर्यामी ईश्वरका अधीनपणा सूचन कऱ्या । तहां स्वभावरूप प्रकृतिका अधीनपणा तौ पूर्वश्लोकविषे प्रतिपादन कऱ्या । अब अंतर्यामी ईश्वरका अधीनपणा स्पष्टकरिकै प्रतिपादन करैं हैं-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥

(पदच्छेदः) ईश्वरः । सर्वभूतानाम् । हृद्देशे । अर्जुन । तिष्ठति । भ्रामयन् । सर्वभूतानि । यंत्रारूढानि । मायया ॥ ६१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अंतर्यामी ईश्वर यंत्रविषे आरूढ काष्ठमय प्रतिमावोंकी न्याईं सर्वप्राणियोंकूं मायाकरिकै जहां तहां भ्रमणकरावताहुआ सर्वप्राणियोंके हृदयदेशविषे स्थित होवैहै ॥ ६१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जीवोंके पुण्यपापकर्मोंके अनुसार तिन सर्व जीवोंकूं शुभअशुभकर्मविषे प्रवर्त्तक जो अंतर्यामी नारायण है जो अंतर्यामी नारायण-(यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अंतरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमंतरोयमयति । यच्च किंचिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥) इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै प्रतिपादित है । इन दोनों श्रुतियोंका यह अर्थ है-जो अंतर्यामी ईश्वर पृथिवीविषे स्थितहुआ तिस पृथिवीके अंतर है । तथा जिस अंतर्यामी ईश्वरकूं सा पृथिवी नहीं जानती है । तथा जिस अंतर्यामी ईश्वरका सा पृथिवी शरीर है । तथा जो अंतर्यामी ईश्वर तिस पृथिवीकूं प्रवृत्त करै है सोही अंतर्यामी ईश्वर तुम्हारा आत्मा है इति । और जितनाक सर्व जगत् देखणेविषे आवै है तथा श्रवण करणेविषे आवता है तिस नामरूपात्मक सर्व जगत्कूं अंतर्बाह्य व्याप्य करिकै नारायण स्थित है इति । इस प्रकारका अंतर्यामी नारायणरूप ईश्वर सर्वप्राणियोंके अंतःकरणरूप हृदयदे-

शविषे स्थित है अर्थात् जैसे सामान्यतैं सर्वत्र व्यापकभी सूर्यका प्रकाश दर्पणादिक स्वच्छउपाधियोंविषे विशेषरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवै है। तथा जैसे सर्वद्वीपोंका अधिपतिभी श्रीराम उत्तरकोशलविषे विशेषरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवैहै तैसे सामान्यतैं सर्वव्यापक हुआभी सो अंतर्यामी ईश्वर तिन अंतःकरणोंविषे विशेषकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवै है। याकारणतैं तिस अंतर्यामी ईश्वरकी हृदयदेशविषे स्थिति कथन करी है। शंका—हे भगवन्! सो अंतर्यामी ईश्वर क्या कार्य करताहुआ तिन सर्वप्राणियोंके हृदयदेशविषे स्थित होवै है? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (भ्रामयन् इति) हे अर्जुन ! सो अंतर्यामी ईश्वर आपणी मायाकरिकै तिन सर्वप्राणियोंकूं आपणे आपणे पुण्यपापकर्मोंके अनुसार तथा पूर्वले संस्कारोंके अनुसार जहां तहां शुभ अशुभ कर्मविषे प्रवृत्त करताहुआ तिन सर्वप्राणियोंके हृदयदेशविषे स्थित होवैहै। अब इस अर्थविषे दृष्टांतकूं कथन करैं हैं (यंत्रारूढानि इति) हे अर्जुन ! यंत्रविषे आरूढ जे काष्ठरचित पुरुष अश्वादिरूप प्रतिमा हैं जे प्रतिमा अत्यंत परतंत्र हैं तिन काष्ठमय प्रतिमावोंकूं जैसे सूत्रधारी मायावी पुरुष भ्रमण करावैहै तैसे यह अंतर्यामी ईश्वरभी आपणी मायाकरिकै तिन सर्वप्राणियोंकू जहां तहां भ्रमण करावैहै इति। यातैं इस युद्धके करणेकी नहीं इच्छा करताहुआभी तूं अर्जुन तिस अंतर्यामी ईश्वरकी प्रेरणातैं अवश्य इस युद्धकूं करैगा। इहां (हे अर्जुन) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे शुद्धअंतःकरणवत्त्व कथन कऱ्या ताकरिकै यह अर्थ बोधन कऱ्या। शुद्धअंतःकरणवाला तूं अर्जुन ऐसे सर्वांतर्यामी ईश्वरके जानणेकूं योग्य है॥ ६१॥

शंका—हे भगवन् ! परतंत्र सर्वप्राणियोंकूं जो कदाचित् अंतर्यामी ईश्वरही प्रेरणा करता होवै तौ (स्वर्गकामो यजेत परदारान्न गच्छेत्) इत्यादिक विधिनिषेधशास्त्रकूं तथा सर्व पुरुषप्रयत्नकूं अनर्थकता प्राप्त होवैगी? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत॥
तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ ६२॥

(पदच्छेदः) तम्। एव। शरणम्। गच्छ। सर्वभावेन। भारत।

तत्प्रसादात् । पराम् । शांतिम् । स्थानम् । प्राप्स्यसि । शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! सर्वप्रकारकरिकै तिस ईश्वररूप आश्रयकूं ही तूं आश्रयणकर तिस ईश्वरके प्रसादतैं तूं परा शांतिकूं तथा शाश्वत स्थानकूं प्राप्त होवैगा ॥ ६२ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन ! जो अंतर्यामी ईश्वर सर्वप्राणियोंके हृदयदेशविषे स्थित होइकै तिन सर्वप्राणियोंकूं शुभअशुभकार्यविषे प्रवृत्त करैहै । ऐसे सर्वके आश्रयरूप अंतर्यामी ईश्वरकूं ही इस संसारसमुद्रके उत्तरणवासतै तूं सर्वभावकरिकै आश्रयण कर । अर्थात् शरीरकरिकै तथा मनकरिकै तथा वाणीकरिकै सर्वप्रकारकरिकै तिस ईश्वरकूं तूं आश्रयण कर । इसप्रकार जबी तूं अर्जुन सर्वप्रकारकरिकै तिस अंतर्यामी ईश्वरकूं ही आश्रयण करैगा तबी अंतर्यामी ईश्वरके अनुग्रहतैं तूं अर्जुन पराशांतिकूं प्राप्त होवैगा । अर्थात् तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिपर्यंत तिस ईश्वरके अनुग्रहतैं तूं कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप पराशांतिकूं प्राप्त होवैगा । तथा शाश्वतस्थानकूं प्राप्त होवैगा । तहां अद्वितीय स्वप्रकाश परमानंद ब्रह्मरूपकरिकै जो अवस्थान है ताका नाम स्थान है । कैसा है सो स्थान—शाश्वत है अर्थात उत्पत्तिनाशतैं रहित होणेतैं नित्य है । ऐसे नित्यस्थानकूं तूं प्राप्त होवैगा । अर्थात तिस ईश्वरके अनुग्रहतैं प्राप्त भया जो अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारका तत्त्वज्ञान है तिस तत्त्वज्ञानतैं कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप तथा परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षकूं तूं प्राप्त होवैगा । इहां किसी टीकाविषे (परां शांतिम्) इस वचनकरिकै समाधिका ग्रहण कऱ्या है तिस समाधिकी प्राप्ति इस पुरुषकूं ईश्वरके अनुग्रहतैं ही होवै है। यह वार्त्ता (समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ।) इस सूत्रकरिकै पतंजलिभगवान्नैं भी कथन करीहै ॥ ६२ ॥

अब इस सर्व गीताशास्त्रके अर्थका उपसंहार करतेहुए श्रीभगवान् अर्जुके प्रति कहैं हैं ।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ॥
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥

(पदच्छेदः) इति । ते । ज्ञानम् । आख्यातम् । गुह्यात् । गुह्यतरम् । मया । विमृश्य । एतत् । अशेषेण । यथा । इच्छसि । तथा । कुरु ॥ ६३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरनैं तुम्हारेताईं इस पूर्वउक्तप्रकारकरिकै गुह्यपदार्थतैंभी अत्यंतगुह्य आत्मज्ञान कथन कर्याहै यातैं ईसगीताशास्त्रकूं आदिअंत पर्यंत विचारकरिकै जिसप्रकार इच्छताहोवै तिसप्रकार तूं कर ॥ ६३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! हमारा अनन्यभक्त तथा अत्यंतप्रिय ऐसा जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारे ताईं मैं परम आप्त सर्वज्ञ परमेश्वरनैं इस पूर्वउक्त प्रकारकरिकै मोक्षका साधनरूप आत्मविषयकज्ञान कथन कर्याहै। कैसा है सो ज्ञान–गुह्यपदार्थतैंभी अत्यंत गुह्य है अर्थात् परमरहस्यरूप ऐसा जो संन्यासपर्यंत निष्कामकर्मयोग है तिस गुह्यकर्मयोगतैंभी यह आत्मज्ञान गुह्यतर कहिये अत्यंत रहस्यरूप है। जिसकारणतैं तिस संन्यासपर्यंत कर्मयोगका यह आत्मज्ञान फलरूपही है। साधनकी अपेक्षाकरिकै फलविषे रहस्यरूपता युक्तही है। अथवा इसलोकविषे गुह्यराखणेयोग्य जे मंत्र, तंत्र, मणि, रसायण आदिक पदार्थ हैं तिन गुह्यपदार्थोंतैंभी यह आत्मज्ञान अत्यंतगुह्य है। काहेतैं ते मंत्रतंत्रादिक इसपुरुषकूं केवल सांसारिक अनित्यसुखकीही प्राप्ति करैं हैं और यह आत्मज्ञान तौ इस पुरुषकूं ब्रह्मानंदरूप नित्यसुखकीही प्राप्ति करैहै। यातैं तिन मंत्रतंत्रादिकोंतैं इस आत्मज्ञानविषे अत्यंत गुह्यरूपता युक्तही है। यातैं हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरनैं तुम्हारे ताईं उपदेश कर्या जो यह गीताशास्त्र है तिस गीताशास्त्रकूं पूर्वउत्तरवाक्योंकी एकवाक्यतापूर्वक आदिअंतपर्यंत समग्र विचारकरिकै पश्चात् आपणे अधिकारके अनुसार जिस अर्थके अनुष्ठान करणेकी तूं इच्छा करता होवै तिस अर्थके अनुष्ठानकूं तूं कर। परंतु इस गीताशास्त्रकूं आदिअंतपर्यंत भलीप्रकारतैं नहीं विचार करिकै केवल आपणी इच्छामात्रकरिकै तुम्हारेकूं किंचित् भी कार्य करणेयोग्य नहीं है। इहां श्रीभगवान्‌का यह तात्पर्य है–जो मुमुक्षु अशुद्धअंतःकरणवाला है तिस मुमुक्षुजनकूं तौ प्रथम मोक्षके साधनभूत आत्मज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यताके प्रतिबंधक पापकर्मोंके नाश करणेवासतै स्वर्गादिक फलकी इच्छाका परित्याग करिकै तथा भगवदर्पणबुद्धिकरिकै आपणे वर्णआश्रमके धर्मोंकाही अनुष्ठान करणेयोग्य है। तिन निष्कामकर्मोंके अनुष्ठानकरिकै शुद्ध हुआहै अंतःकरण जिसका ऐसा सो अधिकारी पुरुष जो कदाचित् ब्राह्मणशरीर होवै तौ सो ब्राह्मण अधिकारी पुरुष आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाके उत्पन्न हुएतैं अनंतर ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै आत्मज्ञानके साधनरूप वेदांतवाक्योंके विचारवासतै शास्त्रप्रतिपादित विधितैं शिखा यज्ञोपवीतके त्यागपूर्वक सर्वकर्मोंके

संन्यासकूं ही करै । सो संन्यासके ग्रहणकरणेका विधि आत्मपुराणके एकादश अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करिआये हैं । यातैं इहां लिख्या नहीं । तिस संन्यासतैं एक भगवत्शरणताकरिकै पूर्वउक्त विविक्तदेशसेवादिक ज्ञानसाधनोंके अभ्यासतैं श्रवण मनन निदिध्यासनकरिकै, आत्मज्ञानकी उत्पत्तिकरिकै, तिस अधिकारी पुरुषकूं मोक्षकी प्राप्ति होवैहै । और सर्वकर्मोंके संन्यास करणेविषे अनधिकारी ऐसे जे क्षत्रिय वैश्यादिक मुमुक्षु हैं तिन मुमुक्षु क्षत्रियवैश्यादिकोंनैं तौ अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतरभी आपणे वर्णआश्रमके कर्मोंकूंही करणा । यद्यपि अंतःकरणकी शुद्धिवासतैंही कर्मोंका अनुष्ठान होवै है । ता अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर तिन कर्मोंके अनुष्ठानका कोई प्रयोजन नहीं है तथापि श्रुतिस्मृतिरूप भगवत्की आज्ञाके पालनवासतै तथा अन्यलोकोंकूं शुभकर्मोंविषे प्रवर्त्तनरूप लोकसंग्रहवासतै तिन क्षत्रियवैश्यादिकोंनैं अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतरभी तिन कर्मोंकूंही करणा । इसप्रकार निष्कामकर्मोंके करतेहुए तिन क्षत्रियवैश्यादिक मुमुक्षुजनोंकूं एक भगवत्शरणताकी प्राप्तिकरिकै पूर्वजन्मविषे करेहुए संन्यासादिक साधनोंके परिपाकतैं अथवा हिरण्यगर्भकी न्याईं संन्यासकी अपेक्षातैं विनाही केवल परमेश्वरके अनुग्रहमात्रकरिकै अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके आत्मज्ञानकी उत्पत्तिकरिकै मोक्षकी प्राप्ति होवै है । अथवा तिन मुमुक्षु क्षत्रियवैश्यादिकोंकूं अगले जन्मविषे ब्राह्मणशरीरकी प्राप्ति होइकै तहां संन्यासादिक साधनपूर्वक आत्मज्ञानकी उत्पत्तिकरिकै मोक्षकी प्राप्ति होवै है इति । हे अर्जुन ! इसप्रकारके विचार कियेहुए इहां मोहके प्राप्तिका अवकाश होवै नहीं ॥ ६३ ॥

तहां अत्यंत गंभीर जो यह गीताशास्त्र है ता गीताशास्त्रके आदिअंतपर्यंत समग्र विचार करणेतैं जन्य परिश्रमकी निवृत्ति करणेवासतै आपही श्रीभगवान् कृपाकरिकै तिस सर्व गीताशास्त्रके सारअर्थकूं संक्षेपकरिकै कथन करैं हैं—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ॥
इष्टोसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६४ ॥

(पदच्छेदः) सर्वगुह्यतमम्[४] । भूयः[१] । शृणु[२] । मे[३] । परमम्[५] । वचः[६] । इष्टः[११] । असि[१०] । मे[७] । दृढम्[८] । इति[९] । ततः[१२] । वक्ष्यामि[१५] । ते[१३] । हितम्[१४] ॥ ६४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वतैं अत्यंतगुह्य हमारे परम वचनकूं तूं पुनः भी श्रवणकर जिसकारणतैं हमारेकूं तूं अतिशयकरिकै प्रिय है तिसकारणतैं मैं तुम्हारे हितकूं कथन करूंहूं ॥ ६४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व हमनैं संन्यासपर्यंत निष्कामकर्मयोगकूं गुह्य कह्याथा । तथा तिस निष्कामकर्मयोगतैं ज्ञानकूं गुह्यतर कह्याथा । अब तिसी निष्कामकर्मयोगतैं तथा ताके फलभूत ज्ञानतैं सर्वतैं गुह्यतम तथा सर्वतैं उत्कृष्ट ऐसे हमारे वचनकूं तूं पुनःभी श्रवण कर । अर्थात् पूर्व तिस तिस प्रसंगविषे विस्तारतैं कथन कर्‍याहुआ भी सो वचन केवल तुम्हारे अनुग्रहवासतै मैं भगवान् पुनः तिस वचनकूं संक्षेपकरिकै कथन करताहूं तिस वचनकूं तूं श्रवण कर । तहां गुह्यपदार्थतैं जो अतिगुह्य होवै है ताका नाम गुह्यतर है । और ता गुह्यतर पदार्थतैंभी जो अतिगुह्य होवैहै ताका नाम गुह्यतम है । हे अर्जुन ! किसी पदार्थके लाभवासतै अथवा आपणी पूजावासतै अथवा आपणी ख्यातिवासतै मैं परमेश्वर सो वचन तुम्हारे ताईं नहीं कहताहूं किंतु तूं अर्जुन हमारेकूं जिसकारणतैं अतिशयकरिकै प्रिय है तिसकारणतैं तुम्हारे करिकै नहीं पूँछाहुआभी मैं परमेश्वर कृपाकरिकै तुम्हारे परमश्रेयरूप हितकूं कथन करताहूं ॥ ६४ ॥

श्रीभगवान् तिस परमश्रेयरूप हितकूं कथन करैं हैं–

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोसि मे ॥ ६५ ॥

(पदच्छेदः) मन्मनाः । भव । मद्भक्तः । मद्याजी । माम् । नमः । कुरु । माम् । एव । एष्यसि । सत्यम् । ते । प्रतिजाने । प्रियः । असि । मे ॥ ६५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं मन्मना तथा मेराभक्त तथा मद्याजी होउ तथा मैं परमेश्वरकूं नमस्कार कर ऐसे करताहुआ तूं मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैगा तुम्हारेसमीप मैं सत्य प्रतिज्ञा करताहूं जिसकारणतैं तूं हमारेकूं प्रिय है ॥ ६५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तूं मन्मना होउ । तहां मैं भगवान् वासुदेवविषेही है मन जिसका ताका नाम मन्मना है ऐसा मन्मना तूं होउ । अर्थात् सर्वकालविषे मैं परमेश्वरकाही तूं चिंतन कर । शंका–हे भगवन् ! कंसशिशुपालादिकभी

द्वेषकरिकै सर्वदा तुम्हाराही चिंतन करतेभयेहैं । इसप्रकारतैं मैंभी तुम्हारा चिंतन करूं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मद्भक्तः इति) हे अर्जुन ! तूं मैं परमेश्वरका भक्त होउ । तहां परमप्रेमकरिकै मैं परमेश्वरविषे जो अनुरागरूप अनुरक्ति है ताका नाम मेरी भक्ति है ऐसी मेरी भक्तिकरिकै तूं युक्त होउ । अर्थात् मैं परमेश्वरविषयका अनुरागकारिकै सर्वदा मैं परमेश्वरविषयक आपणे मनकूं तूं कर । यद्यपि ते कंस शिशुपालादिक मनकरिकै सर्वदा मैं परमेश्वरका चिंतन करतेभये हैं तथापि ते कंस शिशुपालादिक परमप्रेमकारिकै मैं परमेश्वरविषे अनुराग हुए मैं परमेश्वरका चिंतन नहीं करतेभयेहैं किंतु केवल द्वेषकारिकैही मेरा चिंतन करतेभयेहैं । यातैं ते कंसशिशुपालादिक मैं परमेश्वरके भक्त कहेजाते नहीं और तूं अर्जुन तौ मैं परमेश्वरका भक्त हुआ हमारा चिंतन कर । शंका–हे भगवन् ! तैं परमेश्वर-विषयक सा अनुरागरूप भक्तिही किस उपायकरिकै प्राप्त होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस भक्तिके उपायकूं कथन करैं हैं–(मद्याजी इति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषयक अनुरागरूप भक्तिकी प्राप्तिवासतै तूं मद्याजी होउ । तहां मैं भगवान् वासुदेवके पूजनकरणेका है स्वभाव जिसका ताका नाम मद्याजी है । अर्थात् सर्वकालविषे तूं अर्जुन मैं परमेश्वरके पूजापरायण होउ । शंका–हे भगवन् ! पूजन करणेकी सामग्रीके अभावहुए तिस अनुरागरूप भक्तिकी प्राप्तिवासतै क्या उपाय करणेयोग्य है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (मां नमस्कुरु इति) हे अर्जुन ! तिस पूजाकी सामग्रीके अभावहुए मैं परमेश्वरकूं तूं नमस्कार कर अर्थात् अत्यंत निम्नतापूर्वक शरीरमनवाणीकारिकै तूं मैं परमेश्वरकूं ही आराधन कर । इहां (मद्याजी) इस पदकारिकै कथन कन्या जो पूजारूप अर्चन है । तथा (नमः) इस पदकरिकै कथन कन्या जो नमस्काररूप वंदन है ते अर्चन वंदन दोनों भागवतधर्म दूसरेभी भागवतधर्मोंके उपलक्षण हैं । ते भागवतधर्म श्रीभागवतविषे यह कथन करे हैं । तहां श्लोक–(श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्) अर्थ यह–विष्णुभगवान्‌का श्रवण, तथा कीर्त्तन, तथा स्मरण, तथा पादोंका सेवन, तथा अर्चन, तथा दासभाव, तथा सखाभाव, तथा आत्माका अर्पण यह नव भागवतधर्म कहेजावैं हैं । इसीकूं ही नवधा भक्तिभी कहैं हैं इति । हे अर्जुन ! इसप्रकारके भागवतधर्मोंका अनुष्ठान कारिकै सर्वदा मैं परमेश्वरविषे अनुरागकी

उत्पत्तिकरिकै मैं परमेश्वरके चिंतनपरायण हुआ तूं अर्जुन मैं भगवान् वासुदेवकूं ही प्राप्त होवैगा अर्थात् (तत्त्वमसि । अहं ब्रह्मास्मि) इत्यादिक वेदांतवाक्योंतैं जन्य आत्मसाक्षात्कारकरिकै तूं अभेदरूपकारिकै मैं अद्वितीय निर्गुणरूप परब्रह्मकूं ही प्राप्त होवैगा। हे अर्जुन ! इस उक्तअर्थविषे तूं संशयकूं मतकर । मैं परमेश्वर तुम्हारे आगे इस उक्तअर्थविषे सत्यप्रतिज्ञाकूं करता हूं। जिस कारणतैं तूं अर्जुन मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है तिस कारणतैं प्रिय अर्जुनके साथि वंचना करणी हमारेकूं उचित नहीं है इति। अथवा (सत्यं ते) इस वचनविषे (सति अंते) इस प्रकारके पदच्छेदकरिकै यह अर्थ करणा—प्रारब्धकर्मके नाश हुए तूं अर्जुन मैं परमेश्वरकूं प्राप्त होवैगा इति। परंतु इस द्वितीय व्याख्यानतैं सो प्रथम व्याख्यान ही समीचीन है। काहेतैं (विशते तदनन्तरम् ।) इस वचनकरिकै पूर्व प्रारब्धकर्मके नाश हुएतैं अनंतर तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं ब्रह्मभावकी प्राप्ति कथन करिआये हैं। तिस पूर्वउक्त अर्थका ही (मामेवैष्यसि सत्यं ते) इस वचनकरिकै अनुवाद अंगीकार करणा होवैगा । तिस अनुवादकी अपेक्षाकरिकै अर्जुनके विश्वासकी दृढता करावणेहारा सो प्रथम व्याख्यान ही समीचीन है इति। तहां इस श्लोककरिकै (यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् । स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥) इस पूर्वउक्त श्लोकका व्याख्यान कऱ्या इति। और किसीटीकाविषे तौ (मन्मना भव) इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्या है—तहां मैं ही प्रत्यकआत्मा आनंदघन परिपूर्ण ब्रह्मरूप हूं इस प्रकारतैं प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्माकार है मन जिसका ताका नाम मन्मना है ऐसा मन्मना तूं अर्जुन होउ। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं ज्ञानकांडरूप तृतीयषट्कका जीवब्रह्मका अभेदरूप अर्थ संक्षेपकरिकै कथन कऱ्या। शंका—हे भगवन्! इस प्रकारकी ज्ञाननिष्ठा किस उपायकरिकै प्राप्त होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मद्भक्तः इति ।) हे अर्जुन ! तिस ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवासतै तूं मैं परमेश्वरका अनन्यभक्त होउ । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं उपासनाकांडरूप द्वितीयषट्कका भगवद्भक्तिरूप अर्थ संक्षेपकरिकै कथन कऱ्या। शंका—हे भगवन् ! अल्पपुण्यवाले पुरुषकूं सा भगवद्भक्तिभी कैसे उत्पन्न होवैगी ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मद्याजी इति) तहां मैं परमेश्वरकी प्रसन्नतावासतै आपणे वर्णआश्रमके कर्मोंके करणेका है स्वभाव जिसका ताका नाम मद्याजी है

ऐसा मद्याजी तूं होउ अर्थात् मैं परमेश्वरकी प्रसन्नतावासतै तूं आपणे वर्णआश्रमके कर्मोंकूं कर । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं कर्मकांडरूप प्रथमषट्कका निष्काम कर्मरूप अर्थ संक्षेपकरिकै कथन कऱ्या । शंका—हे भगवन् ! यज्ञादिक कर्मोंका साधनरूप जो धन है तिस धनके अभावतैं तथा स्त्री आदिकोंके अभावतैं जो पुरुष तिन यज्ञादिक कर्मोंके करणेविषे असमर्थ है तिस पुरुषकूं सा भगवद्भक्ति दुर्लभही होवैगी। ता भक्तिके दुर्लभतातैं ब्रह्मतैंकार चित्तकी वृत्ति अत्यंत दुर्लभ होवैगी। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् अत्यंत सुलभउपायकूं कथन करैंहैं (मां नमस्कुरु इति) हे अर्जुन ! तिन यज्ञादिक कर्मोंके करणेका असामर्थ्य हुए तूं प्राकृतभक्तिकरिकै ही प्रतिमादिकोंविषे मैं भगवान्कूं धूपदीपादिक सर्वउपचारोंके समर्पणपूर्वक नमस्कारादिकोंकरिकै आराधन कर । तहां (यज्ञो वै नमः) इत्यादिक वचनोंकरिकै आश्वलायनऋषि नमस्कारकूंभी यज्ञरूप कहता भयाहै । अब सोपानक्रमतैं नमस्कार, निष्कामकर्म, भगवद्भक्ति इन तीन साधनोंकी प्राप्तिपूर्वक ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्तहुए पुरुषके फलकूं कथन करैं हैं (मामेवैष्यसि इति) हे अर्जुन ! इसप्रकार साधनसंपत्तिपूर्वक ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्तहुआ तूं सर्वजगत्के कारणरूप तथा सर्वके ईश्वररूप तथा सर्वशक्तिसंपन्न तथा अखंड एकरस ऐसे मैं तत्पदार्थ परमेश्वरकूं ही प्राप्तहोवैगा । जैसे दर्पणादिक उपाधिके निवृत्तहुए प्रतिबिंब बिंबभावकूं प्राप्त होवैहै । तथा जैसे घटरूप उपाधिके निवृत्तहुए घटाकाश महाकाशभावकूं प्राप्त होवैहै तैसे तूं अर्जुन मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैगा । अब इस उक्तअर्थविषे अर्जुनके दृढविश्वास करावणेवासतै श्रीभगवान् शपथकरिकै कहैंहैं (सत्यं ते प्रतिजाने इति) हे अर्जुन ! अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारकी ज्ञाननिष्ठावाला हुआ तूं मैं परमात्मादेवकूं ही अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवैगा । इस प्रकारकी सत्यप्रतिज्ञाकूं मैं तुम्हारे आगे करता हूं । जिस कारणतैं तूं अर्जुन मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है । इस कारणतैं वंचनाकरणेके अयोग्य तैं अर्जुनके प्रति मैं भगवान् यह सत्यप्रतिज्ञा करूंहूं ॥ ६५ ॥

तहां (ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति । तमेव सर्वभावेन शरणं गच्छ) यह जो वचन पूर्व कथन कऱ्या था । अब तिसी वचनके अर्थकूं स्पष्टकरिकै निरूपण करैंहैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६६॥

(पदच्छेदः) सर्वधर्मान् । परित्यज्य । माम् । एकम् । शरणम् । व्रज । अहम् । त्वा । सर्वपापेभ्यः । मोक्षयिष्यामि । मा । शुचः ॥ ६६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वधर्मोंकूं परित्यागकरिकै एक मैं परमेश्वररूप शरणकूं तूं प्राप्तहोउ मैं परमेश्वर तुम्हारेकूं सर्वपापोंतैं मुक्तकरूंगा तूं मत शोककर ॥ ६६ ॥

भा० टी०—तहां केईक धर्म तौ वर्णधर्म होवैं हैं। और केईक धर्म तौ आश्रमधर्म होवैं हैं । और केईक धर्म तौ सामान्यधर्म होवैं हैं । तहां श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रनैं ब्राह्मणादिक वर्णमात्रके प्रति जे धर्म विधान करे हैं ते धर्म वर्णधर्म कहे जावैं हैं । और तिस शास्त्रनैं ब्रह्मचर्यादिक आश्रममात्रके प्रति जे धर्म विधान करे हैं ते धर्म आश्रमधर्म कहे जावैं हैं। और तिस शास्त्रनैं वर्ण आश्रम दोनोंके प्रति साधारणरूपतैं विधान करे जे धर्म हैं ते धर्म सामान्यधर्म कहेजावैं हैं । ते तीनोंप्रकारके धर्म इसी अध्यायविषे पूर्व विस्तारतैं कथन करि आये हैं । तिन सर्वधर्मोंकूं परित्याग करिकै अथवा जितनेक वियमान धर्म हैं तथा जितनेक अवियमान धर्म हैं तिन सर्व धर्मोंकूं परित्यागकरिकै अर्थात् स्वरूपतैं तिन धर्मोंके वियमानहुएभी यह धर्म ही हमारा शरणरूप है इसप्रकार स्वशरणतारूपतैं तिन धर्मोंकूं नहीं स्वीकार करिकै तूं अर्जुन सर्वधर्मोंके अधिष्ठानरूप तथा सर्वधर्मोंके फलप्रदातारूप मैं अद्वितीय ईश्वररूप शरणकूं प्राप्त होउ अर्थात् ते पूर्वउक्त धर्म होवो अथवा नहीं होवो । अन्यकी अपेक्षावाले तिन धर्मोंकरिकै क्या प्रयोजन सिद्ध होवैहै । और अन्यकी अपेक्षातैं रहित ऐसा जो भगवत्का अनुग्रह है तिस भगवत्के अनुग्रहतैं ही मैं कृतार्थ होवौंगा इसप्रकारके निश्चयकरिकै तिन धर्मोंविषे अति आदरकूं न करिकै मैं परमानंदघनमूर्ति श्रीभगवान् वासुदेवकूं ही तूं निरंतरभावनाकरिकै भज अर्थात् यह परमात्मा देवका चिंतन ही परमतत्त्व है। इसतैं परै दूसरा कोई अधिक तत्त्व है नहीं । इसप्रकारके विचारपूर्वक प्रेमकी उत्कटताकरिकै सर्व अनात्मचिंतनतैं शून्य तथा तैलधाराकी न्याईं अनवच्छिन्न ऐसी मनकी वृत्तियोंकरिकै तूं मैं परमात्मादेवकूं निरंतर चिंतन कर। इहां (मामेकं

शरणं व्रज) इतने वचनमात्रकरिकै ही सर्वधर्मोंके त्यागका लाभ होइसकै है । यातैं पुनः (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै जो तिन सर्वकर्मोंके निषेधका अनुवाद कन्या है सो अनुवाद परमेश्वरविषे सर्वधर्मकार्योंकी कारिताके लाभवासतै कन्या है अर्थात् मैं अंतर्यामी परमेश्वरकूं ही सर्वधर्मकार्योंकी कारिता होणेतैं मैं परमेश्वरके शरणागत पुरुषकूं अवश्यंकरिकै तिन धर्मोंकी अपेक्षा होवै नहीं । इतने कहणे-करिकै इस प्रकारके व्याख्यानकाभी खंडन कन्या । सो व्याख्यान यह है— (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इतने कहणेकरिकै केवल धर्ममात्रका परित्याग प्रतीत होवै है । अधर्मका त्याग प्रतीत होवै नहीं । और इहां धर्म अधर्म दोनोंका परित्याग विवक्षित है । यातैं इहां धर्मपद धर्मअधर्मरूप कर्ममात्रका बोधक है । ऐसे धर्म अधर्मरूप कर्ममात्रकूं परित्यागकरिकै मैं परमेश्वररूप शरणकूं तूं प्राप्त होउ इति । सो इसप्रकारका व्याख्यान संभवता नहीं । काहेतैं (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं स्वरूपतैं तिन कर्मोंका त्याग विधान नहीं कन्या किंतु स्वरूपतैं तिन कर्मोंके विद्यमान हुएभी तिन कर्मोंविषे अतिआदरकूं न करिकै एक भगवच्छरणमात्र ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी इन च्यारि आश्र-मियोंके प्रति साधारणरूपतैं विधान कन्या है । तहां तिन च्यारि आश्रमियोंका शास्त्रप्रतिपादित स्वधर्मविषे तौ अतिआदर संभव होइसकै है । यातैं तिन कर्मोंविषे अतिआदरके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान्नैं (सर्वधर्मान्परित्यज्य) यह वचन कथन कन्या है । और अनर्थरूप फलकी प्राप्ति करणेहारा जो अधर्म है तिस अधर्मविषे किसीभी बुद्धिमान् पुरुषका आदर संभवता नहीं । तथा तिन अधर्मोंका परित्याग दूसरे प्रतिषेधशास्त्रोंकरिकै भी प्राप्त है । यातैं (सर्वधर्मान्परि-त्यज्य) इस वचनविषे स्थित धर्मपदकूं धर्मअधर्म साधारण कर्ममात्रका उपलक्षण मानिकै इस वचनकूं अधर्मके त्यागका बोधक अंगीकार करणा संभवता नहीं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—शास्त्रप्रतिपादित वर्णआश्रमके धर्मोंकूं जैसे स्वर्गादिरूप अभ्युदयकी कारणता शास्त्रविषे प्रसिद्ध है तैसे तिन धर्मोंकूं मोक्षकी कारणताभी होवैगी । इस प्रकारकी शंकाके निवृत्तकरणेवासतै ही श्रीभगवान्नैं (सर्वधर्मान्परि-त्यज्य) यह वचन कथन कन्या है । कोई स्वरूपतैं तिन कर्मोंके परित्यागवासतै श्रीभगवान्नैं सो वचन नहीं कह्या है । तहां जो कोई वादी यह वचन कहै । (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं सर्व धर्म अधर्मरूप कर्मोंका

परित्याग ही विधान कऱ्या है। सो यह कहणा संभवता नहीं। काहेतैं—शास्त्रविहित सर्वधर्मोंका त्याग तौ संन्यासके विधायक वचनोंकरिकै ही प्राप्त है। तैसे अधर्मोंका त्यागभी प्रतिषेधशास्त्रकरिकै ही प्राप्त है। और जो अर्थ पूर्व किसीभी प्रमाणकरिकै नहीं प्राप्त होवैहै तिसीही अर्थका विधान होवैहै। अन्यप्रमाणकरिकै प्राप्त अर्थका विधान संभवै नहीं। यातैं (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं धर्म अधर्मरूप सर्वकर्मोंका त्याग विधान नहीं कऱ्या है। और जो कोई वादी यह वचन कहै (सर्वधर्मान्परित्यज्य) यह भगवान्का वचनभी सर्व कर्मोंके त्यागरूप संन्यासका विधायक ही है सो यह कहणाभी संभवता नहीं। काहेतैं (मामेकं शरणं व्रज) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं एक भगवत्शरणतामात्रही विधन करी है यातैं (सर्वधर्मान्परित्यज्य) यह वचन केवल अनुवादमात्रही है। कर्मोंके त्यागका विधायक नहीं है। और सर्वशास्त्रोंका परम रहस्य ईश्वरशरणता ही है। या कारणतैं श्रीभगवान्नैं तिस ईश्वरशरणताविषेही इस गीताशास्त्रकी परिसमाप्ति करी है। तिस ईश्वरशरणतातैं विना तिस संन्यासकाभी आपणे फलविषे परिअवसान होवै नहीं किंतु तिस ईश्वरशरणताकी प्राप्तिकरिकै ही तिस संन्यासका आपणे फलविषे परिअवसान होवैहै। किंवा क्षत्रिय होणेतैं संन्यास आश्रमका अनधिकारी जो अर्जुन है तिस अर्जुनके प्रति (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै सर्वकर्मोंके त्यागरूप संन्यासका उपदेश संभवताभी नहीं। काहेतैं जो पुरुष जिस धर्मके करणेविषे अधिकारी होवैहै तिस पुरुषके प्रतिही तिस धर्मका उपदेश संभवै है। तिस धर्मके अनधिकारी पुरुषके प्रति तिस धर्मका उपदेश संभवै नहीं। और जो कोई वादी यह वचन कहै। इहां श्रीभगवान्नैं अर्जुनके व्याजकरिकै अधिकारी ब्राह्मणोंके प्रति ही (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै संन्यासका विधान कऱ्या है सो यह कहणाभी संभवता नहीं। काहेतैं—(वक्ष्यामि ते हितम्। त्वां मोक्षयिष्यामि सर्वपापेभ्यः त्वं मा शुचः) इस प्रकारके उपक्रम उपसंहार वाक्योंविषे अर्जुनके प्रति यह उपदेश प्रतीत होवै है। जो कदाचित् अर्जुनके व्याजकरिकै संन्यासके अधिकारी ब्राह्मणोंके प्रति ही यह भगवान्का उपदेश अंगीकार करिये तौ ते उपक्रमउपसंहारवाक्य असंगत होवैंगे। यातैं (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं सर्वकर्मोंका त्यागरूप संन्यास विधान नहीं कऱ्या है किंतु वर्णआश्रमके धर्मोंकी न्याईं संन्यासधर्मोंविषे भी अनादरकरिकै एक भगवत्शरणता-

मात्रविषेही श्रीभगवान्का तात्पर्य है इति । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं सर्व धर्मोंविषे नहीं आदरकारिकै तूं एक मैं परमेश्वरके शरणकूं प्राप्तहुआ है इस कारणतैं सर्वधर्मकार्योंका प्रवर्त्तक मैं परमेश्वर तुम्हारेकूं बंधुवधादिनिमित्तक तथा संसारके हेतुभूत ऐसे सर्वपापोंतैं प्रायश्चित्ततैं विनाही मुक्त करूंगा । तात्पर्य यह–(धर्मेण पापमपनुदति) इस श्रुतिविषे धर्मकूं पापनिवृत्तिका हेतु कथन कऱ्या है सो धर्मरूप मैं परमेश्वरही हूं । यातैं प्रायश्चित्ततैं विनाही मैं धर्मरूप परमेश्वर तुम्हारेकूं तिन सर्व पापोंतैं मुक्त करूंगा इसकारणतैं तूं शोककूं मतकर । अर्थात् इस युद्धविषे प्रवृत्तहुए मैं अर्जुनका बंधुवधादिनिमित्तक प्रत्यवायतैं किसप्रकार निस्तार होवैगा इसप्रकारके शोककूं तूं मतकर इति । तहां (मामेकं शरणं व्रज) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं भगवच्छशरणका विधान कऱ्या सो भगवच्छरण शास्त्रविषे तीनप्रकारका कथन कऱ्या है । तहां श्लोक–(तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा । भगवच्छरणत्वं स्यात्साधनाभ्यासपाकतः ।) अर्थ यह–इस अधिकारी पुरुषकूं साधनोंके अभ्यासके परिपाकतैं तीनप्रकारका भगवच्छरण प्राप्त होवै है । तहां एक तौ तिस परमेश्वरकाही मैं हूं इस प्रकारका भगवच्छरण होवैहै । और दूसरा यह परमेश्वर मेराही है इसप्रकारका भगवत्शरण होवै है । और तीसरा सो परमेश्वर मैंही हूं इस प्रकारका भगवच्छरण होवैहै । तहां प्रथम भगवच्छरण तौ मृदु कह्या जावैहै । जैसे (सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् । सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः ॥) अर्थ यह–हे सर्व जगत्के नाथ परमेश्वर ! जैसे समुद्रका तथा तरंगोंका भेद नहीं है तौभी समुद्रके तरंग कहेजावैं हैं कोई समुद्र तरंगोंका कह्या जावै नहीं । तैसे तुम्हारा तथा हमारा यद्यपि भेद नहीं है तथापि मैं तुम्हारा ही हूं तूं परमेश्वर हमारा नहीं है इति । इत्यादिक वचनोंविषे सो प्रथम भगवच्छरण कथन कऱ्या है । और दूसरा भगवच्छरण मध्यम कह्या जावै है । जैसे (हस्तमुत्क्षिप्य यातोसि बलात्कृष्ण किमद्भुतम् । हृदयाद्यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते ।) अर्थ यह–हे कृष्ण भगवन् ! बलात्कारसे हमारे हस्तकूं छुडाइकै तूं जाता भया है इसकरिकै तुम्हारा कोई अद्भुत पौरुष सिद्ध नहीं होता । जबी तूं हमारे हृदयतैं निकसि जावैगा तबी मैं तुम्हारे पौरुषकूं मानूंगा । सो हमारे हृदयतैं कदाचित्भी तूं जाणेवाला नहीं है इति । इत्यादिक वचनोंविषे सो दूसरा भग-

च्छरण कथन कऱ्या है। और तीसरा भगवच्छरण अतिमात्र कह्याजावै है। जैसे (सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान्परमेश्वरः स एकः। इति मतिरचला भवत्यनंते हृदयगते व्रज तान्विहाय दूरात् ॥) अर्थ यह—यह स्थावरजंगमरूप सर्व जगत् तथा मैं वासुदेवरूपही है। सो परमपुरुष परमेश्वर एक अद्वितीयरूप ही है। इस प्रकारकी अचलमति जिन पुरुषोंकी हृदयदेशविषे स्थित परमात्मादेवविषे होवै है हे दूत! ऐसे सर्वत्र ब्रह्मदृष्टिवाले पुरुषोंके समीप तुमनैं कदाचित्भी नहीं जाणा किंतु ऐसे तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकूं दूरतैं परित्यागकरिकै तूं गमन कर। यह दूतके प्रति यमराजाका वचन है इति। इत्यादिक वचनोंविषे सो तीसरा भगवच्छरण कथन कऱ्या है। इस प्रकारकी भगवच्छरणरूप भूमिकाविषे अंबरीष, प्रह्लाद, गोपी आदिक बहुत भक्तजन दृष्टांतरूपकरिकै कथन करे हैं। यह तीनों प्रकारका भगवच्छरण भक्तिरसायननामा ग्रंथविषे श्रीमधुसूदन स्वामीनैं विस्तारतैं वर्णन कऱ्या है इति। तहां इस गीताशास्त्रविषे श्रीभगवान्कूं कर्मनिष्ठा, ज्ञाननिष्ठा, भगवद्भक्तिनिष्ठा यह तीनों निष्ठा परस्पर साध्यसाधनभावकूं प्राप्तहुई विवक्षित हैं। ते तीनों निष्ठा पूर्व बहुत विस्तारतैं कथन करि आये हैं और यह अष्टादशअध्याय सर्वगीताशास्त्रका उपसंहाररूप है। यातैं इहां प्रथम सर्व कर्मोंके संन्यासपर्यंत कर्मनिष्ठा तौ (स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः।) इस वचनविषे उपसंहार करी है। और दूसरी संन्यासपूर्वक श्रवणादिक साधनोंके परिपाकसहित ज्ञाननिष्ठा तौ (ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम्।) इस वचनविषे उपसंहार करी है। और तीसरी भगवद्भक्तिनिष्ठा तौ उक्त दोनों निष्ठावोंका साधनरूपभी है तथा फलरूपभी है। यातैं सा तीसरी भगवद्भक्तिनिष्ठा श्रीभगवान्नैं अंतविषे (सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।) इस वचनविषे उपसंहार करी है इति। और श्रीभाष्यकार भगवान् तौ (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै श्रीभगवान् सर्व कर्मोंके संन्यासका अनुवादकरिकै (मामेकं शरणं व्रज) इस वचन करिकै ज्ञाननिष्ठाका उपसंहार करताभया है इसप्रकारका व्याख्यान करतेभये हैं। तथा दूसरेभी अनेकप्रकारके दुर्मतोंका खंडन करतेभये हैं। सो सर्वप्रसंग इहां ग्रंथके विस्तारभयतैं लिख्या नहीं ॥ ६६ ॥

तहां श्रीभगवान्नैं (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस श्लोकपर्यंत सर्वगीताशास्त्रका अर्थ समाप्त कऱ्या। अब श्रीभगवान् इस ब्रह्मविद्यारूप गीताशास्त्रके संप्रदायविधिकूं कथन करैं हैं—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ॥
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

(पदच्छेदः) इदम् । ते । न । अतपस्काय । न । अभक्ताय । कदाचन । न । च । अशुश्रूषवे । वाच्यम् । न । च । माम् । यः । अभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तुम्हारे हितवासतै हमनैं कथन कऱ्याहुआ यह गीताशास्त्र इंद्रियोंके निग्रहतैंरहित पुरुषके ताईं कदाचित्भी नहीं उपदेश करणेयोग्य है तथा भक्तितैंरहित पुरुषके ताईंभी नहीं उपदेशकरणेयोग्य है तथा शुश्रूषातैं रहित पुरुषके ताईंभी नहीं उपदेशकरणेयोग्य है तथा जो पुरुष मैं परमेश्वरविषयक असूया करैहै तिसके ताईंभी नहीं उपदेशकरणेयोग्य है ॥ ६७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तुम्हारे जन्ममरणरूप संसारकी निवृत्ति करणेवासतैं मैं सर्वज्ञ परम आप्त परमेश्वरनैं सर्वशास्त्रोंके अर्थका रहस्यरूप जो यह गीताशास्त्र उपदेश कऱ्या है सो यह गीताशास्त्र अतपस्कपुरुषके ताईं कदाचित्भी नहीं उपदेशकरणेयोग्य है । तहां जो पुरुष शब्दादिक विषयोंतैं श्रोत्रादिक इंद्रियोंके निग्रहतैं रहित है ताका नाम अतपस्क है । ऐसे इंद्रियोंके निग्रहतैं रहित पुरुषके ताईं यह गीताशास्त्र किसीभी अवस्थाविषे नहीं उपदेशकरणेयोग्य है अर्थात् महान् संकटके प्राप्त हुए भी ऐसे अजितइंद्रिय पुरुषके ताईं यह गीताशास्त्र नहीं उपदेश करणेयोग्य है । इहां (कदाचन) इस पदका वक्ष्यमाण तीनों पर्यायोंविषे संबंध करणा । हे अर्जुन ! जो पुरुष इंद्रियोंके निग्रहवाला तौ है परंतु ब्रह्मविद्याके उपदेष्टा गुरुविषे तथा ईश्वरविषे भक्तितैं रहित है ऐसे अभक्तपुरुषके ताईं भी यह गीताशास्त्र कदाचित् भी नहीं उपदेश करणेयोग्य है । हे अर्जुन ! जो पुरुष इंद्रियोंके निग्रहवालाभी है तथा भक्तिवालाभी है परंतु जो पुरुष गुरुकी पादप्रक्षालनादि सेवारूप शुश्रूषातैं रहित है ऐसे पुरुषके ताईं भी यह गीताशास्त्र कदाचित्भी नहीं उपदेश करणेयोग्य है । हे अर्जुन ! जो पुरुष इंद्रियोंके निग्रहवालाभी है तथा भक्तिवालाभी है तथा शुश्रूषावालाभी है परंतु जो पुरुष मैं भगवान् वासुदेवकूं मनुष्य मानिकै तथा असर्वज्ञत्वादिक गुणोंवाला मानिकै असूया करै है अर्थात् मैं परमेश्वरविषे आत्मप्रशंसादिक दोषोंका आरोपण करिकै हमारे ईश्वरपणेकूं नहीं

सहनकरता हुआ जो पुरुष हमारे द्वेषकूंही करैहै ऐसे मैं परमेश्वरकी उत्कृष्टताकूं नहीं सहनकरणेहारे पुरुषके ताईंभी यह गीताशास्त्र कदाचित्भी नहीं उपदेशकरणेयोग्य है। किंतु जो पुरुष मनसहित श्रोत्रादिक इंद्रियोंके निग्रहरूप तपवाला है तथा गुरुईश्वरविषे भक्तिवाला है तथा गुरुकी सेवारूप शुश्रूषावाला है तथा मैं परमेश्वरविषे अनुरागवाला है ऐसे अधिकारी पुरुषके ताईं ही यह गीताशास्त्र उपदेश करणेयोग्य है। तहां इस श्लोकविषे एक नकारके कथन करणेकरिकै ही उक्तअर्थकी सिद्धि होइसकै है ता एक नकारकूं न कहिकै श्रीभगवान्नैं जो इहां च्यारि नकार कथन करेहैं सो एकएक विशेषणके अभाव हुएभी इस गीताशास्त्रके उपदेशकी अयोग्यताके बोधन करणेवास्तै कथन करेहैं। और (मेधाविने तपस्विने वा विद्या देया।) अर्थ यह—शास्त्रके अर्थ धारण करणेकी शक्तिवाले मेधावी पुरुषके ताईं अथवा इंद्रियोंके निग्रहवाले तपस्वी पुरुषके ताईं यह ब्रह्मविद्या देणेयोग्य है। इस वचनविषे विद्याके अधिकारीका विकल्प देखणेविषे आवैहै। यातैं शुश्रूषा, गुरुभक्ति, भगवदनुरक्ति इन तीन विशेषणोंयुक्त तपस्वी पुरुषके ताईं यह विद्या देणेयोग्य है। अथवा तिन तीन विशेषणोंयुक्त मेधावी पुरुषके ताईं यह विद्या देणेयोग्य है। तहां विद्याकी प्राप्तिविषे मेधा तप इन दोंकूं पाक्षिकत्वहुएभी भगवदनुरक्ति, गुरुभक्ति, शुश्रूषा इन तीनोंका सर्वत्र नियमही है। इसप्रकार श्रीभाष्यकार भगवान् कथन करतेभये हैं। तहां श्लोकविषे श्रीभगवान्नैं कथन कऱ्या जो विद्याउपदेशके संप्रदायका प्रकार है सो प्रकार श्रुतिविषेभी कथन कऱ्याहै। तहां श्रुति—(विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपायमाशेवधिष्टेहमस्मि। असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया अवीर्यवती तथा स्याम्। यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः॥) अर्थ यह—एककालविषे अनधिकारी पुरुषकूं प्राप्त होइकै खेदकूं प्राप्तहुई वेदविद्या विद्याके उपदेष्टा ब्राह्मणोंके समीप जाइकै यह वचन कहतीभई—हे ब्राह्मणो तुम हमारेकूं गुह्य राखो। ताकरिकै मैं विद्या तुम्हारेकूं भोग मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति करूंगी। और जो कदाचित् लोकोंके ऊपरि कृपादृष्टिकरिकै तुम हमारेकूं गुह्य नहीं राखिसकते होवौ तौभी जो पुरुष गुणोंविषे दोषोंका आरोपणरूप असूयादोषवाला है तथा ऋजुभावतैं रहित है तथा मनसहित इंद्रियोंके निग्रहतैं रहित है तथा गुरुकी सेवाभक्तितैं रहित है ऐसे अनधिकारी पुरुषके ताईं तुमोंनैं कदाचित्भी हमारा उपदेश नहीं करणा। जो तुम धनादिक पदार्थोंके लोभकरिकै ऐसे अनधिकारी पुरुषोंके ताईं हमारा

उपदेश करोगे तौ में वंध्यास्त्रीकी न्याईं निष्फल होवैंगी किंतु जो पुरुष असूयादोषतैं रहित है तथा ऋजुभाववाला है तथा इंद्रियोंके निग्रहरूप तपवाला है तथा गुरुकी सेवाभक्तिवाला है तथा ईश्वरविषे अनुरागवाला है ऐसे अधिकारीपुरुषोंके ताईं तुमोंनैं हमारा उपदेश करणा इति। किंवा जिस पुरुषकी परमात्मादेवविषे परमभक्ति है तथा जैसे परमात्मादेवविषे परमभक्ति है तैसेही ब्रह्मविद्याके उपदेष्टा गुरुविषे परमभक्ति है तिस महात्मापुरुषकूं ही यह वेदांतप्रतिपादित अर्थ बुद्धिविषे प्रकाशमान होवै है ॥ ६७ ॥

इसप्रकार इस ब्रह्मविद्यारूप गीताशास्त्रके संप्रदायविधिकूं कथनकारिकै अब श्रीभगवान् तिस संप्रदायके प्रवर्त्तक पुरुषके प्रवर्तक पुरुषके फलकूं कथन करैं हैं—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥

(पदच्छेदः) यः । इमम् । परमम् । गुह्यम् । मद्भक्तेषु । अभिधास्यति । भक्तिम् । मयि । पराम् । कृत्वा । माम् । एव । एष्यति । असंशयः ॥ ६८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष मैं परमेश्वरविषे परा भक्तिकूं करिकै इस परम गुह्य शास्त्रकूं मेरेभक्तोंविषे स्थापन करैहै सो पुरुष मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवै है इस अर्थविषे संशय नहीं है ॥ ६८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तुम्हारा हमारा संवादरूप जो यह गीताशास्त्र है कैसा है यह गीताशास्त्र—परम है अर्थात् मोक्षरूप निरतिशय पुरुषार्थका साधन होणेतैं सर्वतैं उत्कृष्ट है। पुनः कैसा है यह गीताशास्त्र—गुह्य है अर्थात् सर्व शास्त्रोंके रहस्य अर्थका प्रतिपादक होणेतैं जिसीकिसी पुरुषके ताईं उपदेश करणेयोग्य नहीं है। ऐसे इस परमगुह्य गीताशास्त्रकूं जो संप्रदायप्रवर्त्तक विद्वान् पुरुष मैं परमेश्वरके भक्तोंविषे स्थापन करै है अर्थात् मैं परमेश्वरविषे अनुरागरूप भक्तिवाले पुरुषोंविषे जो विद्वान् पुरुष इस गीताशास्त्रकूं पाठरूपतैं तथा अर्थरूपतैं स्थापन करै है। इहां (मद्भक्तेषु) इस वचनकारिकै जो पुनः भक्तिका ग्रहण कऱ्या है सो पूर्वउक्त तपस्वीआदिक तीनविशेषणोंतैं रहित पुरुषकूंभी भगवद्भक्तिमात्रकारिकै पात्ररूपताके सूचन करणेवास्तै है इति। तहां सो संप्रदायका प्रवर्त्तक विद्वान् पुरुष क्या बुद्धिकारिकै यह गीताशास्त्र

तिन भक्तजनोंविषे स्थापन करै है। ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। (भक्तिं मयि परां कृत्वा इति ।) अधिकारी भक्तजनोंके ताईं जो हमनैं यह गीताशास्त्र उपदेश करीता है सो यह हमनैं परमगुरुरूप भगवान्की शुश्रूषाही करीती है। इसप्रकारका निश्चयकरिकै जो विद्वान् पुरुष हमारे भक्तोंके ताईं यह गीताशास्त्र उपदेश करैहै सो उपदेशकरता पुरुष मैं भगवान् वासुदेवकूं प्राप्तही होवैहै अर्थात् सो विद्वान् पुरुष इस जन्ममरणरूप संसारतैं शीघ्र मुक्तही होवैहै। हे अर्जुन ! इस अर्थविषे तुमनैं कदाचितभी संशय नहीं करणा। अथवा (भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ।) इस वचनका यह अर्थ करणा—मैं परमेश्वरविषे पराभक्तिकूं करिकै सर्वसंशयोंतैं रहित हुआ सो विद्वान् पुरुष मैं परमेश्वरकूं अवश्य प्राप्तही होवैहै इति। अथवा सो विद्वान् पुरुष मैं परमेश्वरविषे पराभक्तिकूं करिकै मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैहै। अन्य किसीलोककूं प्राप्त होवै नहीं इति। और किसी टीकाविषे तौ (य इमं परमं गुह्यम्) इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्याहै—जो पुरुष भगवद्भक्तितैं रहित हुआभी केवल आपणे मानसपूजाकी इच्छावाला हुआ इस परमरहस्यरूप गीताशास्त्रकूं मैं परमेश्वरके भक्तोंविषे प्राप्त करैहै सो पुरुषभी तिस पुण्यविशेषके प्रभावतैं मैं चिदेकरस परमेश्वरविषे अद्वैतभावनारूप उपासनारूप भक्तिकूं करिकै अर्थात् तिस उपासनारूप पराभक्तिविषे अति आदरकूं प्राप्त होइकै तथा तिस परमभक्तिकूं अनुष्ठानकरिकै मैं परमात्माकूं ही प्राप्त होवैहै। अर्थात् अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके आत्मज्ञानकी प्राप्तिकरिकै ब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मुक्तिकूंही प्राप्त होवैहै। हे अर्जुन ! इस अर्थविषे किंचित्मात्रभी संशय नहीं है। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह कैमुतिकन्याय सूचन कऱ्या। परमेश्वरके भक्तिके लेशमात्रतैंभी रहित ऐसे जे अजामिलादिक हुए हैं ते अजामिलादिक आपणे पुत्रविषे स्नेहके वशतैं तिस पुत्रके नारायण इस नामकरिकै परमेश्वरका स्मरण करतेभये हैं। तिस नारायणनामके उच्चारणमात्रतैं प्रसन्नताकूं प्राप्तहुआ परमेश्वर तिन अजामिलादिकोंके ताईं शुभगतिकी प्राप्ति करताभया है। जबी नारायणनामके उच्चारणमात्रकरिकै ही अजामिलादिक शुभगतिकूं प्राप्त होतेभये हैं, तबी जो पुरुष वाणीकरिकै इस गीताशास्त्रके रहस्य अर्थकूं प्रतिपादन करै है तिस पुरुषकूं भगवद्भक्तिलाभादिक क्रमकरिकै कृतकृत्यता होवैहै याकेविषे क्या कहणाहै इति। इहां किसीक मूलपुस्तकविषे (य इमं परमं गुह्यम्)इस वचनके स्थानविषे (य इदं परमं

गुह्यम्) इसप्रकारकाभी पाठ होवैहै । इस प्रकारके पाठविषे भी सो पूर्वउक्त अर्थही जानणा ॥ ६८ ॥

किंच-

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ॥
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ ६९ ॥

(पदच्छेदः) न । च । तस्मात् । मनुष्येषु । कश्चित् । मे । प्रियकृत्तमः । भविता । न । च । मे । तस्मात् । अन्यः । प्रियतरः । भुवि ॥ ६९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तथा सर्वमनुष्योंके मध्यविषे तिसपुरुषतैं अन्य कोईभी मनुष्य मैं परमेश्वरविषयक अतिशयप्रीतिवाला नहीं है नहीं होवैगा तथा मैं परमेश्वरकूंभी तिसतैं अन्यपुरुष इसैं पृथिवीविषे अत्यंतप्रिय नहीं है ॥ ६९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके भक्तोंविषे इस गीताशास्त्रके संप्रदायकी प्रवृत्तिकरणेहारा जो विद्वान् पुरुष है तिस विद्वान् पुरुषतैं अन्य सर्वमनुष्योंके मध्यविषे कोईभी मनुष्य मैं परमेश्वरविषयक अतिशय प्रीतिवाला इस वर्त्तमानकालविषे है नहीं तथा पूर्व कोई हुआ नहीं तथा आगे कोई होवैगा नहीं किंतु सो संप्रदायका प्रवर्त्तक विद्वान् पुरुष ही मैं परमेश्वरविषयक अतिशयप्रीतिवाला है । हे अर्जुन ! केवल सो विद्वान् पुरुष ही मैं परमेश्वरविषयक अतिशय प्रीतिवाला नहीं किंतु मैं परमेश्वरकूंभी तिस संप्रदायप्रवर्त्तक विद्वान् पुरुषतैं अन्य कोईभी पुरुष अतिशयप्रीतिका विषयक पूर्व नहीं होताभया है तथा अबी इस भूमिलोकविषे है नहीं तथा आगे होवैगा नहीं किंतु सो संप्रदायका प्रवर्त्तक विद्वान् पुरुष ही मैं परमेश्वरकूं अतिशयप्रीतिका विषय है ॥ ६९ ॥

तहां (य इमं परमं गुह्यम्) इत्यादिक दोश्लोकोंकरिकै श्रीभगवान्नैं इस ब्रह्मविद्यारूप गीताशास्त्रके अध्यापकके फलकूं कथन कऱ्या । अब श्रीभगवान् इस गीताशास्त्रके अध्ययन करणेहारे पुरुषके फलकूं कथन करैहैं-

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ॥
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७० ॥

(पदच्छेदः) अध्येष्यते । च । यः । इमम् । धर्म्यम् । संवादम् । आवयोः । ज्ञानयज्ञेन । तेन । अहम् । इष्टः । स्याम् । इति । मे । मतिः ॥ ७० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो पुरुष तुम हम दोनोंके संवादरूप तथा धर्म्यरूप इस गीताशास्त्रकूं अध्ययन करैगा तिस पुरुषकरिकै मैं परमेश्वर ज्ञानयज्ञकरिकै पूजित होवौं हूं इसप्रकारका मैं परमेश्वरका निश्चय है ॥ ७० ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! मोक्षके प्राप्तिका कारणरूप जो आत्मज्ञान है ता आत्मज्ञानरूप धर्मका कारण होणेतैं धर्म्यरूप अथवा धर्मतैं अविरुद्ध होणेतैं धर्म्यरूप जो यह तुम्हारा हमारा संवादरूप गीताशास्त्र है इस गीताशास्त्रकूं जो अधिकारी पुरुष अध्ययन करैगा अर्थात् जपरूपकरिकै पाठ करैगा तिस पाठ करणेहारे पुरुषकरिकै मैं परमेश्वर ज्ञानयज्ञकरिकै पूजित होऊंगा अर्थात् इस गीताशास्त्रके चतुर्थ अध्यायविषे द्रव्ययज्ञादिक सर्वयज्ञोंतैं श्रेष्ठरूपकरिकै कथन कऱ्या जो ज्ञानरूपयज्ञ है तिस ज्ञानरूप यज्ञकरिकै मैं परमेश्वर तिस पाठक पुरुषकरिकै पूजित होऊंगा। इसप्रकारका मैं परमेश्वरका निश्चय है। यद्यपि यह पुरुष इस गीताशास्त्रके अर्थकूं नहीं जानता हुआही इस गीताशास्त्रके पाठमात्रकूं करै है तथापि तिस पाठकूं श्रवण करणेहारे मैं परमेश्वरकूं यह पुरुष इस गीताके पाठकरिकै मैं परमेश्वरकूं ही चिंतन करै है याप्रकारकी बुद्धि होवैहै । इसकारणतैं सो पाठक पुरुष तिस पाठमात्रतैंभी ज्ञानयज्ञके फलरूप मोक्षकूं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा आत्मज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा प्राप्त होवै है। जबी यह पुरुष इस गीताशास्त्रके पाठमात्रतैंभी परंपराकरिकै मोक्षरूप फलकूं प्राप्त होवैहै तबी इस गीताशास्त्रके अर्थके अनुसंधानपूर्वक इस गीताशास्त्रकूं पठनकरता हुआ यह पुरुष साक्षातही तिस मोक्षरूप फलकूं प्राप्त होवै है याकेविषे क्या कहणा है । तहां (श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ।) इस वचनकरिकै पूर्व चतुर्थ अध्यायविषे द्रव्यमयादिक सर्वयज्ञोंतैं ज्ञानयज्ञकी श्रेष्ठता कथन करिआये हैं ॥ ७० ॥

तहां पूर्व इस गीताशास्त्रके वक्तापुरुषके फलकूं तथा अध्ययन करणेहारे पुरुषके फलकूं कथन कऱ्या। अब श्रीभगवान् इस गीताशास्त्रके श्रोतापुरुषके फलकूं कथन करैहैं—

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ॥
सोपि मुक्तः शुभाँल्लोकान् प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ ७१ ॥

(पदच्छेदः) श्रद्धावान् । अनसूयः । च । शृणुयात् । अपि । यः । नरः । सः । अपि । मुक्तः । शुभान् । लोकान् । प्राप्नुयात् । पुण्यकर्मणाम् ॥ ७१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष श्रद्धावान् हुआ तथा असूयादोषतैं रहित हुआ इस गीताशास्त्रकूं केवल श्रवणमात्रही करैहै श्रोतापुरुष भी सर्वपापोंतैं मुक्तहुआ पुण्यकर्मवाला पुरुषोंके शुभ लोकोंकूं प्राप्तहोवै है ॥ ७१ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! लोकोंऊपरि करुणाकरिकै इस गीताशास्त्रका उच्चैस्वरतैं पाठ करणेहारा जो अन्यपुरुष है तिस अन्यपुरुषके मुखतैं जो कोई पुरुष आस्तिक्य बुद्धिरूप श्रद्धावान् हुआ तथा दोषका आरोपणरूप असूयादोषतैं रहितहुआ इस गीताशास्त्रकूं केवल श्रवणमात्रही करैहै अर्थात् यह पुरुष इस गीताशास्त्रका उच्चैस्वर करिकै पाठ किसवासतै करता है अथवा यह पुरुष इस गीताशास्त्रका असंबद्ध पाठ करताहै इत्यादिक दोषोंकूं वक्तापुरुषविषे नहीं आरोपण करताहुआ जो पुरुष श्रद्धावान् होइकै इस गीताशास्त्रके केवल पाठमात्रकूंभी श्रवण करैहै सो केवल पाठमात्रका श्रोतापुरुषभी सर्वपापोंतैं मुक्तहुआ अश्वमेधादिक पुण्यकर्मोंके करणेहारे धर्मात्मा पुरुषोंके शुभलोकोंकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् जिन उत्तम लोकोंकूं अश्वमेधादिक पुण्यकर्मोंके करणेहारे पुरुष प्राप्त होवैं हैं तिन उत्तमलोकोंकूं ही सो गीताके पाठमात्रकूं श्रवण करणेहारा पुरुष प्राप्त होवैहै । इहां (शृणुयादपि सोपि) इस वचनविषे स्थित जो अपि यह शब्द है ता अपिशब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह कैमुतिकन्याय सूचन कऱ्या । इस गीताशास्त्रके अर्थज्ञानतैं रहित केवल अक्षरमात्रका श्रोता पुरुषभी जबी उत्तमलोकोंकूं प्राप्त होवैहै तबी इस गीताशास्त्रके अर्थज्ञानपूर्वक इस गीताशास्त्रका श्रवण करणेहारा पुरुष तिन उत्तमलोकोंकूं प्राप्त होवैहै याकेविषे क्या कहणा है इति । तहां इसप्रकारका फल श्रीभागवतविषेभी कथन कऱ्याहै । तहां श्लोक—(वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषाँस्त्रीन्पुनाति हि । वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄँस्तत्पादसलिलं यथा ॥) अर्थ यह—परमेश्वररूप वासुदेवकी कथाका जो प्रश्न है सो प्रश्न तीन पुरुषोंकूं पावन करैहै—एक तौ वक्तापुरुषकूं पावन करैहै और दूसरा प्रश्नकरणेहारे पुरुषकूं पावन करै है और तीसरा श्रोतापुरुषकूं पावन करैहै जैसे विष्णुके पादका उदक पावन करैहै ॥ ७१ ॥

तहां जबपर्यंत शिष्यकूं संशयविपर्ययरहित आत्मज्ञानकी उत्पत्ति होवैहै तबपर्यंत ब्रह्मवेत्ता कृपालु गुरुवोंनैं उपदेश करणेका प्रयास करणा । इसप्रकारके गुरुके धर्मकी शिक्षा करणेअर्थ सर्वज्ञभी श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनके प्रति अभी तुम्हारेकूं उपदेशकी अपेक्षा नहींहै इस अर्थके जनावणेवासतै पूछैं हैं—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ॥
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥ ७२ ॥

(पदच्छेदः) कच्चित् । एतत् । श्रुतम् । पार्थ । त्वया । एकाग्रेण । चेतसा । कच्चित् । अज्ञानसंमोहः । प्रनष्टः । ते । धनंजय ॥ ७२ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! तुमनैं यह गीताशास्त्र एकाग्र चित्तकरिकै क्या श्रवण कऱ्या हे धनंजय ! तुम्हारा अज्ञानकृतसंमोह क्या नष्टहुआ यह तूं हमारेप्रति कहु ॥ ७२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! मैं परम आप्त सर्वज्ञ परमेश्वरनैं तुम्हारे ताईं उपदेश कऱ्या जो यह ब्रह्मविद्यारूप गीताशास्त्र है सो यह गीताशास्त्र तुमनैं एकाग्रचित्तकरिकै क्या श्रवण कऱ्या अर्थात् तुमनैं यह गीताशास्त्र क्या अर्थसहित निश्चय कऱ्या । हे धनंजय ! इस गीताशास्त्रके श्रवणकरिकै तुम्हारा अज्ञानकृत विपर्ययरूप संमोह अज्ञानरूप कारण सहित क्या नष्ट हुआ । तात्पर्य यह–सो अज्ञानकृत संमोह कदाचित् अबपर्यंत भी तुम्हारा नष्ट नहीं हुआ होवे तौ मैं भगवान् वासुदेव तुम्हारे ताईं पुनःभी उपदेश करूं यह आपणे चित्तका वृत्तांत तूं हमारे आगे कथन कर इति । इहां (कच्चित्) यह दोनों शब्द प्रश्नके वाचक हैं । तहां अनात्मारूप देहादिकोंविषे जो आत्मत्वबुद्धि है तथा स्वधर्मरूप युद्धविषे जो अधर्मत्वबुद्धि है सो विपर्यय ही इहां अज्ञानकृत संमोह जानणा ॥ ७२ ॥

इसप्रकार श्रीभगवान्करिकै पूंछा हुआ अर्जुन मैं अभी कृतार्थ हुआ हूं यातैं हमारेकूं पुनः उपदेशकी अपेक्षा नहींहै इस प्रकारके आपणे अभिप्रायकूं कथन करैहै–

अर्जुन उवाच ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ॥
स्थितोस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥

(पदच्छेदः) नष्टः । मोहः । स्मृतिः । लब्धा । त्वत्प्रसादात् । मया । अच्युत । स्थितः । अस्मि । गतसंदेहः । करिष्ये । वचनम् । तव ॥ ७३॥

(पदार्थः) हे अच्युत ! मैं अर्जुननैं तुम्हारेप्रसादतैं आत्मज्ञानरूप स्मृति पाई है ताकरिकै हमारा सो मोह नष्ट होताभयाहै याकारणतैं सर्वसंशयोंतैं रहितहुआ मैं तुम्हारी शासनाविषे स्थित हुवाहूं सो तुम्हारा वचन मैं करूंगा ॥ ७३ ॥

भा॰टी॰—अच्युत ! अर्थात् यह कृष्ण भगवान् हमारा आत्मारूप ही है । इस प्रकारतैं आत्मारूपकरिकै निश्चित होणेतैं वियोगहोणेके अयोग्य हे कृष्ण ! हमारा सो अज्ञानकृत विपर्ययरूप मोह नष्ट होताभया है। हे अर्जुन ! सो तुम्हारा विपर्ययरूप मोह किसकरिकै नष्ट होताभया है ? ऐसी शंकाके प्राप्तहुए अर्जुन ता मोहनाशके कारणकूं कथन करै है (स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मया इति ।) हे भगवन् ! जिस कारणतैं मैं अर्जुननैं तुम्हारे इस ब्रह्मविद्यारूप गीताशास्त्रके उपदेशतैं सर्वसंशयोंतैं रहित अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारकी आत्मज्ञानरूप स्मृति पाईहै, इस कारणतैं सर्वप्रतिबंधतैं शून्य तिस आत्मज्ञानकारिकै सो हमारा अज्ञानकृत विपर्ययरूप मोह नष्ट होताभयाहै । तहां (स्मृतिलाभे सर्वग्रंथीनां विमोक्षः ।) अर्थ यह—मैंही परब्रह्मरूप हूं इसप्रकारकी स्मृतिके प्राप्तहुए इस पुरुषके सर्व चिज्जडग्रथियोंका विनाश होवैहै इस श्रुतिके अर्थकूं अनुभवकरताहुआ अर्जुन कहैहै (स्थितोस्मि गतसंदेहः इति ।) हे भगवन् ! तिस आत्मज्ञानरूप स्मृतिकी प्राप्तिकरिकै मैं अर्जुन सर्व संदेहोंतैं रहितहुआ तुम्हारे युद्धकी कर्तव्यतारूप शासनाविषे स्थित हुवाहूं । हे भगवन् ! जबपर्यंत हमारा जीवन है तबपर्यंत मैं अर्जुन तुम्हारे वचनकूं सत्य करूंगा अर्थात् तैं परमगुरुरूप भगवान्की आज्ञाकूं मैं अवश्यकरिकै पालन करूंगा । इस प्रकार श्रीभगवान्कृत उपदेशके प्रयासकी सफलताके कथन करिकै अर्जुन श्रीभगवान्कूं संतुष्ट करताभया । इतनै कहणेकरिकै इस गीताशास्त्रके अध्ययन करणेहारे पुरुषकूं श्रीभगवान्के प्रसादतैं मोक्षरूप फलपर्यंत आत्मज्ञान अवश्यकरिकै प्राप्त होवैहै । इसप्रकारका इस गीताशास्त्रका फल उपसंहार कन्या । जैसे (तद्धास्यविजज्ञौ) इस श्रुतिविषे मोक्षपर्यंत आत्मज्ञानरूप फलका उपसंहार कन्याहै । इहां (गतसंदेहः) इस वचनकरिकै अर्जुननैं देहादिक अनात्मपदार्थोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप मोहका नाश दिखाया । और (करिष्ये वचनं तव) इस वचनकरिकै अर्जुननैं स्वधर्मरूप युद्धविषे अधर्मत्वबुद्धिरूप मोहका नाश दिखाया । तहां देहादिक अनात्मपदार्थोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप मोह तौ सर्वप्राणीमात्रविषे विद्यमान होणेतैं साधारणमोह कह्याजावै है । और युद्धरूप स्वधर्मविषे अधर्मत्वबुद्धिरूप मोह तौ केवल अर्जुनविषे ही विद्यमान होणेतैं असाधारणमोह कह्याजावैहै । इन दोनों प्रकारके मोहके निवृत्तकरणेवास्तै श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह गीताशास्त्र उपदेश कन्या है । सो प्रकार गीताशास्त्रके द्वितीय अध्यायके आदिविषे कथन करिआयेहैं ॥ ७३ ॥

तहां इतनेपर्यंत इस गीताशास्त्रके अर्थकूं समाप्तकरिकै अब संजय पूर्वउक्त कथाके संबंधकूं अनुसंधान करताहुआ धृतराष्ट्रके प्रति कहैहै–

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

(पदच्छेदः) इति। अहम्। वासुदेवस्य। पार्थस्य। च। महात्मनः। संवादम्। इमम्। अश्रौषम्। अद्भुतम्। रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! मैं संजय महानुभाव वासुदेवके तथा अर्जुनके इस अद्भुत रोमहर्षण संवादकूं पूर्वउक्त प्रकारतैं श्रवणकरताभयाहूं ॥ ७४ ॥

भा० टी०–हे धृतराष्ट्र ! मैं संजय महानुभाव श्रीवासुदेवके तथा अर्जुनके इस पूर्वउक्त गीताशास्त्ररूप संवादकूं श्रवण करताभया हूं। कैसा है यह संवाद–अद्भुत है अर्थात् चित्तकूं अत्यंत विस्मयकी प्राप्ति करणेहारा है। पुनः कैसा है यह संवाद–रोमहर्षण है अर्थात् लोकोंविषे असंभाव्यमान होणेतैं तथा अद्भुतरसवाला होणेतैं शरीरके रोमोंकूं खडा करणेहारा है ॥ ७४ ॥

हे संजय ! दूरदेशविषेस्थित श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनके संवादकूं तूं इहां बैठा कैसे श्रवण करताभया है जिसकारणतैं समीपस्थित पुरुषका ही वचन श्रवणकरणेविषे आवैहै। ऐसी शंकाके प्राप्त हुए संजय आपणेविषे तिस संवादके श्रवण करणेकी योग्यताकूं कथन करैहै–

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानिमं गुह्यमहं परम् ॥
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ ७५ ॥

(पदच्छेदः) व्यासप्रसादात्। श्रुतवान्। इमम्। गुह्यम्। अहम्। परम्। योगम्। योगेश्वरात्। कृष्णात्। साक्षात्। कथयतः। स्वयम् ॥ ७५ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! श्रीव्यासके प्रसादतैं मैं संजय इस परम गुह्य योगकूं साक्षात् आपही कथनकरतेहुए योगेश्वर कृष्णभगवान्तैं साक्षात् श्रवणकरता- [illegible] ७५ ॥

[illegible]० टी०–हे धृतराष्ट्र ! श्रीव्यास भगवान्नैं हमारेकूं प्राप्तकरे जे दिव्य चक्षु- [illegible]दिक हैं यह ही श्रीव्यासभगवान्का हमारेपर प्रसाद है। तिस व्यासभगवान्के प्रसादतैं मैं संजय इस संवादकूं साक्षात् आपणे परमेश्वररूपकरिकै कथन करतेहुए

सर्वयोगीजनोंके ईश्वररूप श्रीकृष्ण भगवान्तें साक्षात्ही श्रवण करताभया हूं। कोई परंपराकरिकै मैं तिस संवादकूं नहीं श्रवणकरताभया हूं। इतने कहणेकरिकै संजयनैं आपणी अहोभाग्यता सूचनकरी। कैसा है सो संवाद—गुह्य-है अर्थात् सर्वशास्त्रोंका रहस्यरूप होणेतैं जिसीकिसी पुरुषके ताईं नहीं देणेयोग्य है। पुनः कैसा है संवाद—पर है अर्थात् मोक्षका साधन होणे तैं सर्वतैं श्रेष्ठ है। पुनः कैसा है सो संवाद—योग है। अर्थात् नियमपूर्वक चित्तके निरोधरूप योगका हेतु होणेतैं योगरूप है। अथवा ज्ञानयोगरूप है इहां किसी मूलपुस्तकविषे (श्रुतवानिमम्) इस वचनके स्थानविषे (श्रुतिवानेतत्) इसप्रकारकाभी पाठ होवै है सो पाठभी समीचीनही है ॥ ७५ ॥

अब संजय तिस संवादके स्मरणजन्य आपणे आह्लादकूं कथन करैहै—

राजन्संस्मृत्यसंस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ॥
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

(पदच्छेदः) राजन् । संस्मृत्य । संस्मृत्य । संवादम् । इमम् । अद्भुतम् । केशवार्जुनयोः । पुण्यम् । हृष्यामि । च । मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्ण अर्जुनके इस पुण्यरूप अद्भुत संवादकूं स्मरणकरिकै स्मरणकरिकै मैं वारंवार हर्षकूं प्राप्तहोवूंहूं ॥ ७६ ॥

भा॰ टी॰—हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णभगवान्का तथा अर्जुनका जो यह गीताशास्त्ररूप संवाद है कैसा है यह संवाद—अद्भुत है अर्थात् चित्तकूं विस्मयकी प्राप्ति करणेहारा है। पुनः कैसा है यह संवाद-पुण्य है अर्थात् केवल श्रवणमात्रकरिकैभी सर्वपापोंकूं नाश करणेहारा है । ऐसे अद्भुतसंवादकूं मैं संजय केवल श्रवणही नहीं करता भयाहूं किंतु तिस श्रवण करेहुए संवादकूं अबी पुनःपुनः स्मरण करिकै वारंवार हर्षकूंभी प्राप्त होताहूं । अथवा (हृष्यामि) इस वचनका यह अर्थ करणा—तिस संवादकूं पुनःपुनः स्मरण करिकै वारंवार हमारे शरीरके रोम खडे होवैं हैं । तात्पर्य यह—पूर्व अनेक जन्मोंविषे हमनैं ऐसा कौन होणेतैं कऱ्याहै तथा ऐसा कौन तप कऱ्याहै तथा ऐसा कौन दान कऱ्याहै जिसके प्रसतैं यह श्रीकृष्णभगवान् और अर्जुनका संवादरूप गीताशास्त्र हमारेकूं श्रवण हुआ। तिस पुण्यविशेषकूं मैं जानिसकता नहीं ॥ ७६ ॥

